Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112761

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आठवां विशेषांक

साहित्य-परिचय १९७४

112761

शिक्षा और राजनीति विशेषांक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध शिक्षाविद
लोकप्रिय लेखक
एवं
कुशल सम्पादक

डा० रामशकल पाण्डेय की
छात्रोपयोगी कृतियाँ

हिन्दी शिक्षण — प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी के स्वरूप का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया गया है। भाषा पर अधिकार करने के विविध उपायों का वर्णन किया गया है और साहित्य की विविध विधाओं के शिक्षण पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं। मूल्य ७.००

संस्कृत शिक्षण — 'संस्कृत शिक्षण' पर अत्यधिक एवं एकमात्र लोकप्रिय पुस्तक का छठा संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण। मूल्य ६.५०

शिक्षा और भाषा — भाषा समस्या एवं शिक्षा से सम्बन्धित विद्वान लेखक के १८ सारगर्भित निबन्धों का संग्रह। मूल्य ५.००

शिक्षा दर्शन — वी० एड०, एम० ए० तथा एम० एड० परीक्षार्थियों के लिए उपयोगी पुस्तक का तृतीय संशोधित संस्करण। मूल्य १२.००

महान पश्चिमी शिक्षाशास्त्री — पुस्तक में विभिन्न पाश्चात्य शिक्षाशास्त्रियों के दार्शनिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी विचारों का सांगोपांग वर्णन उनकी जीवनी तथा पूरे पृष्ठ के चित्र के साथ दिया गया है। मूल्य ६.००

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११२६१

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
द्वारा
आठवाँ वार्षिक उपहार

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

साहित्य-परिचय १९७४

RT-0798

"शिक्षा और राजनीति"
(विशेषांक)

अगस्त-सितम्बर १९७४
(संयुक्तांक)

प्रधान सम्पादक (विशेषांक)
डा० रामशकल पाण्डेय

सम्पादक
विनोद कुमार अग्रवाल

परामर्शदाता
डा० आत्मानन्द मिश्र
डा० सरयूप्रसाद चौबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामित्व

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

□

प्रबन्ध सम्पादक

सतीश कुमार अग्रवाल

□

आवरण-सज्जा

श्री गोवर्धन वर्मा

मुद्रक

कैलाश प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-२

□

विशेषांक का मूल्य : ६.००

वार्षिक शुल्क : ६.००

[वर्ष ६ : अंक ८-९]

□

साहित्य-परिचय

डा० रांगेय राघव मार्ग, आगरा-२

दूरभाष : ७६४८६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्पात और खान मन्त्री, भारत
नई दिल्ली
२४ जून, १९७४

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'साहित्य-परिचय' का आठवाँ विशेषांक "शिक्षा और राजनीति" पर शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है।

शिक्षा में राजनीति के अत्यधिक हस्तक्षेप से हमारे विद्या मन्दिर राजनीति के अखाड़े बन गए हैं। आशा है साहित्य-परिचय का शिक्षा और राजनीति विशेषांक इस सामयिक विषय पर विभिन्न वर्गों के विचारों द्वारा अवगत कराएगा।

आपका प्रयास सराहनीय है। मेरी ओर से विशेषांक के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ।

(केशव देव मालवीय)

रक्षा मन्त्री, भारत
नई दिल्ली
दिनांक २५ मई, १९७४

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा द्वारा प्रकाशित मासिक हिन्दी पत्रिका 'साहित्य-परिचय' का आठवाँ विशेषांक "शिक्षा और राजनीति" जुलाई-अगस्त, ७४ में प्रकाशित होने जा रहा है, यह ज्ञात हुआ।

शिक्षा के अन्तर्गत साहित्य, विज्ञान, समाजशास्त्र आदि अनेक विषय आते हैं। इनमें राजनीतिक-विज्ञान भी सम्मिलित है। राजनीति की शिक्षा यदि मात्र ज्ञानार्जन के लिए प्राप्त की जाय तो वह जीवन में उपादेय बन जाती है। विद्यार्थी यदि शिक्षा काल में ही प्रयुक्त राजनीति में उलझ जाय तो यह ज्ञानार्जन के मार्ग में बाधक सिद्ध हो सकती है। इसमें दो मत नहीं हो सकते कि शिक्षा राजनीति से संपृक्त रहते हुए भी विद्याध्ययन काल में प्रयुक्त-राजनीति से असंपृक्त रहा जा सकता है। आज छात्रों के उज्ज्वल भविष्य के लिए इसी बात की आवश्यकता है।

आशा है, विशेषांक में उपयोगी सामग्री प्रकाशित होगी। विशेषांक अपने लक्ष्य में सफल हो।

(जगजीवन राम)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यमेव जयते

रेल मन्त्री
भारत
नई दिल्ली
जून ३०, १९७४

सन्देश

यह जानकर हर्ष हुआ कि 'साहित्य-परिचय' मासिक पत्रिका 'शिक्षा और राजनीति' पर एक विशेषांक प्रकाशित कर रही है।

शिक्षा का आधारभूत उद्देश्य व्यक्ति को श्रेष्ठतर एवं अधिक उपयुक्त सामाजिक प्राणी बनाना ही है। इसीलिए यह अपेक्षा की जाती है कि शिक्षित व्यक्ति शिक्षा पाकर जब जीवन-समर में कूदेगा तो वह बेहतर ढंग से कार्य कर सकेगा। और जीवन समर में राजनीति, अर्थनीति समाजनीति सभी कुछ से उसका वास्ता होगा। इस प्रकार शिक्षा काल में विद्यार्थी को सबसे अलग रखकर, एक दम से जीवन-समर में अज्ञ की भाँति प्रवेश करना होगा। उस अवस्था में उसकी सफलता उसके सौभाग्य की ही बात होगी।

जीवन-संग्राम में अपनी प्राणवान भूमिका के साथ सफलता अर्जित करने के लिए यह आवश्यक है कि सभी क्षेत्रों के घात-प्रतिघातों से विद्यार्थी का परिचय हो। किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि वह सक्रिय राजनीति में आकंठ डूबकर शिक्षा प्राप्ति का उद्देश्य ही भूल जाए। आज यही हो रहा है।

शिक्षार्थी को सदैव स्मरण रखना होगा कि वह मूलतः शिक्षा प्राप्त करने आया है, अन्य बातों से उसे परिचय मात्र रखना है। परिचित रहने का अर्थ उसमें आकंठ डूब जाना नहीं।

मेरी कामना है कि आपका विशेषांक शिक्षा के सम्बन्ध में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाकर यथार्थ और आदर्श की स्थिति में समन्वय लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य करेगा।

(ललित नारायण मिश्र)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौवहन और परिवहन मन्त्री
नई दिल्ली
भारत
दिनांक २४ मई, ७४

सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा अपनी मासिक पत्रिका 'साहित्य-परिचय' का आठवां विशेषांक 'शिक्षा और राजनीति'' जुलाई-अगस्त, ७४ में प्रकाशित कर रहा है। 'साहित्य-परिचय' ने हिन्दी साहित्य और शिक्षा क्षेत्र में जो महान योगदान किया है, वह प्रशंसनीय है।

इस दृष्टि से जो विशेषांक निकाला जा रहा है उसकी मैं सराहना करता हूँ और आशा करता हूँ कि यह विशेषांक शिक्षा और राजनीति की एक अच्छी झाँकी जनता के सम्मुख प्रस्तुत करेगा।

विशेषांक की सफलता के लिए मेरी सुभकामनाएँ।

(कमलापति त्रिपाठी)

मन्त्री
गृह मन्त्रालय, भारत शासन
नई दिल्ली
मई २७, १९७४

सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'साहित्य-परिचय' अपना अगला विशेषांक ''शिक्षा और राजनीति'' पर प्रकाशित करने जा रही है। वर्तमान में विषय का चयन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आशा है इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री सन्तुलित होगी और शिक्षित समुदाय को मनन के लिए एक अच्छा अवसर प्रदान करेगी।

सफलता के लिए हार्दिक शुभ कामनाओं के साथ,

(रामनिवास मिर्धा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यमेव जयते

योजना मन्त्री
भारत
जुलाई १५, १९७४

सन्देश

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'साहित्य-परिचय' का आठवाँ विशेषांक "शिक्षा और राजनीति" जैसी समसामयिक समस्या पर निकलने जा रहा है। राजनीति और शिक्षा एक दूसरे को बराबर प्रभावित करती रही है किन्तु आज इसने एक जटिल समस्या का रूप ले लिया है। शिक्षा जगत में राजनीति का आधिक्य और शिक्षा के प्रति उनकी उदासीनता एक चिन्तनीय विषय है। मुझे आशा है कि आप इस विशेषांक के माध्यम से कुछ ऐसी ठोस सामग्री प्रस्तुत करेंगे जो कि इस समस्या को सुलझाने में मार्गदर्शक का काम कर सकेगी।

मेरी यह हार्दिक शुभकामना है कि आपका यह विशेषांक भी आपके पिछले विशेषांकों की भाँति ही सफल और लोकप्रिय बने।

डी पी धर
(डी० पी० धर)

सत्यमेव जयते

रक्षा उत्पादन मन्त्री
भारत
नई दिल्ली
जून २८, १९७४

प्रिय अग्रवाल जी,

आपका दिनांक १८ मई का पत्र प्राप्त हुआ, धन्यवाद। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि विनोद पुस्तक भण्डार, आगरा द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'साहित्य-परिचय' का आठवाँ विशेषांक 'शिक्षा और राजनीति' पर प्रकाशित होने जा रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'साहित्य-परिचय' ने शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में प्रशंसनीय सेवायें की हैं। आशा है विशेषांक शिक्षा एवं राजनीति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालेगा तथा जनमानस को उचित मार्ग दर्शन देगा। प्रकाशन की सफलता के लिए मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

आपका
विद्याचरण शुक्ल
(विद्याचरण शुक्ल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्री
सूचना और प्रसारण
भारत

सन्देश

यह प्रसन्नता का विषय है कि 'साहित्य-परिचय', आगरा का आठवाँ विशेषांक "शिक्षा और राजनीति" पर होगा।

वर्तमान समय में राजनीति को एक दूसरे से अलग रखना सम्भव नहीं परन्तु उनमें समुचित सामंजस्य होना बहुत जरूरी है। शिक्षा में 'राजनीतिक घुसपैंठ' को प्रोत्साहन न देकर विद्यार्थियों को सुयोग्य नागरिक बनाने के लिए उन्हें राजनीति सम्बन्धी जानकारी देना बहुत आवश्यक है।

इस विशेषांक के लिए मेरी शुभकामनाएँ।

(इन्द्र कुमार गुजराल)

मन्त्री
निर्माण और आवास
भारत
नई दिल्ली
२८ मई, १९७४

यह हर्ष का विषय है कि विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा 'साहित्य-परिचय' का "शिक्षा और राजनीति" विषय पर विशेषांक प्रकाशित करने जा रहा है।

इसके पहले 'साहित्य-परिचय' के सात अंक और निकल चुके हैं, जिन्होंने हिन्दी में अपना प्रतिमान स्थापित किया है।

मुझे विश्वास है कि सामयिक ज्वलन्त समस्याओं पर निर्भीक और स्पष्ट विचार वाले चिन्तन प्रेरक लेख प्रकाशित कर यह अंक भी अपनी पिछली परम्परायें कायम रखेगा।

मैं इस उद्योग में आपकी सफलता की कामना करता हूँ।

(भोला पासवान)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यमेव जयते

योजना राज्य मन्त्री
भारत
नई दिल्ली–११०००१
दिनांक २७-५-१९७४

प्रिय श्री अग्रवाल जी,

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि विनोद पुस्तक मन्दिर 'शिक्षा और राजनीति' पर जुलाई-अगस्त में एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहा है।

साहित्य-परिचय के इस विशेषांक के प्रकाशन की सफलता की कामना करता हूँ।

धन्यवाद सहित,

आपका नम्र,

(मोहन धारिया)

सत्यमेव जयते

राज्य मन्त्री
पर्यटन तथा नगर विमानन मंत्रालय
नई दिल्ली, ११०००१
दिनांक : मई ६, १९७४

प्रिय श्री अग्रवाल,

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा अपनी मासिक पत्रिका 'साहित्य-परिचय' का आठवाँ विशेषांक "शिक्षा और राजनीति" इस शीर्षक से जुलाई-अगस्त, १९७४ में प्रकाशित करने जा रहा है। मैं इसको सफलता के लिये अपनी हार्दिक शुभकामनायें भेजती हूँ।

भवदीया,

(सरोजिनी महिषी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यमेव जयते

DEPUTY MINISTER OF
EDUCATION & SOCIAL WELFARE
INDIA

नई दिल्ली–१

दिनांक : १० जून १९७४

प्रिय श्री अग्रवाल,

आपके सम्पादन में 'साहित्य-परिचय' का शिक्षा और राजनीति विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है, यह प्रसन्नता की बात है। शिक्षा और राजनीति के विभिन्न पहलुओं एवं समस्याओं पर सुधी विद्वानों के लेख प्रकाशित कर आप हिन्दी साहित्य में एक मानदण्ड स्थापित करें, ऐसी मेरी आश्य है। यूं भी शिक्षा के क्षेत्र में स्वतन्त्रता के उपरान्त आशातीत उन्नति हुई है और विद्यार्थियों में पिछले दशक में काफी प्रगति भी दिखाई देती है। इसमें सन्देह नहीं कि राजनीति का आधुनिक जीवन में आवश्यक स्थान है। यदि देश की समसामयिक परिस्थितियों का अध्ययन कर विद्यार्थी अपना मार्ग चुन सकें तो यह देश की उन्नति में सहायक भी होगा और निश्चय ही इससे युवजन भावी नागरिकों के रूप में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकेंगे। आपका आगामी विशेषांक शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के साथ राजनीति का ऐसा सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा करे ताकि वह युवजन और विद्यार्थियों का मार्ग प्रशस्त कर सके।

शिक्षा और राजनीति के विभिन्न पक्षों का विशेषांक निकालने की आपकी योजना की सफलता के लिए मैं शुभ-कामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

भवदीय

अरविन्द नेताम

(अरविन्द नेताम)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उप-मंत्री, संचार, भारत
नई दिल्ली ११०००१
दिनांक ८ जुलाई १९७४

सन्देश

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा "शिक्षा और राजनीति" विषय पर अपनी मासिक पत्रिका 'साहित्य-परिचय' का आठवाँ विशेषांक प्रकाशित करने जा रहा है।

भारत की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली अंग्रेजों की देन है और इसकी तह में उनका राजनीतिक उद्देश्य निहित था जिसकी परिधि व्यापक न थी। हमारा देश अब आजाद है। इसकी शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताएँ भिन्न हैं और उनका आयाम सर्वतोमुखी और विस्तृत है। यही कारण है कि आज की शिक्षा-प्रणाली आधुनिक संदर्भ में अनुपयोगी सिद्ध हो रही है। वर्तमान ढाँचे में परिवर्तन करने की आवाजें हर दिशा से उठ रही हैं। यह व्यपगत प्रणाली बेरोजगारी बढ़ाने में अधिक सहायक सिद्ध हो रही है। सारा पठन-पाठन सैद्धांतिक है और व्यावहारिक या व्यावसायिक बहुत कम है। दूसरे, शिक्षित व्यक्ति श्रम के प्रति निरपेक्षता अपना कर सुविधा खोजी हो रहे हैं। आज के संकटाकीर्ण परिवेश में सुविधाएँ तो दरकिनार जीवन-यापन के साधन भी कठिनता से उपलब्ध होते हैं। परिणामतः उनमें आक्रोश, विक्षोभ, हताशा और कुण्ठा की भावनाएँ पैदा होती हैं। युवावर्ग के असन्तोष का एक प्रमुख कारण यह भी है। आज हमारा देश प्रधान-मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के प्रेरणादायी नेतृत्व में प्रजातन्त्रीय, धर्म-निरपेक्ष समाजवादी समाज की रचना की ओर बढ़ रहा है तथा अनेकों ऐसी योजनायें चल रही हैं जिससे गरीबी एवं बेकारी का अन्त हो तथा सामाजिक न्याय पर आधारित शोषणमुक्त समाज की स्थापना हो सके।

रही शिक्षा-क्षेत्र में राजनीति के प्रवेश की बात। तो युगीन परिस्थिति में जब राजनीति मानव-जीवन का एक विशिष्ट और अपरिहार्य अंग बन चुकी है, तब शिक्षा-क्षेत्र उससे अछूता और असम्पृक्त कैसे बना रह सकता है। राजनीति की सैद्धान्तिक शिक्षा, विद्यालयों में अवश्य मिलनी चाहिए किन्तु उन्हें दलगत राजनीति का अखाड़ा बनाना किसी भी दृष्टि से हितकर नहीं है। छात्रों को अनुशासनहीनता का पाठ दलगत राजनीति ही पढ़ाती है।

जगन्नाथ पहाड़िया
(जगन्नाथ पहाड़िया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यमेव जयते

श्रम उप-मन्त्री
नई दिल्ली
४ जून १६७४

सन्देश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा 'साहित्य-परिचय' का आठवाँ विशेषांक "शिक्षा और राजनीति" प्रकाशित करने जा रहा है। कुछ महानुभाव शिक्षा को राजनीति से अप्रभावित रखने पर वल देते हैं। इसका कारण यह है कि शिक्षालयों में दलगत प्रतिद्वन्द्विता ने प्रवेश पा लिया है और राजनीति के नाम से बच्चों में दूषित पार्टीबाजी का बीजारोपण किया जा रहा है। निश्चय ही यह छात्रों में कलुषित वातावरण उत्पन्न कर रहा है। जब यही छात्र समाज में आते हैं तो समाज में भी कलुषित वातावरण उत्पन्न करते हैं। यह सर्वथा देशहित के विपरीत है। छात्रालयों को इस दलगत प्रतिद्वन्द्विता से अछूता रखने के लिए समाज के जिम्मेदार लोगों, अभिभावकों, व्यवस्थापकों और शिक्षकों को सावधान रहना चाहिए। परन्तु शिक्षा और राजनीति को एक दूसरे से कदापि अप्रभावित नहीं रखा जा सकता। शिक्षा और राजनीति अन्योन्याश्रित हैं। एक दूसरे के पूरक हैं। शिक्षा द्वारा वालक में समाज के लिए सभी गुणों का जागरण अभीष्ट है। यदि हम राजनीति को प्रथक् कर दें तो वास्तव में शिक्षा अधूरी रह जायेगी। शिक्षा स्वयं दर्शन है और अपनी दिशा समाज में व्याप्त विचारधारा और वातावरण के अनुरूप निर्धारित करती है। अतएव कैसे हो सकता है कि शिक्षा में राजनीति का प्रभाव न हो। हम वालक को प्रारम्भ से ही नागरिकता की शिक्षा देते हैं। उच्च कक्षाओं में यही राजनीति-शास्त्र में परिणत हो जाती है। वर्तमान छात्र भावी राष्ट्र-नाविक बनेंगे और इसलिए इनमें सच्ची राजनीति का ज्ञान होना आवश्यक है।

आशा है आपका यह विशेषांक राजनीति और दल-बन्दी में अन्तर स्पष्ट करेगा और राजनीति के शुद्ध स्वरूप को शिक्षा से सन्नद्ध करते हुए शिक्षा को राष्ट्रोपयोगी बनाने पर वल देगा।

मैं प्रकाशन की सफलता चाहता हूँ।

(बालगोविन्द वर्मा) ५/६/७४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य मंत्री
उत्तर प्रदेश

विधान भवन,
लखनऊ
२० मई, १९७४

प्रिय अग्रवाल जी,

आपका दिनांक १४ मई का पत्र मैंने आज दिल्ली से वापस आने पर देखा, धन्यवाद। मुझे खुशी है कि आपकी मासिक पत्रिका 'साहित्य-परिचय' का आठवां विशेषांक "शिक्षा और राजनीति" पर जुलाई-अगस्त १९७४ में प्रकाशित होने जा रहा है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह शिक्षा और राजनीति जैसे जटिल विषयों पर प्रकाश डालने में सफल होगा। मैं इसकी सफलता के लिये अपनी शुभ कामनायें भेजता हूँ।

आदर सहित,

(हेमवती नन्दन बहुगुणा)

मुख्य मन्त्री, राजस्थान
जयपुर

सन्देश

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'साहित्य-परिचय' जुलाई-अगस्त में "शिक्षा और राजनीति" विषय पर एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहा है। इस विशेषांक में देश के अनेक विद्वानों के लेख तथा विचार प्रकाशित किये जावेंगे। मुझे आशा है साहित्य-परिचय जिस गति से अपने लक्ष्य को प्राप्त करने जा रहा है, वह इसमें सफलता प्राप्त कर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार में सहायक सिद्ध होगा।

मैं विशेषांक की सफलता हेतु अपनी शुभ कामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

(हरिदेव जोशी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चकोटि की पुस्तकों के लिए

सदैव स्मरणीय

कतिपय उत्कृष्ट प्रकाशक

☐ लिपि प्रकाशन	दिल्ली	....	२८
☐ विनोद पुस्तक मन्दिर	आगरा	....	३२-३३-३४, ६०, ७८, ९२, ११२, १५८-१५९, १९२, १९६
☐ पांडुलिपि प्रकाशन	दिल्ली	....	४६
☐ अशोक प्रकाशन	दिल्ली	....	५२, १४६
☐ लक्ष्मीनारायण अग्रवाल	आगरा	....	५६
☐ रामप्रसाद एण्ड सन्स	आगरा	....	६२
☐ साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड	इलाहाबाद	....	६८
☐ अलंकार प्रकाशन	दिल्ली	....	७०
☐ हिन्दी साहित्य भण्डार	लखनऊ	....	७६, १८६
☐ सामयिक प्रकाशन	दिल्ली	....	८२
☐ रिसर्च पब्लिकेशन्स इन सोशल साइन्सेज़	दिल्ली	....	८४
☐ स्मृति प्रकाशन	इलाहाबाद	....	९४
☐ साहित्य भण्डार	मेरठ	....	९६
☐ हिन्दी बुक सेण्टर	दिल्ली	....	१०६
☐ साहित्य केन्द्र प्रकाशन	दिल्ली	....	११८
☐ भारत प्रकाशन मन्दिर	अलीगढ़	....	१२०
☐ अभिनव भारती	इलाहाबाद	....	१२०
☐ साहित्य भवन	आगरा	....	१२६-१२७
☐ विद्यार्थी प्रकाशन	दिल्ली	....	१२८
☐ ऋषभचरण जैन एवं सन्तति	दिल्ली	....	१३४
☐ कृष्णा ब्रदर्स	अजमेर	....	१५२
☐ राजहंस प्रकाशन मन्दिर	मेरठ	....	१५६
☐ नेशनल पब्लिशिंग हाउस	दिल्ली	....	१६०
☐ पंचशील प्रकाशन	जयपुर	....	१६२
☐ दिव्य जीवन साहित्य प्रकाशन	पांडिचेरी	....	१६४
☐ आर्य बुक डिपो	नई दिल्ली	....	१६४
☐ साहित्य सदन	देहरादून	....	१६६
☐ आदर्श प्रकाशन	जयपुर	....	१७८
☐ ज्ञान प्रकाशन	मेरठ	....	१८२
☐ रंजन प्रकाशन	आगरा	....	१८८
☐ गोयल एण्ड कम्पनी	दिल्ली	....	१९०
☐ आशा प्रकाशन गृह	नई दिल्ली	...	१९०
☐ अनीता प्रकाशन	दिल्ली	....	१९४

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशकीय

"साहित्य-परिचय" का अष्टम विशेषांक "शिक्षा और राजनीति" आपके कर कमलों में प्रस्तुत है।

प्रस्तुत विशेषांक को समय पर निकालने में सर्वाधिक बाधा 'कागज की समस्या' थी। कागज के अभाव एवं मूल्यों की आशातीत वृद्धि ने जहाँ अन्य मासिक, साप्ताहिक व दैनिक पत्रों को प्रभावित किया, वहाँ ऐसे संकटकाल में 'साहित्य-परिचय' जैसी मासिक पत्रिका के विशेषांक को निकालना वास्तव में एक समस्या थी। किन्तु गतवर्षों के विशेषांकों की नियमितता को देखते हुए एवं अपने शुभेच्छुओं व सुधी पाठकों के आशीर्वाद व सहयोग से हमने इस समस्या के निराकरण में सफलता प्राप्त की और फलस्वरूप 'विशेषांक' आपके समक्ष प्रस्तुत है। कैसा है, किस प्रकार का है ?—इसका निर्णय तो आप जैसे विज्ञ ही करेंगे। अस्तु, विलम्ब के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

यह सभी स्वीकारते हैं कि 'शिक्षा' और 'राजनीति' का आदिकाल से ही शाश्वत सम्बन्ध रहा है। इतिहास बताता है कि शिक्षित व्यक्ति ही राजनीतिज्ञ होता है और राजनीतिज्ञ ही शिक्षा देता है। शिक्षित व्यक्ति से हमारा तात्पर्य यहाँ 'आचार संहिता' के ज्ञाता से है और 'शिक्षा' से तात्पर्य हमारा उस शिक्षा से है जिस शिक्षा को राजनीतिज्ञ देना चाहता है या अपने कार्यों व साधनों से वह जिस कार्य को दूसरों से करवाना चाहता है, करवा लेता है। यही सफल राजनीतिज्ञ का कार्य है।

वर्तमान युग में आते-आते शिक्षा का अर्थ 'विद्यालयीय या विश्वविद्यालयीय जीवन' में समाहित हो गया है। और राजनीतिज्ञ का अर्थ 'मदारी के डंडे' की तरह हो गया कि मदारी ने डंडा घुमाया और जमूरा तदनुसार आचरण करने लगा। इसी प्रकार आज का राजनीतिज्ञ अपने हथकंडों का डंडा घुमाता है और जनता विशेषकर विद्यार्थी वर्ग रूपी जमूरा उसी के निर्देशानुसार कार्य करने लगता है। यही समाज की भयंकरतम स्थिति है।

'शिक्षा और राजनीति' में परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध तब भी था और अब भी है। अन्तर मात्र ध्येय का हो गया। तब ध्येय सृजनात्मक था अब विध्वंसात्मक है।

चाणक्य जैसे राजनीतिज्ञ ने भी 'विषकन्या' का प्रयोग किया था किन्तु उस विष से विषधर को ही मारा था और परिणाम हुआ था—कल्याणकारी। किन्तु आजकल के प्रेषित विषधर तो उसी पर असर करते हैं जो विषहीन होते हैं—कारण एक 'विषधर' दूसरे 'विषधर' का गुरुभाई कहलाता है, जोकि आपस में पूज्य होता है, सहोदर होता है। वर्तमान में दी जाने वाली शिक्षा इसी अन्तर को स्पष्ट नहीं कर पा रही है। आज की शिक्षा स्वयं ही लक्ष्यहीन है तो उसे प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपने जीवन के ध्येय का निर्माण किस प्रकार कर सकता है ? यही कारण है कि आज का शिक्षार्थी गुमराह हो रहा है और इतस्ततः अनिश्चितता की स्थिति में भटक रहा है।

हम अपने शुभेच्छुओं और सहयोगियों को धन्यवाद देते हैं, जिनके अथक् आशीर्वाद व सहयोग से हम इस विशेषांक को विषम परिस्थितियों में भी निकालने में समर्थ हुए। विशेषकर हम डा० रामशकल पाण्डेय के अत्यन्त ही आभारी हैं जो अपने व्यस्त क्षणों में से समय निकालकर हमें इस उद्देश्य की पूर्ति में प्रेरणा देते रहे हैं और अपने अगाध-अनुभवों से हमें लाभान्वित करते आ रहे हैं।

—विनोद कुमार अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रमणिका

	सम्पादकीय	डा० रामशकल पाण्डेय	१७
१.	शिक्षा और राजनीति	डा० आत्मानन्द मिश्र	२५
२.	शिक्षा और राजनीति : एकात्म मानववादी कसौटी	डा० रामनाथ शर्मा	३५
३.	शिक्षा और राजनीति का सम्बन्ध	श्री बालगोविन्द तिवारी	३७
४.	शिक्षा की दिशा और राजनीति	श्री लक्ष्मी नारायण गुप्त	३९
५.	शिक्षा में राजनीति	श्री बैजनाथ शर्मा	४३
६.	शिक्षा में राजनीतिज्ञों का योगदान	प्रो० वैद्यनाथ शर्मा	४५
७.	राजनीति और सामाजिक परिवर्तन तथा शिक्षा	डा० तेज बहादुर माथुर	४७
८.	राजनीति के ब्रह्मपाश में ग्रसित शिक्षा	श्री ताराचन्द शर्मा	४९
९.	नारों की राजनीति एवं दिशाहीन शिक्षा—एक विश्लेषण	आचार्य चन्द्रहास शर्मा	५३
१०.	मंजिल की खोज में बहकते कदम	श्री सुरेश भटनागर	५७
११.	शिक्षा पर राजनीति का प्रभाव	मानस केसरी शिरोमणि सिंह कुशवाह	६१
१२.	समाजवाद एवं शिक्षा	डा० सूर्यनाथ सिंह	६३
१३.	राजनीतिक चिन्तन के सामाजिक आयाम और शिक्षा	श्री राजेन्द्र कुमार	६९
१४.	शिक्षा का राजनैतिक प्रयोजन बनाम बदलती व्यवस्था का संकेत	डा० राजमल बोरा	७१
१५.	वरना हम भी आदमी थे, काम के !	श्री श्यामसरन 'विक्रम'	७३
१६.	शिक्षा और राजनीति : मनोवैज्ञानिक पहलू	डा० पी० ए० राजु	७७
१७.	शिक्षा और विभिन्न राजनीतिक दल	श्री डोरीलाल अग्रवाल	७९
१८.	जनतन्त्रात्मक व्यवस्था में शैक्षिक आदर्श	डा० सरयू प्रसाद चौबे	८१
१९.	प्रजातन्त्र, राजनीति एवं शिक्षा	श्री सत्य प्रकाश पचौली	८५
२०.	शिक्षा के उद्देश्य एवं राजनैतिक प्रभाव	प्रो० सी० वी० ठकराल	९१
२१.	राजनीति और शिक्षा का माध्यम	श्री वासुदेव रघुनाथ वर्तक	९५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२२. एक अध्यापकीय पाठशाला तथा राजनीति	श्री लीलाकांत मिश्र	९७
२३. माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा पर राजनीति का प्रभाव	डा० एस० एस० माथुर	९९
२४. विश्वविद्यालय और राजनीति	डा० इन्दिरा जोशी	१०३
२५. उच्च शिक्षा और राजनीति	श्री महाबल द्विवेदी	१०७
२६. विश्वविद्यालयीय शिक्षा और राजनीति	डा० इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र'	१०९
२७. छात्र और राजनीति	प्रो० शेर सिंह	११३
२८. छात्र-संघों की राजनीति	डा० सीताराम जायसवाल	११५
२९. राजनीति और छात्र आन्दोलन	श्री वृन्दावनदास	११९
३०. छात्र और शिक्षक : राजनीति की दलदल में	डा० एम० खुशदिल	१२१
३१. छात्र-वर्ग और राजनीति	श्री जय कुँवर वर्मा	१२५
३२. शिक्षक राजनीतिज्ञ	श्री महेश देऊस्कर	१२९
३३. शिक्षक की शैक्षिक स्वतन्त्रता	श्री जमनालाल बायती	१३५
३४. क्या आज का अध्यापक पलायनवादी हो रहा है ?	श्री कामता कमलेश	१४१
३५. राजनीति : शिक्षा : अध्यापक	प्रो० रवीन्द्र अग्निहोत्री	१४७
३६. पाठ्यपुस्तकों का प्रश्न और राजनीति	श्री कृष्ण कान्त अवस्थी	१४९
३७. हिन्दी और राजनीति	डा० गोपाल दत्त सारस्वत	१५३
३८. अंग्रेजी-शिक्षण और ब्रिटिश राजनीति	डा० उमेशचन्द्र कुदेसिया	१५५
३९. उर्दू की राजनीति	श्री प्रकाशवीर शास्त्री	१६१
४०. राजनीति और शिक्षण-विधियाँ	श्री गुरसरन दास त्यागी	१६३
४१. भारतीय शैक्षिक संगठन और सक्रिय राजनीति : एक अन्तर्यात्रा	डा० श्याम लाल कौशिक	१६७
४२. अनुशासन और राजनीति	डा० बृजकिशोर श्रीवास्तव	१६९
४३. राजनीति और शैक्षिक समस्याएं	श्री रामखेलावन चौधरी	१७१
४४. राजनीति के सन्दर्भ में विभिन्न शैक्षिक समस्याएं	श्री राधाबल्लभ उपाध्याय	१७५
४५ राजनैतिक-सामाजिक चेतना और शिक्षा	भाई योगेन्द्रजीत	१७९
४६. शैक्षिक नियोजन और राजनीति	श्री एच० एस० बैस	१८१
४७. शिक्षा में क्रान्ति	डा० सत्येन्द्र	१८७

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11274

सम्पादकीय

★

शिक्षा व्यक्तित्व के उत्स को उजागर करती है और अन्तर्निहित शक्तियों को विकसित करती है। व्यक्ति की तेजस्विता शिक्षा द्वारा प्रस्फुटित होती है। व्यक्ति ही नहीं, समाज की प्रगति भी शिक्षा पर ही निर्भर है। व्यक्ति की ही भाँति समाज भी शिक्षा के माध्यम से अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखता है, अपने भविष्य को दिशाबोध प्रदान करता है, प्रतिगामी शक्तियों पर विजय प्राप्त करता है और स्वयं को प्रगति के पथ पर अग्रसर करता है। शिक्षा अद्‌भुत शक्तिदायी प्रक्रिया है और मनुष्यत्व में देवत्व का आरोपण करने की इसमें क्षमता विद्यमान है।

किन्तु शिक्षा अपनी शक्ति व क्षमता का स्वतन्त्र उपयोग नहीं कर पाती। यह सामाजिक गतिविधियों से असंपृक्त नहीं होती। इस पर सामाजिक-आर्थिक संघात महत्त्वपूर्ण है और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है—राजनीतिक संघात। यदि देश की राजनीतिक दशा शिक्षा को उचित स्थान देने के अनुकूल है तो शिक्षा अपनी गौरवमयी भूमिका निभाएगी, अन्यथा वह शिक्षित बेरोज़गारों की भीड़ बढ़ाने में सहायक होगी।

शिक्षा और राजनीति में सम्बन्ध तो है किन्तु यह किस प्रकार का होना चाहिए, इस प्रश्न पर सभी विद्वान् एकमत नहीं हैं। उनकी असहमति के अनेक कारणों में से एक महत्त्वपूर्ण कारण राजनीति की वर्तमान दशा है।

राजनीति में राजनियमों की खोज, उनके आधार की खोज एवं उन नियमों के व्यवहृत रूप का अध्ययन मुख्य विषय है। राजनीति में निष्णात को राजनीतिज्ञ कहा जाता है। राजनीतिज्ञ समाज के अगुवा होते हैं और वे शासन में दखल रखते हैं। आजकल राजा-महाराजा तो हैं नहीं, अतः स्थानीय निकायों, विधान-सभाओं, विधान-परिषदों, राज्यसभा एवं लोकसभा के माननीय सदस्यों तथा केन्द्र एवं राज्यों की सरकारों में मंत्रियों को प्रायः राजनीतिज्ञ या राजनीतिक नेता मान लिया जाता है। सामान्य जनता इन्हीं राजनीतिज्ञों के कार्यों एवं आचरणों को राजनीति का लक्षण मानने लगती है।

उपर्युक्त दृष्टि से अब भारत में यह माना जाने लगा है कि 'कहो नीति, सुनो नीति, लिखो नीति, पर करो अनीति—यही राजनीति'। अब राजनीतिज्ञ को हरफनमौला माना जाता है। उसे झूठ, फरेब, जाल-साजी, ढोंग, आडम्बर, मिथ्याचरण, कदाचार आदि का प्रतीक माना जा रहा है। क्या प्लेटो ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'द लाज़' में इसी राजनीति की व्याख्या की थी? क्या अरस्तू ने राज्य-विज्ञान पर चिन्तन करते समय इसी राजनीति की बात कही थी?

समाज में जब सड़ांध आ जाती है तो उसका अगुवा भी निम्नस्तरीय हो जाता है। जब समाज पतनोन्मुख होता है तो उसका नेता भी यदि वह अपने को न सम्हाले, तो पतन की ओर जा सकता है। आज भारतीय समाज की यही दशा हो रही है। मँहगाई के कारण बड़े-बड़े आदर्शवादियों ने घुटने टेक दिये हैं। काले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन की कोठरी इतनी कलुषित है कि कोई भी सयाना इसमें क्यों न जाए, कालिमा की एक लीक उस पर लग ही जाएगी। हमारे राजनीतिज्ञ बुद्धिमान भी बहुत हैं। वे काले धन पर रोक लगाने के लिए सफेद धन को नियन्त्रित कर रहे हैं और श्रमिकों एवं अन्य वेतनभोगियों की जेब में हाथ डाल रहे हैं। काले धन, हरे धन और पीले धन के बाजार में सफेद धन की पहचान भी कठिन हो रही है। वर्तमान भारतीय राजनीति के सफेद हाथी काले धन पर ही तो पलते हैं। अतः यदि वे कागज पर फसल उगाएँ, 'गरीबी हटाओ' के आन्दोलन द्वारा अपने परिवार की गरीबी हटा डालें, अँगूठा-टेक की सी ही श्रेणी में रहकर दीक्षान्त भाषण दे डालें, लू से बचने के लिए ग्रीष्म ऋतु में विदेशों के भ्रमण का कार्यक्रम बना डालें, तालाब में जौ उगाने की योजना बना लें अथवा जाति-पाँति का उन्मूलन करने के लिए अपनी ही जाति के संगठन के अध्यक्ष बन जायँ तो इसमें किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

सत्य अधिक स्वाभाविक है किन्तु असत्य का अभ्यास करना पड़ता है। सरलता सरल है, वक्रता कठिन है अतः अभ्यासजन्य है। ढोंग एवं फरेब की राजनीति का बड़ा अभ्यास करना पड़ता है। इसलिए शिक्षालयों में इसके अभ्यास की आवश्यकता प्रतीत होती है! १०-१५ वर्ष तक विभिन्न विषयों से मगज़पच्ची करने की अपेक्षा कुछ महत्त्वाकांक्षी छात्र 'मिनिस्टर' बनने का प्रारम्भ से ही अभ्यास करने लगते हैं। फिर राजनीतिक नेताओं में उन्हें जो लक्षण दिखाई पड़ते हैं, उन्हें अपनाकर गर्व का अनुभव करते हैं। ऐसे छात्र परीक्षा में नक़ल करके, अध्यापकों के साथ अभद्र व्यवहार करके, सार्वजनिक सम्पत्ति को क्षति पहुँचाकर, कक्षाओं का बहिष्कार करके एवं हड़तालों में सक्रिय भाग लेकर गौरव का अनुभव करते हैं। करें भी क्यों न! उन्हें आगे चलकर भी तो यही करना है।

हमने युवाशक्ति के उपयोग के कोई मार्ग भी तो नहीं खोजे। बेकारी सुरसा के मुँह की तरह बढ़ रही है। इस माहौल में छात्र सोचता है कि 'मिनिस्टर' बनना ही ज्यादा सरल और अच्छा है। बस, सभी छात्र आजकल उसी का अभ्यास कर रहे हैं!

यह विश्लेषण इस तथ्य को सामने लाने के लिए किया गया है कि आज शिक्षा पर राजनीति (वर्तमान धारणा के अनुसार राजनीति) हावी हो गई है। शिक्षा में इससे अनेक प्रकार की विकृतियाँ आ गई हैं। इस कुचक्र से बचने के लिए या तो राजनीति कुछ पवित्र होकर और नहा-धोकर शिक्षा-मन्दिर में प्रवेश करे या फिर वह बाहर ही रहे, शिक्षा उससे बाहर ही भेंट कर लेगी।

शिक्षा और राजनीति सगी बहनें हैं। दोनों का अलग रहना कठिन है। किन्तु जब राजनीति अभद्र को वरण कर ले तो? शिक्षा को भी क्या बलात् अभद्र को ही अपना लेना चाहिए? शिक्षा स्वभावतः नैतिक नियमों का वरण करना चाहती है। 'शिक्षा' शब्द से ही नैतिकता की ध्वनि निकलती है। दोनों सगी बहनों के स्वभाव भिन्न हैं। राजनीति में दर्प है, वक्रता है, बाह्य शक्ति है और शिक्षा में विनय है, सरलता है और बल है। दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। सभ्यता और संस्कृति के विकास के क्रम में शिक्षा ने राजनीति को स्नेह प्रदान किया है और बदले में राजनीति ने शिक्षा को समुचित आदर दिया है। वशिष्ठ ने रघुकुल-नीति को दिशा प्रदान की थी और रघुवंशी राजाओं ने कुलगुरु को उचित सम्मान दिया था। विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को युद्ध-शिक्षा प्रदान की थी और दोनों राजकुमारों ने गुरुदेव की तपस्या को भंग करने वालों को समूल नष्ट कर दिया था। कण्व के आश्रम में गया तो दुष्यन्त भी था किन्तु उचित मर्यादा के साथ। आचार्य चाणक्य ने भारतीय राजनीति को उचित दिशा प्रदान की तो भारतीय सम्राट् चन्द्रगुप्त ने गुरुदेव के आदेशों का अक्षरशः पालन किया। समर्थ गुरु रामदास के प्रति शिवाजी की स्वामिभक्ति उत्कृष्ट थी तो गुरुदेव ने उत्कृष्ट शिक्षा भी प्रदान की।

अब वे परिस्थितियाँ नहीं हैं अतः शिक्षा और राजनीति में उस प्रकार के सम्बन्ध की आशा करना व्यर्थ है किन्तु यह भी तो उचित नहीं समझ पड़ता कि शिक्षा-राजनीति की गुलामी करे। इस समय शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति की दासी की भाँति दिन-रात उसी की सेवा में लगी हुई है। शिक्षा को इस स्थिति से यदि उबारा न गया तो नवयुवकों में पथभ्रष्टता और अधिक बढ़ेगी।

लोकतन्त्रात्मक अथवा समाजवादी—दोनों प्रकार के देशों में आज इस स्थिति पर विचार मंथन हो रहा है। इस दृष्टि से समाजवादी देशों के विषय में भारतीयों के मन में कुछ भ्रम व्याप्त हैं। रूस व चीन जैसे साम्यवादी देशों में कुछ लोगों के अनुसार शिक्षा पर राजनीति का कठोर नियन्त्रण है। यह बात गले के नीचे नहीं उतरती। वहाँ पर शिक्षा की नीति का निर्धारण राज्य द्वारा होता है किन्तु राज्य द्वारा नीति का निर्धारण हो जाने के पश्चात् विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के दैनिक कार्यों में राजनीति का कोई प्रभाव नहीं है और छिछली तथा फरेबी राजनीति का तो लेशमात्र भी प्रभाव नहीं है। राज्य का शिक्षा पर किस सीमा तक नियन्त्रण हो—यह अलग प्रश्न है और इस पर आगे विचार किया जाएगा। पर विद्यालय एवं विश्वविद्यालय राजनीतिक दाँव-पेंच के अखाड़े किसी सभ्य एवं सुसंस्कृत देश में नहीं बनते। ये राजनीति के गढ़ वहीं बन जाते हैं जहाँ का नेतृत्व जनता से अलग सामन्तशाही का अवशेष बन जाता है और अपनी कुर्सी को बचाने में तथा निहित स्वार्थों की रक्षा में बेचैन होकर युवाशक्ति का आश्रय लेना चाहता है।

मानव जीवन में शिक्षा का क्षेत्र राजनीति से अधिक व्यापक है। जीवन के कुछ पक्ष ऐसे हैं जिनमें राजनीति का हस्तक्षेप लोगों को सहन नहीं होता। व्यक्ति का अपना पारिवारिक जीवन होता है। उसका अपना मानसिक जगत् होता है। इसमें राजनीति का प्रवेश वर्जित है किन्तु इन क्षेत्रों में भी शिक्षा की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। राजनीति को भी शिक्षा का आश्रय लेना पड़ता है। यदि राजनीति शिक्षा-नीति के प्रभाव में रहे तो वर्तमान समाज की अनेक समस्याएँ स्वतः सुलझ जायेंगी।

शिक्षा और राजनीति के लक्ष्य परस्पर विरोधी नहीं हैं। व्यक्ति एवं समाज को अधिकाधिक सुख प्रदान करना दोनों का लक्ष्य है। इस दृष्टि से शिक्षा और राजनीति की दिशा एक-सी ही है। किसी देश के इतिहास में दूर तक चले जाने पर शिक्षा और राजनीति का पारस्परिक सम्बन्ध स्वतः प्रकट हो जाता है और संसार का वर्तमान तो इस बात का साक्षी ही है कि जब-जब राजनीतिक क्रान्तियाँ हुई हैं तब-तब छात्रों एवं शिक्षकों ने उन क्रान्तियों को सफल बनाया है।

छात्रों को राजनीति में भाग लेना चाहिए या नहीं, यह प्रश्न विवादास्पद हो सकता है किन्तु छात्रों को राजनीति का सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करना तो आवश्यक ही है। देश के प्रबुद्ध नागरिक बनने के लिए उन्हें राजनीति के नियमों से परिचित होना पड़ता है। विवाद केवल व्यावहारिक राजनीति के प्रश्न पर है। इतिहास के पृष्ठ पलटने से ज्ञात होता है कि जब-जब किसी देश में राजनीतिक क्रान्ति का बिगुल बजा, छात्रों ने कोरे द्रष्टा का काम नहीं किया अपितु उन्होंने क्रान्ति की बागडोर सम्हाल ली। भारत में स्वातन्त्र्य-संघर्ष के काल में छात्र पीछे नहीं रहे। इंडोनेशिया में छात्रों ने सरकार का तख्ता पलट दिया। यूनान में अभी हाल ही में छात्रों ने ही शासन-नीति में परिवर्तन करा दिया। बँगला देश को अस्तित्व में लाने के लिए ढाका विश्व-विद्यालय के छात्र-छात्राओं ने अभूतपूर्व योगदान दिया।

छात्रों में अदम्य शक्ति होती है। जीवन के जिस काल से वे गुजर रहे होते हैं वह काल प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का सर्वोत्तम भाग है। प्रत्येक दृष्टि से यह काल महत्त्वपूर्ण है। कुछ छात्र किशोरावस्था में पदार्पण कर रहे होते हैं, कुछ किशोरावस्था के मध्य में होते हैं और कुछ प्रौढ़ावस्था की ओर उन्मुख होते हैं। किशोरावस्था जीवन की मधुऋतु है। इस काल में नाना प्रकार के परिवर्तन के नव्य नर्तन-प्रपंच किशोर-मन के रंगमंच पर हुआ करते हैं। किशोर का मन कल्पनाओं की ऊँची-ऊँची उड़ान करने में तल्लीन रहता है। जिस प्रकार 'कूलन में, केलि में, कछारन में, कुंजन में' बसन्त छाया रहता है उसी प्रकार किशोर मन में उत्साह, प्रफुल्लता, साहस, काल्पनिकता एवं आदर्शवादिता छायी रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोर में बहुत कुछ कर गुजरने की शक्ति होती है। हम चाहें तो इस शक्ति का मार्गान्तरीकरण कर दें और किशोरों को इस बात के लिए प्रेरित कर दें कि वे अपने उत्साह और अपनी शक्ति को नयी एवं समाजोपयोगी दिशा प्रदान कर दें अथवा यदि हमें अन्यथा अभीष्ट हो तो हम यह भी कर सकते हैं कि किशोर अपनी शक्ति का प्रदर्शन राष्ट्रीय सम्पत्ति को क्षति पहुँचाने में करें। प्रथम प्रकार का कार्य शिक्षा का है और द्वितीय प्रकार का कार्य करने में राजनीति सिद्धहस्त है।.

युवाशक्ति को उपेक्षित करने की भूल हमें नहीं करनी चाहिए। इन्हीं युवकों ने सदा जीवन का गुरुतम भार सम्हाला है और इन्हीं के माध्यम से समाज ने प्रगति की हैं। कंस के अत्याचारों से समस्त मथुरा-वासी दुखी थे। उनके दुख को दूर करने का बीड़ा एक युवक ने ही उठाया था। देशवासियों के पूजा-विधान में संशोधन करने के लिए इन्द्र की पूजा को बन्द करने और परिणामस्वरूप इन्द्रकोप से मथुरावासियों को बचाने के लिए पहाड़ उठाने का कार्य एक युवक ने ही किया था। द्वापर युग के पहले भी त्रेता में एक युवक ने ही तो असत्य पर सत्य की विजय कराई थी। रावण एवं अन्य राक्षसों के अत्याचारों से त्रस्त आर्य जाति को दिशा बोध प्रदान करने के लिए उस युवक ने विभिन्न दिशाओं में जंगलों की खाक छानी थी।

कालान्तर में राजसी ठाट-बाट से युक्त एक युवक ने ही तो राज्य का परित्याग कर विश्व का 'निर्वाण' का संदेश दिया। और जब बाद में बौद्ध धर्म में सड़ाँध आने लगी तो एक युवक ने ही तो असमय में संन्यास लेकर अद्वैतवाद का शंखनाद किया। कहने का अभिप्राय यह है कि सभी कालों में समाज को युवकों ने ही गति प्रदान की है किन्तु इस कार्य में वे तभी सफल हुए हैं जब उन्हें विद्याध्ययन-काल में छिछली राजनीति में नहीं घसीटा गया। इसके विपरीत इन युवकों को उन गुरुओं से शिक्षा मिली जो राजनीति को सही दिशा प्रदान करते थे। इस दृष्टि से शिक्षक की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। अध्यापकों ने क्रान्तियों का सदा समर्थन किया है। वे समाज के बुद्धिजीवियों की अगुवाई करने में समर्थ हैं। वे आज गरीबी एवं मँहगाई के शिकंजे में जकड़ गये हैं, इसीलिए कुछ हतबुद्धि-से हो गये हैं। उन्हें अपनी सामर्थ्य का ज्ञान ही नहीं है। यदि उनकी शक्ति से उन्हें परिचित करा दिया जाए तो वे पहाड़ उठा सकते हैं।

उपर्युक्त कथन का निष्कर्ष यही निकलता है कि छात्र एवं अध्यापक राजनीति से अलग नहीं रह सकते किन्तु वे राजनीतिक दलों के गुलाम भी नहीं बन सकते। वे भेड़ नहीं हैं जो राजनीतिक दलों के गड़रियों का अनुगमन करें। उन्हें पथ-प्रदर्शक, सूत्रधार, क्रान्ति के द्रष्टा तथा समाज के उन्नायक के रूप में कार्य करना है। उन्हें राष्ट्र के भाग्य का निर्माता बनना है और राष्ट्र-निर्माण के लिए उन्हें विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में उच्चकोटि का सैद्धान्तिक विश्लेषण करना है, चिन्तन-मनन करना है, विचार मंथन करना है एवं समाज की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल जीवन-मूल्यों का सर्जन करना है।

आज विधान-सभाओं में जीवन-मूल्यों के सर्जन का ढोंग रचा जा रहा है किन्तु वे इस कार्य के लिए उपयुक्त ही नहीं है। आदर्शों एवं मूल्यों की रचना अथवा इनकी खोज विद्यामन्दिरों में ही हो सकती है। और ऐसा तब हो सकता है जब विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का वातावरण घुटनपूर्ण न हो; वे दलगत राजनीति के विष से युक्त न हों, तथा योग्य एवं सक्षम आचार्यों एवं शिक्षाधिकारियों को कार्य करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता हो। यह विश्लेषण हमें इस समस्या के पास लाकर छोड़ देता है कि शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण होना चाहिए या नहीं। अतः अब इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर भी कुछ विचार कर लिया जाय।

किसी देश के विकास के लिए शिक्षा की उत्तम व्यवस्था अति आवश्यक है तथा देश में शिक्षा के उचित विकास का दायित्व राज्य पर होता है। राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह देश में इस प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था करे, जिससे प्रत्येक नागरिक को योग्यता एवं क्षमतानुसार उन्नति करने का समान अवसर प्राप्त हो सके। अतः शिक्षा व राज्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। परन्तु राज्य एवं शिक्षा के सम्बन्ध किस प्रकार के होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए, यह एक विवादास्पद प्रश्न है । इसके उत्तर के लिए प्राचीन काल से लेकर अब तक के शिक्षा एवं राज्य के सम्बन्धों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है ।

प्राचीन काल में भारत की शिक्षा-व्यवस्था आदर्श मानी जाती थी । शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था का भार गुरुओं पर रहा करता था । गुरु ही शिक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि, शिक्षण की अवधि, स्थान आदि का निर्धारण किया करते थे । उनके इस कार्य में राज्य किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं करता था । राज्य का कार्य केवल पर्याप्त धन की व्यवस्था करना रहता था । सम्पूर्ण शिक्षा का व्यय-भार समाज पर था । आश्रमों की व्यवस्था, गुरु एवं उसके परिवार का भरणपोषण, आश्रम में विद्यार्थियों के निवास एवं भोजन तथा चिकित्सा की व्यवस्था आदि पर व्यय किया जाने वाला धन राज्य के कोषागार से अथवा दानियों द्वारा प्राप्त होता था । कभी भी किसी गुरु को इसके लिए चिन्तित नहीं होना पड़ता था । राज्य इस धन की व्यवस्था के प्रतिफलस्वरूप किसी भी प्रकार का नियन्त्रण शिक्षा पर नहीं करता था । शिक्षा के लिए गुरु पूर्णरूपेण स्वतन्त्र थे । शिक्षा के प्रकार, शिक्षा के उद्देश्य आदि के निर्धारण में गुरु ही सब कुछ होते थे । इस प्रकार प्राचीन काल में राज्य का शिक्षा पर नियन्त्रण बिल्कुल नहीं था ।

बौद्धकाल में भी थोड़े परिवर्तनों के साथ लगभग यही व्यवस्था थी । नालन्दा, विक्रमशिला ऐसे विशाल विश्वविद्यालयों की सम्पूर्ण व्यय-व्यवस्था का भार राज्य पर रहा करता था । परन्तु राज्य इन पर किसी भी प्रकार का नियन्त्रण नहीं करता था । कुलपति अपने कार्य में स्वतन्त्र होता था । वही स्थानीय आवश्यकतानुसार, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि एवं अवधि आदि का निर्धारण करते थे । आचार्य ही शिक्षा के लिए पूर्णरूपेण उत्तरदायी थे, केवल धन राज्य से मिला करता था ।

मुस्लिम काल में भी राज्य ने शिक्षा के क्षेत्र में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया । मकतबों में उस्ताद स्वतन्त्र होते थे । बादशाह उनके लिए खजाने से रुपए की व्यवस्था कर दिया करता था । उस्तादों के कार्य में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप बादशाह कभी भी नहीं करते थे । इस प्रकार मुस्लिम काल में भी शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण नाममात्र को भी नहीं था । उस समय भारत ही नहीं, विश्व में कहीं भी शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण नहीं था । सर्वप्रथम नैपोलियन ने अध्यापकों की शिक्षा के लिए एक स्कूल खोला था । यहीं से राज्य ने शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करना प्रारम्भ किया । भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सबसे पहले सन् १८१३ में शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश किया जब कि एक लाख रुपया प्रतिवर्ष शिक्षा के लिए निर्धारित किया गया । १८५४ में वुड महोदय ने शिक्षा-व्यवस्था का भार राज्य पर डाला । सन् १८५७ तक शिक्षा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों में रही । सन् १८८२ में सर्वप्रथम 'शिक्षा-कार्यालय' की स्थापना की गई तथा राज्य ने शिक्षा की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली । १९०१ में लार्ड कर्ज़न ने केन्द्र में डाइरेक्टर जनरल ऑफ़ एजूकेशन की नियुक्ति की, तथा १९१० में एक अलग शिक्षा-विभाग की स्थापना की गई । १९१९ ई० में प्रान्तों में बने नये मन्त्रि-मण्डलों को केन्द्र ने शिक्षा का उत्तरदायित्व सौंप दिया, और इस प्रकार केन्द्रीय सरकार ने शिक्षा के कार्य से अपना हाथ खींच लिया । इसे कुछ विद्वान् एक महान् भूल कहते हैं, जिसे अब तक सुधारा नहीं जा सका है ।

तब से लेकर अब तक कुछ परिवर्तनों के साथ शिक्षा पर प्रान्तीय सरकारों का नियन्त्रण है । भारतीय संविधान में भी शिक्षा को प्रान्तीय विषय माना गया है; केवल कुछ विशेष क्षेत्रों की शिक्षा-व्यवस्था केन्द्रीय सरकार करती है (संविधान की धारा ६३, ६४, ६५ व ६६ के अन्तर्गत) तथा कुछ क्षेत्रों में दोनों का नियन्त्रण है (धारा २५, तृतीय तालिका) । इस प्रकार अंग्रेजी शासन-काल से राज्य ने शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करके और अपना हस्तक्षेप प्रारम्भ करके धीरे-धीरे शिक्षा पर अपना नियन्त्रण बढ़ा रखा है । आजकल शिक्षा की व्यवस्था राज्य-सरकारों एवं व्यक्तिगत प्रयासों द्वारा की जाती है । कहने को तो उत्तर प्रदेश में अधिकतर विद्यालय व्यक्तिगत है, परन्तु इन पर भी राज्य का नियन्त्रण है । राज्य सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम ही इन विद्यालयों में चलाया जा सकता है । राज्य सरकार के नियमों के अनुसार ही इनको मान्यता प्रदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जाती है। राज्य-सरकार इनको कुछ अनुदान देती है, जिसके कारण अपने अधिकारियों द्वारा समय-समय पर इनका निरीक्षण कराती है। राज्य के द्वारा ही इनकी परीक्षा-व्यवस्था की जाती है। अध्यापकों की नियुक्ति में भी राज्य के अधिकारियों की स्वीकृति लेनी पड़ती है। अर्थात्, ये व्यक्तिगत विद्यालय भी अपने प्रत्येक कार्य में राज्य के नियंत्रण में हैं।

आजकल देश में शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की माँग की जा रही है। अध्यापक, विद्यार्थी, अभिभावक तथा कुछ राजनीतिक दल इस माँग पर विशेष बल दे रहे हैं। अध्यापकों की ओर से इस माँग को पूरा कराने के लिए कभी-कभी आन्दोलन भी किए जा रहे हैं। भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षामंत्री श्री छागला ने भी इसी दिशा में एक पग उठाने के लिए शिक्षा पर केन्द्र के उत्तरदायित्व को स्वीकार कराना चाहा था। इस माँग का अर्थ केवल यह है कि अध्यापकों को राजकीय कोषागार से वेतन मिलने लगे, उन्हें अन्य राजकीय कर्मचारियों की तरह सुविधाएँ मिलने लगें। व्यक्तिगत विद्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद एवं राजनीतिक दलबन्दी समाप्त हो तथा देश में एक राष्ट्रीय शिक्षा-नीति अपनाई जा सके, जिसके अभाव में आज सभी राज्य 'अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग' अलाप रहे हैं। केन्द्रीय सरकार यदि कोई निर्देश देती है तो कुछ राज्य सरकारें उनकी अवहेलना कर देती हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या राष्ट्रीयकरण की माँग उचित है। क्या राज्य को शिक्षा पर पूर्ण नियन्त्रण करना चाहिए? क्या व्यक्तिगत प्रयासों को पूर्णरूपेण समाप्त कर दिया जाना चाहिए? भारतीय संविधान धारा ४६ तथा ५१ के अधीन प्रत्येक भारतीय नागरिक को यह अधिकार देता है कि वह अपने बालकों को किसी भी प्रकार एवं स्तर की शिक्षा दे। प्रत्येक नागरिक को इसके लिए अवसर मिलना आवश्यक है। अल्पमत वालों को भी अपनी भाषा के विकास का पूरा अधिकार है। यदि राष्ट्रीयकरण किया जाय, तो संविधान में आवश्यक संशोधन करना होगा, और वास्तव में उसे नये सिरे से लिखकर उसके आधारभूत सिद्धान्तों में परिवर्तन करना होगा।

कभी-कभी यह प्रश्न उठता है कि राज्य शिक्षा पर नियंत्रण क्यों चाहता है? वास्तव में राज्य शिक्षा पर नियंत्रण स्वयं अपने हित, जनता के हित तथा शिक्षा के हित के लिए करना चाहता है। प्रजातंत्रीय शासन प्रणाली वाले देश में राज्य का शिक्षा पर नियन्त्रण अपने हित में अधिक होता है। जो दल सरकार बनाता है, वह शिक्षा द्वारा अपनी विचारधारा फैलाने का प्रयत्न एवं विरोधी भावनाओं को रोकने का प्रयास करता है। शिक्षा द्वारा ही विचारों का प्रसार हुआ करता है। देश में शिक्षित वर्ग पर अपना प्रभाव स्थापित करने वाला दल ही स्थायी शासन स्थापित करने में सफल होता है। वह राज्य-शिक्षा पर नियन्त्रण हेतु जनता के हित की भी दुहाई देता है। वैसे, शिक्षा का भी हित इस दृष्टि से होता है कि सम्पूर्ण देश में एक राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली अपना ली जाती है।

राज्य शिक्षा पर नियन्त्रण चार प्रकार से करता है। प्रथम नियन्त्रण को वैधानिक नियन्त्रण कहते हैं। वैधानिक दृष्टि से भारत की सम्पूर्ण शिक्षा-व्यवस्था राज्य के अधिकार में है। संविधान की धारा ११ के अनुसार राज्य अपने क्षेत्र में शिक्षा-व्यवस्था के लिए उत्तरदायी हैं। उन्हें ६ से १४ वर्ष तक के प्रत्येक बालक एवं बालिका हेतु अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करना है। राज्य शिक्षा-संहिता का निर्माण करके अपने क्षेत्र में शिक्षा पर नियन्त्रण करता है। द्वितीय नियन्त्रण आर्थिक होता है। कुछ विद्यालय तो पूर्णरूपेण राजकीय होते हैं, जो विद्यालय व्यक्तिगत प्रयासों पर आधारित होते हैं, उन्हें अनुदान देकर राज्य उन पर नियन्त्रण स्थापित करता है। तृतीय नियन्त्रण शैक्षिक होता है। प्रत्येक विद्यालय को राज्य द्वारा स्वीकृत पाठ्यक्रम एवं पुस्तकों को ही चलाने की आज्ञा होती है। वे उनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर सकते हैं। परीक्षा-व्यवस्था भी राज्य के नियन्त्रण में रहती है। अन्तिम नियन्त्रण प्रशासनिक होता है। यद्यपि व्यक्तिगत विद्यालयों में प्रशासन प्रबन्ध-समितियों द्वारा किया जाता है, परन्तु ये प्रबन्ध-समितियाँ भी स्वतन्त्र होकर कार्य नहीं कर सकती हैं। उन्हें भी राज्य द्वारा निर्धारित शिक्षा-संहिता के अन्तर्गत ही कार्य करना पड़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। प्रधानाचार्य एवं अध्यापकों की नियुक्ति, मान्यता, नये विषय खोलना, पाठ्यक्रम निर्धारित करना आदि प्रत्येक कार्य में उन्हें राज्य के नियन्त्रण में कार्य करना पड़ता है।

शिक्षा को किसी न किसी के नियन्त्रण में रहना है। शिक्षा प्राचीन काल में गुरु के, उसके बाद एक परिवार के, फिर एक जाति (ब्राह्मण) के नियन्त्रण में रही। इसके बाद शिक्षा धार्मिक संस्थाओं (यथा—चर्च, मन्दिर एवं मस्जिद) के नियंत्रण में आई। राज्य ने इस क्षेत्र में बहुत बाद में प्रवेश किया। परन्तु अब दिन-प्रतिदिन राज्य शिक्षा पर अपना नियन्त्रण बढ़ा ही नहीं रहा वरन् उसे और कठोर करता जा रहा है। अभी कुछ समय पूर्व एक माँग उठी थी कि शिक्षा को अन्तरराष्ट्रीय नियन्त्रण में होना चाहिए। यह माँग अन्तरराष्ट्रीय सरकार की माँग के साथ ही उत्पन्न हुई थी। यदि हम उपर्युक्त प्रत्येक प्रश्न पर ध्यान दें तो कह सकते हैं कि अन्ततोगत्वा शिक्षा को राज्य के नियन्त्रण से भी मुक्त करना होगा। उस पर सार्वभौम, विश्वव्यापी सिद्धान्तों का ही नियन्त्रण रहना चाहिए। वास्तविक सिद्धान्त एवं आचार्यगण इन्हीं सार्वभौमिक सत्यों का अनुगमन करते हैं अतः शिक्षा पर गुरुओं का कुछ न कुछ नियन्त्रण लाभकारी होगा।

प्रयाग में आचार्य-कुल की स्थापना के अवसर पर भाषण करते हुए आचार्य विनोबा भावे ने शिक्षा, को राज्य के नियन्त्रण से मुक्त करने की बात कही थी। उन्होंने कहा था, "प्रजातन्त्र की सफलता के लिए शिक्षा राज्य के नियन्त्रण से मुक्त होनी चाहिए। भारतीय संस्कृति की विशेषता है कि यहाँ राज्यसत्ता पर ज्ञानियों का अंकुश रहा है।" उन्होंने राज्य के बढ़ते हुए नियन्त्रण की निन्दा करते हुए आगे कहा था, "अध्यापकों, विद्वानों तथा साहित्यकारों को जनता के हृदय पर अधिकार करके तथा राजनीतिक चक्कर से पृथक् रहकर राजनीति तथा राज्यसत्ता पर अंकुश लगाना चाहिए।" विनोबा जी के इन विचारों से असहमत होना कठिन है।

उपर्युक्त विस्तृत विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शिक्षा पर राजनीतिक दलों का नियन्त्रण नहीं होना चाहिए। जनतन्त्र में राज्यसत्ता दलगत राजनीति के हाथ में होती है अतः शिक्षा में राजनीति का हस्तक्षेप नहीं के बराबर होना चाहिए। इसके विपरीत स्वयं शिक्षा को आगे बढ़कर राजनीति पर अपना अधिकार जमाना चाहिए और उसे भ्रष्टता से मुक्त करना चाहिए। राजनीतिज्ञों को यह समझाना होगा कि शिक्षा (डा० आत्मानन्द मिश्र के शब्दों में) गरीब की लुगाई और सबकी भौजाई नहीं है जो हर अगुवा और पिछलगुवा उसे छेड़ता रहे तथा जिसका शिक्षा से नमस्कार नहीं, दुआ-वन्दगी नहीं, वह भी इसके सम्बन्ध में बिना सोचे-विचारे, बिना आनाकानी किये, बिना आगा-पीछे देखे कुछ भी कह डाले तथा हर ऐरे-ग़ैरे-नत्थू-खैरे को शिक्षा के बारे में कुछ कहने की मुकम्मिल आजादी हो। दलगत एवं फरेबी राजनीति के अखाड़ेबाजों को यह समझाना होगा कि शिक्षक एवं छात्र—भ्रष्टाचार, सामन्तशाही, आडम्बर, विलासिता आदि को समाजवाद की संज्ञा नहीं देंगे और राजनीति के नाम पर समाज-विरोधी तत्वों द्वारा शिक्षा की छेड़छाड़ बरदाश्त नहीं करेंगे।

प्रस्तुत विशेषांक तथाकथित राजनीतिज्ञों को शिक्षित करने के लिए ही नियोजित किया गया है। इस विशेषांक में विद्वान् एवं सुशिक्षित राजनीतिज्ञों के विचार भी सम्मिलित हैं जिससे यह प्रकट है कि जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है, प्रत्येक जागरूक नागरिक उसे दलगत राजनीति से ऊपर की वस्तु समझता है। शिक्षकों के विचार शिक्षा और राजनीति के विभिन्न पक्षों पर प्रस्तुत हैं। इनसे राजनीति के सम्बन्ध में शिक्षकों का स्वर उभरा है और उन्होंने अनेक विवादास्पद प्रश्नों का समाधान खोजने का प्रयास किया है। आवश्यक नहीं है कि सभी प्रकार के विचारों से सम्पादक-मण्डल सहमत हो किन्तु इन सभी लेखकों का 'साहित्य-परिचय-परिवार' हृदय से आभारी अवश्य है क्योंकि उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण, विवादास्पद, ज्वलन्त एवं सामयिक समस्या पर लेख भेजकर हमारे प्रयास को सफल बनाया है। केन्द्रीय शासन के माननीय मंत्रियों एवं राज्य सरकारों के माननीय मुख्यमन्त्रियों एवं मन्त्रियों का 'साहित्य-परिचय-परिवार' अत्यधिक कृतज्ञ है क्योंकि उन्होंने अपने सारगर्भित संदेशों द्वारा विशेषांक को सहयोग देकर आयोजकों का उत्साह बढ़ाया है।

—रामशकल पाण्डेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जिसमें फूट हो गई है और पक्ष-भेद हो गए हैं, ऐसा समाज किस काम का ? आत्म-प्रतिष्ठा और आत्मा की एकता की मूर्ति का समाज चाहिए। अलग रहकर जितना काम होता है, उससे सौ गुना संघ-शक्ति से होता है।"

—योगी अरविन्द

□ □

"जो दूसरों को स्वतन्त्रता से वंचित रखने की चेष्टा करते हैं, वे स्वयं भी स्वतन्त्र होने के अधिकारी नहीं होते। और ईश्वर की सृष्टि में वे अधिक दिन तक अपनी स्वतन्त्रता कायम नहीं रख सकते।"

—लिंकन

□ □

"राजनीतिज्ञ भावी निर्वाचन के विषय में सोचता है जबकि राजनीतिकुशल भावी पीढ़ी के विषय में चिन्ताग्रस्त रहता है।"

—जेम्स क्लार्क

□ □

"उनसे अधिक दयनीय दासता किसी की भी नहीं जो स्वय इस भ्रम में रहते हैं कि वे स्वतन्त्र हैं।"

—गेटे

□ □

"सभी राजनीतिक संस्थाएँ अपने झूठों के परिणामस्वरूप ही अन्त में मिट जाती हैं।"

—जान आरबुथनॉट

□ □

"एक सहस्र वर्ष भी कठिनता से एक राष्ट्र का निर्माण कर पाते हैं किन्तु एक घंटे मात्र में वह धराशायी हो सकता है।"

—बायरन

□ □

"विश्व एक सुन्दर पुस्तक के समान शिक्षा-पूर्ण है, किन्तु उसके लिए इसका रंचमात्र भी उपयोग नहीं जो इसको पढ़ नहीं सकता।"

—गोल्डोनी

□ □

"एक प्रजातन्त्र को हम अपने तरुणों को शिक्षित करने से बढ़कर और कौन-सा उपहार दे सकते हैं?"

—सिसेरो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा और राजनीति

डा० आत्मानन्द मिश्र
अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, सागर विश्वविद्यालय, सागर

अपनी आर्थिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति समूह या वर्ग बना लेता है। इसके सर्वनिष्ठ उद्देश्यों की भावना वर्ग के आन्तरिक भेदों को दबा देती है किन्तु समाप्त नहीं कर पाती। उसमें बुनियादी एकता आती है सर्वसम्मत मूल्यों से। अतएव समूह में मनुष्य और मनुष्य के बीच के अगणित अनियमित सम्बन्धों की शृंखलाएँ होती हैं जिनमें वर्गों की संश्लिष्टता भी निहित रहती है। समान विचाराचार वाले लोगों के यह वर्ग समाज कहलाते हैं। इन समाजों को समवेत करके उनके सामान्य सार्वजनिक हितों का प्रतिनिधित्व करने वाला संगठन 'राज्य' (स्टेट) कहलाता है। अपने कार्य को सम्पन्न करने के लिए उसे बल-प्रयोग का अधिकार दिया जाता है जो उसकी एक विशेषता होती है। इस अधिकार के द्वारा वह व्यवस्था, शान्ति और सामान्य आवश्यकताओं की संपूर्ति करता रहता है जिससे उसे सर्वोच्च प्रभुत्व प्राप्त होता है। अतएव राज्य वर्गों या समाजों का ऐसा संगठन है जो सामान्य अधिकारों और पारस्परिक लाभों को हस्तगत कराकर आत्मनिर्भर तथा समृद्ध जीवन-यापन सम्भव बनाता है।

राज्य और समाज—राज्य न समाज का समवयस्क होता है और न उसके समान विस्तृत ही। राज्य तो विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्त्यर्थ समाज के अन्तर्गत निर्मित एक संगठन है, जिसका प्रभाव प्रादेशिक सीमाओं तक ही रहता है। राज्य के पास प्रभुसत्ता होती है और वह अपने आदेशों का पालन क़ानून, पुलिस तथा सेना के बल पर करा लेता है; किन्तु समाज अपनी सत्ता का प्रयोग रूढ़ियों, परम्पराओं, लोकाचारों के आधार पर करता है और अनुनय-विनय, जोर-जबरदस्ती या बहिष्कार के भय द्वारा अपनी बात मनवाता है।

राज्य और शासन एक ही बात नहीं हैं। राज्य भावनात्मक है और शासन भौतिक। शासन राज्य का एक साधन मात्र है। जो व्यक्ति राज्य का संचालन करते हैं, वे शासन के अन्तर्गत आते हैं। शासन का कार्य राज्य के लक्ष्यों की पूर्ति करना है। यद्यपि शासन राज्य का एक आवश्यक तत्त्व है किन्तु उसकी कोई प्रभुसत्ता नहीं होती। शासन की नियामक सत्ता अवश्य होती है किन्तु वह राज्यसत्ता की भाँति मौलिक और असीमित नहीं। राज्य अपेक्षाकृत अधिक स्थायी होता है जबकि शासन अस्थायी एवं परिवर्तनशील। राज्य में सभी नागरिक आबाल-वृद्ध-वनिता सम्मिलित माने जाते हैं किन्तु शासन में कुछ थोड़े-से वयस्क-नागरिक ही रहते हैं। सब राज्यों में राज्यत्व के तत्त्व समान रूप से विद्यमान होते हैं अतएव राज्य सर्वत्र एक-सा होता है; किन्तु शासन का स्वरूप प्रत्येक राज्य में एक-सा नहीं होता।

शासन और राजनीति—शासन-प्रणाली की भिन्नता के आधार पर प्रायः राज्यों का वर्गीकरण किया जाता है। शासन सामान्यतः तीन प्रकार के माने जाते हैं; यथा :—

(१) यदि राज्य की प्रभुत्वशक्ति का प्रयोग एक व्यक्ति के हाथ में होता है तो उसे एकतन्त्र (मॉनर्की) कहते हैं। इसके विकृत रूप निरंकुश या अधिनायकवाद हैं।

(२) यदि राज्य की प्रभुत्वशक्ति कुछ व्यक्तियों के हाथ में हुई तो उसे अल्पतन्त्र (ऑलीगर्की) कहते हैं। इसके अन्य रूप कुलीनतन्त्र, अभिजाततन्त्र आदि हैं।

(३) यदि राज्य की प्रभुत्वशक्ति जनसाधारण के हाथ में हुई तो उसे लोकतन्त्र (पालिटी) कहते हैं। प्रजातन्त्र (डेमाक्रेसी) इसी का एक रूप है।

जिन नियमों, पद्धतियों और विधानों के अनुसार राज्य अपने देश का शासन चलाता है, वह समवेत में राजनीति (पॉलिटिक्स) कहलाती है। राजनीति का अवलम्बन करके ही राज्य की सुरक्षा, सुव्यवस्था और समृद्धि को दृढ़ बनाया जाता है। राजनीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दो प्रमुख भेद किये जाते हैं : एक वह जिसके द्वारा राज्य के भीतर सुप्रबन्ध और शान्ति रखी जाती है और दूसरा वह जिसके द्वारा परराष्ट्रों से सम्बन्ध दृढ़ किया जाता है। पहली को तन्त्र-नीति या प्रायः राजनीति कहा जाता है और दूसरी को राजनय (डिप्लोमेसी) की संज्ञा दी जाती है। शिक्षा का सम्बन्ध सामान्यतः राज्य के भीतर चलने वाली नीति से होता है।

शिक्षा में प्रयोग होने वाली राजनीति का मूलाधार होता है राज्य और व्यक्ति के बीच का सम्बन्ध। समाज बनने के पूर्व मनुष्य स्वतन्त्र और मुक्त था। अपनी इच्छा से उसने अपनी स्वतन्त्रता को सीमित करके समाज में रहना स्वीकार किया। इस स्वीकृति की शर्तों ने जब कभी उसकी स्वतन्त्रता को अधिक दबाया तो वह उन शर्तों में संशोधन करने को उद्यत हुआ। इससे स्पष्ट है कि वैयक्तिक और सामाजिक हितों में भी आधारभूत विरोध हो सकता है। राज्य समाज का एक विशिष्ट संगठन है। अतएव उसके प्रसंग में प्रायः प्रश्न उठता रहा है कि राज्य व्यक्ति से अधिक महत्त्वपूर्ण है अथवा व्यक्ति राज्य से ? इसी प्रश्न के उत्तर में शिक्षा-व्यवस्था की राजनीति छिपी रहती है। इस संदर्भ में राजनीति दर्शन की दो धाराएँ हैं : एक तो सर्वाधिकारवादी (टोटेलिटेरिअनिज्म) और दूसरी, लोकतांत्रिक (डेमाक्रेटिक)। इन एकतन्त्रीय और जनतन्त्रीय धाराओं के बीच एक अल्पतन्त्र की भी धारा आती है। शिक्षा-व्यवस्था पर इन विचारधाराओं का बड़ा प्रभाव पड़ा है अतएव इनका विवेचन आवश्यक हो जाता है।

सर्वाधिकारवाद (टोटेलिटेरिअनिज्म)—सामान्यतः सर्वाधिकारवाद का तात्पर्य एक दल पद्धति पर आधारित वह अधिनायकवादी व्यवस्था है जिसमें सामाजिक जीवन के सभी पक्षों को अपनी परिधि में समेट लेने का प्रयत्न होता है। इसके उदाहरण सोवियत रूस, साम्यवादी चीन, नाजी जर्मनी और फ़ासिस्ट इटली हैं। राज्य को अधिक महत्त्व देने की यह परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। व्यास, कौटिल्य, प्लेटो तथा अरस्तू सभी ने राजा या राज्य की महत्ता प्रतिपादित की है। उनके मत से व्यक्ति का सुखमय जीवन केवल राज्य में ही संभव है। उसकी अन्तर्निहित शक्तियों का विकास और उसकी अनेकानेक आवश्यकताओं की पूर्ति अकेले राज्य के ही वश की बात है। इसका समर्थन आधुनिक काल में नीत्से तथा हीगेल ने किया। इस दृष्टिकोण से राज्य मानव समाज का सम्पूर्ण अंतिम और सर्व व्यापक रूप है। राज्य में ही व्यक्ति का पूर्णतम विकास संभव है। उसकी निजी इच्छाओं को राजेच्छा में विघटित कर देना चाहिए और उसे अधिकतम स्वतन्त्रता राज्य की सेवा करने में ही प्रदान होना चाहिए। इस विचारधारा के लोग राज्य को एक आदर्शीकृत पारलौकिक सत्ता मानते हैं जो व्यक्तिगत नागरिकों के ऊपर होती है, उसकी इच्छाओं और आकांक्षाओं से परे होती है और सभी बातों में वह सर्वोच्च होती है। राज्य सार्वभौमिक इच्छा, न्याय, तर्क का साकार रूप है अतएव व्यक्ति के हित उसमें पूर्णरूपेण सम्मिलित हैं।

सर्वाधिकारवादी राज्य में साधारणतः जीवन का लक्ष्य और विशेषतः शिक्षा का उद्देश्य राज्य का कल्याण करना होता है। शिक्षा द्वारा राजेच्छा व्यक्ति में जागृत की जाती है। उसके द्वारा व्यक्ति का विकास ऐसे ढांचे में ढाला जाता है कि राज्य के हित तथा स्थायित्व सुनिश्चित हो जायें। उसमें अनुशासन का प्रशिक्षण व्यक्ति के विकास में अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। व्यक्ति को विचार, अभिव्यक्ति और कर्म की स्वतन्त्रता नहीं रहती वरन् राज्य सत्ता के आदेशों का पालन करना सिखाया जाता है। उच्च शिक्षा से राज्य को यदि कोई लाभ होने की प्रत्याशा रहती है तो उसकी व्यवस्था की जाती है और वह भी चुने हुए व्यक्तियों या नागरिकों के लिए होती है। शिक्षालयों के पाठ्यक्रम में राष्ट्रभाषा, इतिहास और संस्कृति पर बड़ा बल दिया जाता है जिससे छात्र देश की गौरवपूर्ण गाथा को आत्मसात् कर ले। भूगोल में देश की प्राकृतिक बनावट, साधनों और सीमाओं के वैशिष्ट्य को बढ़ा-चढ़ाकर बताया जाता है जिससे बालकों में देश-प्रेम उत्पन्न हो सके। ऐसे राज्य प्रायः पॉवलॉव के अनुबंधित अनुक्रिया (कंडीशण्ड रेस्पॉन्स) सिद्धान्त में अधिक विश्वास करते हैं, और बालक की स्वाभाविक प्रतिभा और प्रवृत्तियों पर ध्यान न देकर, उसमें राज्य की आवश्यकताओं के अनुकूल अनुक्रिया उत्पन्न कराने का प्रयत्न करते हैं। अतएव इनकी शिक्षण-पद्धतियों में अनुशासन, व्यवस्था, सत्ता का तत्पर अनुमोदन और व्यक्तित्व को दबाने पर बल रहता है। ऐसी शिक्षा-पद्धति प्रवेशन (इनडॉक्ट्रीनेशन) पर बल देती है।

अल्पतन्त्र (ऑलीगर्की)—शायद ही कभी शासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक व्यक्ति द्वारा किया जाता हो। प्रायः शासन की सत्ता कुछ चुने हुए व्यक्तियों के हाथ में रहती है। यह व्यक्ति अपने में से किसी को सर्वश्रेष्ठ घोषित कर सकते हैं अथवा न करें—दोनों ही स्थितियों में ऐसा शासन अल्पतंत्र कहलाता है। यह अल्पसंख्यक किसी प्रकार से भी शासन हथिया सकते हैं। यदि सर्वश्रेष्ठ होने के कारण यह शासन की सत्ता सम्हालते हैं तो वह कुलीनतन्त्र (आह्रोक्रेसी) कहलाता है जो वंशानुक्रम के आधार पर चल सकता है। यदि अधिक सम्पत्ति वाले शासन की बागडोर सम्हालते हैं तो उसे धनिकतंत्र (प्लूटोक्रेसी) कहते हैं। यदि विद्वता के कारण लोग शासन में घुसते हैं तो वह बौद्धिक अभिजाततंत्र कहलाता है। किसी भी दशा में यह समाज के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों या अभिजात वर्ग का शासन कहलाता है। इसमें शासन-सत्ता कुछ कुलीन अर्थात् जनता के आधार पर उच्च वर्ग के व्यक्तियों के हाथ में रहती है। कुलीनतंत्र में जनसाधारण शासक वर्ग से बिल्कुल अलग समझा जाता है और वह कभी शासकों की श्रेणी में नहीं पहुँच पाता। इस शासन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह संख्या के स्थान पर गुणों को अधिक महत्त्व देता है। इसकी मान्यता होती है कि राजनीतिक दायित्वों को सम्हालने के लिए सभी व्यक्ति सक्षम नहीं होते, शासन करने की योग्यता कुछ विरले व्यक्तियों में ही पाई जाती है। तीनों प्रकार के शासनों में,जिनकी चर्चा यहाँ हो रही है,कुलीनतंत्र का कुछ-न-कुछ अंश अवश्य विद्यमान रहता है।

कुलीनतंत्र में शिक्षा की व्यवस्था कुछ अभिजात वर्ग के लोगों के लिए ही की जाती है। जनसाधारण को शिक्षा देना शासन का कर्त्तव्य नहीं माना जाता। अधिक-से-अधिक साक्षरता उनके लिए पर्याप्त समझी जाती है। जनता को अशिक्षित रखना श्रेयस्कर समझा जाता है जिससे वह शासन के आदेशों का तत्परता से पालन करती रहे। अल्पतन्त्र, जनसाधारण को हेय दृष्टि से देखता है और उसके विकास के अवसर नहीं देता। अतएव वे अज्ञानता और निरक्षरता के शिकार बनते हैं।

शिक्षा के उद्देश्यों तथा मूल्यों को अल्पसंख्यक ही निर्धारित करते हैं और उन्हें सत्ता के बल पर प्रतिपादित करते हैं। यदि वयस्क उनसे सहमत नहीं होते तो उन्हें दबा-धमका कर मनाया जाता है और नई पीढ़ी को शिक्षा द्वारा उन्हें मान्य कराया जाता है। उन्हें जो कुछ पढ़ाना होता है, वह पहले से ही निश्चित कर लिया जाता है। अतएव शिक्षा के उद्देश्यों के सम्बन्ध में स्वतंत्र विचार या विवाद नहीं उठाया जा सकता। विश्वविद्यालयों को भी मुक्त विचार-विमर्श की स्वायत्तता नहीं होती। विशुद्ध विज्ञान जिसमें स्वतन्त्र अवलोकन एवं अवैयक्तिक निष्कर्षण का अवसर रहता है, नहीं पढ़ाया जाता वरन् उसका भी राष्ट्रीयता की ओर झुकाव कर दिया जाता है। अल्पतंत्र के अन्तर्गत शैक्षिक स्वतन्त्रता का तात्पर्य आत्मानुभूति या व्यक्ति का मोक्ष नहीं होता वरन् राज्य के हित में व्यक्ति का परिष्करण होता है। अतएव जिन गुणों और मूल्यों में व्यक्ति को दीक्षित किया जाता है वह हैं—अनुशासन, कर्त्तव्यपरायणता, आज्ञापालन और आत्मत्याग। इन गुणों के विकास करने में प्रवेशन पद्धति का प्रयोग न करके प्रबोधन (परसुएशन) का सहारा लिया जाता है। किसी तथ्य के सम्बन्ध में सिखाते समय इस बात पर जोर दिया जाता है कि वह जैसा बताया जा रहा है बिल्कुल वैसा ही है, उसमें संशय या विवाद करने का अवसर नहीं दिया जाता।

इस विचारधारा में कई निराधार धारणाएँ हैं। पहली यही कि केवल अल्पसंख्यकों का ही बौद्धिक प्रशिक्षण सम्भव है। अब वे अपनी बौद्धिक उच्चता की ऐनक लगा कर देखते हैं तो उनकी दृष्टि कहाँ तक ठीक हो सकती है। दूसरी धारणा यह है कि उच्च शिक्षा अल्पसंख्यकों के लिए इसलिए आवश्यक है कि उन्हें देश का उच्च कार्य करना पड़ता है जिसके द्वारा वे देश और समाज की सेवा करते हैं। किन्तु क्या यह उच्च शिक्षा यदि अन्य लोगों को दी जावे तो वे भी उतनी ही सेवा नहीं कर सकते ? मगर अल्पसंख्यक अपनी दूरी जनता से इतनी अधिक बढ़ा लेते हैं कि उन्हें अपने को विशिष्ट प्रतिभावान मानने में सुविधा होती है।

लोकतन्त्र (डेमाक्रेसी)—लोकतन्त्र जनता की सहमति का शासन है जिसमें सर्वोच्च सत्ता जनता के पास रहती है। जनता अपने प्रतिनिधियों को चुनकर शासन करने के लिए भेजती है। इसमें जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा शासन होता है। लोकतंत्र की अवस्थ भावना है—सामान्य व्यक्ति में श्रद्धा; उसका विशेष गुण है—स्वतंत्रता; उसका प्रमुख सिद्धान्त है—समता और उसका विशिष्ट धर्म है—सेवा। उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक पुस्तकालय के लिए आवश्यक । विद्वानों और साहित्य के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी !!

'लिपि' के नवीनतम बहुचर्चित और बहुप्रशंसित प्रकाशन

मूर्धन्य आलोचक डा० इन्द्रनाथ मदान द्वारा संपादित

समकालीन साहित्य मूल्यांकन माला की चार उपयोगी नई पुस्तकें

- **हिन्दी आलोचना : पहचान और परख**
- **हिन्दी कहानी : पहचान और परख**
- **हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख**
- **हिन्दी नाटक और रंगमंच : पहचान और परख**

'लिपि प्रकाशन' द्वारा आयोजित इस नवीनतम पुस्तक माला का उद्देश्य है साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं सम्बन्धी उन प्रतिनिधि आलोचनात्मक निबन्धों को एक जगह प्रस्तुत करना; जो इन विधाओं और इनकी बहुर्चाचित रचनाओं की पुरानी और नई पहचान और परख प्रस्तुत कर सकें ताकि दोनों के मिलान से आज की रचना-समस्या और आलोचना-समस्या को उजागर किया जा सके और साथ ही समकालीन प्रासंगिकता का निकष भी रेखांकित हो सके। प्रत्येक २४.००

छायावाद के आधार स्तम्भ
गंगाप्रसाद पाण्डेय

छायावाद युगीन काव्य के मर्मज्ञ समीक्षक का अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी ग्रन्थ । 'महाप्राण निराला' और 'महीयसी महादेवी' के यशस्वी लेखक की नवीनतम चर्चित कृति । रु० ३०.००

आर्य-द्रविड़ भाषाओं की मूलभूत एकता
भगवान सिंह

तुलनात्मक भाषा विज्ञान का विद्वानों द्वारा प्रशंसित महत्वपूर्ण ग्रन्थ । भाषाशास्त्र के अध्येताओं के साथ ही पुरातत्व, प्राच्य विद्या और प्राक्-इतिहास के पाठकों के लिए उपयोगी । २५.००

देशी शब्दों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन
डा० चन्द्रप्रकाश त्यागी

भाषाशास्त्रियों द्वारा प्रशंसित अद्वितीय शोध-ग्रन्थ । देशज शब्दों के विकास का विशद निरूपण । अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थ । ३०.००

उपन्यास

ताँबे के पैसे	आनन्द प्रकाश जैन	२०.००
अंतर्मुखी	आनन्द प्रकाश जैन	१२.००
क्रान्ति बीज	गोपीकुमार कौशल	१०.००
दीपक राग	गोपीकुमार कौशल	७.००

कहानी

इति और हास	आनन्दप्रकाश जैन	रु० १२.००
गुलेरी की अमर कहानियाँ	सं० श्रीकान्त व्यास	४.५०
अपरिचित का परिचय	प्रियदर्शी प्रकाश	५.००

नाटक

दूसरा दरवाजा	डा० लक्ष्मीनारायण लाल	१०.००
मुद्राराक्षस	सं० डा० सुरेशचन्द्र गुप्त	८.००
शकुन्तला नाटक	सं० डा० सुरेशचन्द्र गुप्त	१०.००

जीवनी

क्रान्तिदूत भगतसिंह और उनका युग	मन्मथनाथ गुप्त	२०.००

संस्मरण

मैं अंग्रेजों का जासूस था	धर्मेन्द्र गौड़	८.००

लिपि प्रकाशन
ई १०/४, कृष्णनगर, दिल्ली–११००५१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार-शिला है—सामान्य व्यक्ति में अन्तर्निहित शक्तियों की असीम सम्भावनाएँ। उसका दृढ़ विश्वास है कि यदि अवसर दिए जायँ तो साधारण-से-साधारण नागरिक भी अपनी योग्यताओं और बुद्धि-वैभव का समुचित विकास कर सकता है। उसमें उच्चादर्शों का आह्वान किया जा सकता है और वह उनकी गरिमा के अनुकूल कार्य भी कर सकता है। लोकतन्त्र की मान्यता है कि नेतृत्व किसी विशेष प्रकार के व्यक्तियों का एकाधिकार नहीं वरन् किसी भी स्थिति या परिस्थिति से नेता का उद्भव हो सकता है।

अतएव लोकतन्त्र उत्तम शिक्षा के अवसर सभी को प्रदान करता है ताकि सभी को अपनी संभाव्य शक्तियों और प्रतिभाओं को विकसित करने का मौका मिले। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता, योग्यता और रुचि के अनुरूप शिक्षा देने के लिए शिक्षा-उद्देश्यों की विभिन्नता रहती है। एकतन्त्र राज्य में एक रस उद्देश्य सभी छात्रों पर लाद दिया जाता है किन्तु लोकतन्त्र में विविध छात्रों के लिए विविध उद्देश्य हो सकते हैं। इन उद्देश्यों का अन्तिम लक्ष्य लोकतन्त्रवादी नागरिक निर्माण करना रहता है। मानव व्यक्तित्व को महत्त्व देने के कारण शिक्षा बालकेन्द्रित होती है। बालकों के व्यक्तिगत भेदों पर बल दिया जाता है। किन्तु इन भेदों का आधार मनोवैज्ञानिक होता है, विवेकहीन परम्परा नहीं। लोकतन्त्र की शिक्षा में वंशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण को अधिक महत्त्व दिया जाता है। समानता के सिद्धान्त को मान्य करने के कारण उसकी शिक्षा में बड़े-छोटे या अमीर-गरीब में कोई अन्तर नहीं माना जाता और न किसी विशिष्ट वर्ग की शिक्षा का प्रबन्ध ही किया जाता है।

लोकतांत्रिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में विविधता होती है; ताकि प्रत्येक बालक अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार विषय चयन कर सके। उसकी शिक्षा-पद्धति का ध्येय बालकों को स्वयं ज्ञानार्जन करने के लिए अधिक सक्रिय बनाना रहता है जिससे वे अपनी सामर्थ्य और गति से प्रगति कर सकें। शिक्षक निर्देशक और पथप्रदर्शक का कार्य करता है। विद्यालय के प्रबंध में छात्रों की सहायता ली जाती है और सामूहिक प्रयत्नशीलता, सहयोग एवं सहकारिता का वातावरण निर्मित किया जाता है।

शिक्षा पर नियंत्रण और राजनीति—शिक्षा और राजनीति के संदर्भ में प्रायः प्रश्न उठाया जाता है कि शिक्षा पर किसका नियन्त्रण हो? शासन या निजी संस्थाओं अथवा व्यक्तियों का? प्रायः यह मान लिया जाता है कि शिक्षा पर शासन का किसी सीमा तक नियंत्रण आवश्यक है। किन्तु विवाद इस बात पर उठता है कि शासन का नियन्त्रण किस सीमा तक हो? यह सीमा निर्धारित करने में ही राजनीति प्रविष्ट कर जाती है।

प्राचीन काल में शिक्षा पूर्णतः व्यक्तिगत नियन्त्रण में थी। उस समय भी शिक्षा काफी समृद्ध थी; किन्तु उसका लाभ केवल कुछ सीमित वर्ग को ही प्राप्त होता था। अधिकांश व्यक्ति निरक्षर रहकर दूसरों की सेवा करने में ही सन्तोष करते थे। शासन इन व्यक्तिगत शिक्षकों की यदाकदा सहायता कर देता था किन्तु शिक्षा देना अपना कर्त्तव्य नहीं मानता था। इस समय शिक्षा पर प्रायः धर्म का वर्चस्व था और शिक्षा-व्यवस्था में धार्मिक संस्थाएँ भी संलग्न थीं। किन्तु जब शिक्षा जन-साधारण में फैली और धर्म के कारण युद्ध होने लगे, तब किसी बड़ी धर्म-निरपेक्ष संस्था का शिक्षा पर नियंत्रण आवश्यक हो गया। इस स्थिति में राज्य शासन का शिक्षा में प्रवेश हुआ। पहले उसने भवन-निर्माण और शिक्षक-वेतन में सहायता की, फिर पुस्तकें, सामग्री आदि देकर। धीरे-धीरे राज्य ने शिक्षा में प्रवेश पा लिया। यहाँ तक कि आज प्रायः सम्पूर्ण शिक्षालय उसी के नियन्त्रण में आ गए हैं। निजी प्रयासों की अपेक्षा शासन शिक्षा-व्यवस्था करने के लिए अधिक सम्पन्न है। वह शिक्षा व्यय के लिए कर आरोपित कर सकता है, छात्रों की अनिवार्य उपस्थिति के लिए नियम बना सकता है, विभिन्न प्रकार के शिक्षालय खोल सकता है।

शासन के शिक्षा-नियंत्रण के सम्बन्ध में दो विचार-धाराएँ हैं: एक है सर्वाधिकारवादी जो शिक्षा को अपने पूर्ण नियंत्रण में रखती है और जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है। दूसरी है—बहुलतावादी (प्लुरलिज्म), जिसका मत है कि राज्य व्यक्ति के अनेकानेक हितों को साधने में असमर्थ होता है; अतएव मनुष्य को संवासों का निर्माण कर अपने शिक्षा जैसे हितों की व्यवस्था करनी चाहिए, और राज्य की प्रभुसत्ता का कुछ अंश इन संवासों को भी प्राप्त होना चाहिए। सर्वाधिकारवादी विचारधारा प्रायः एकतंत्र और अल्पतंत्र राज्यों में पाई जाती है और बहुलतावादी विचारधारा लोकतंत्र में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वाधिकारवादी विचारधारा की मान्यता है कि मनुष्य द्वारा निर्मित सब समुदायों में राज्य सबसे अधिक सार्वजनिक होता है। वह सार्वभौमिकता का प्रतिनिधित्व करता है और उससे प्रेरणा प्राप्त करके ही व्यक्ति कुछ काम का आदमी बन सकता है। व्यक्ति को नागरिक होना अनिवार्य है और यह तभी संभव हो सकता है जब वह वैयक्तिकता की सीमाएँ पार कर सार्वभौमिकता में विलीन हो जाय। अतएव राज्य की सम्पूर्ण शिक्षा पर शासन का पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए। निजी शिक्षालयों को उसमें कोई स्थान नहीं। इसमें रूसो की मानव की शिक्षा को तिलांजलि देकर हीगेल की नागरिक की शिक्षा को महत्व दिया जाता है। इसमें न केवल राज्य बालक की शिक्षा की व्यवस्था करता है वरन् राज्य के लिए ही बालक की शिक्षा-व्यवस्था होती है। अतएव नैतिक और राजनीतिक दोनों दृष्टियों से शासन शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान बना लेता है। ऐसे नियंत्रण में शिक्षक और शिक्षार्थी को कोई शैक्षिक स्वतंत्रता नहीं रहती। शिक्षा राजनीति की अनुचरी बन जाती है और किसी प्रकार की प्रगति करना असंभव हो जाता है। बालकों को यथार्थ सत्य का कभी बोध नहीं हो पाता; वे सदा प्रचार के शिकार बने रहते हैं। उनमें स्वतंत्र अवलोकन, विवेक, विभेदक बुद्धि तथा निष्कर्षण के गुण नहीं उत्पन्न हो पाते।

बहुलतावादी विचारधारा राज्य की सत्ता घटाये रखने में विश्वास करती है। अतएव अनेक सामाजिक उद्यम वह अन्य मानव-समुदायों; जैसे—परिवार, धार्मिक संस्थाओं आदि पर छोड़ देना चाहती है। इससे केवल राज्य की एकरसता से ही बचाव नहीं होता वरन् विभिन्न प्रकार से कार्य करने के ढंगों में स्पर्धा भी उत्पन्न की जा सकती है। इस विचारधारा में राज्य, परिवार धार्मिक और औद्योगिक संस्थान सभी अपने-अपने शिक्षालय चला सकते हैं। बालकों की शिक्षा-व्यवस्था का एकमात्र अधिकार राज्य को ही नहीं रहता। इसमें सार्वजनिक और निजी विद्यालय एक साथ चलते हैं और आपसी स्पर्धा के कारण उसमें उन्नति होती रहती है। बालक को नागरिक बनाने पर ही बल नहीं रहता वरन् उसके वैयक्तिक विकास पर भी ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार नैतिक सत्ता को राज्य से अलग करके व्यक्तिगत प्रयासों को सौंपने से राज्य के गुण-दोषों का बौद्धिक स्तर पर सच्चा विवेचन संभव बनता है।

इस विचारधारा में प्रश्न उठाया जाता है कि कितनी शिक्षा राज्य के नियंत्रण में और कितनी निजी संस्थाओं के नियंत्रण में रखी जाय। इसके प्रायः दो रूप पाये जाते हैं—एक, अहस्तक्षेपी नीति (लेसे-फेयर) का और दूसरा, समाजवादी नीति का। पहली में शासन शिक्षा व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं करता और व्यक्तिगत उद्यमों को व्यवस्था करने के लिए स्वतंत्र छोड़ देता है। दूसरे में शासन स्वयं अपने शिक्षालय स्थापित करता है। अहस्तक्षेपी नीति में शासन का प्रायः कोई नियंत्रण नहीं रहता और शिक्षा की व्यवस्था परिवार, लोकहितकारी तथा धार्मिक संस्थाओं पर निर्भर करती है। इसमें इतनी छूट दी जा सकती है कि अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाय। निजी संस्थाओं पर शिक्षा-व्यवस्था छोड़ देने पर भी शासन को विकलांगों, दरिद्रों और पिछड़े व्यक्तियों की शिक्षा का प्रबंध करना ही पड़ता है। इतिहास साक्षी है कि निजी संस्थाएँ शिक्षा की सम्पूर्ण गुणात्मक एवं संख्यात्मक व्यवस्था करने में असमर्थ रही हैं। कुछ व्यक्तियों ने तो इतनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है कि वे अपना शैक्षिक कर्तव्यपूर्ण करने के स्थान पर शिक्षा से निहित स्वार्थों की पूर्ति करते रहे हैं।

अलेक्जेण्डर हैमिल्टन का कथन है कि "यदि शासन अल्पसंख्यकों के हाथ में है तो वे बहुसंख्यकों पर अत्याचार करते हैं, यदि वह बहुसंख्यकों के हाथ में है तो वे अल्पसंख्यकों पर अत्याचार करते हैं। अतएव इसे दोनों के हाथों में होना चाहिए।" यह बात शिक्षा के क्षेत्र में बड़े महत्व की है। लोगों के मस्तिष्कों, प्रतिमाओं और मतों का नियंत्रण उनकी सम्पत्ति, व्यापार तथा शरीर पर नियंत्रण करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। अतएव शिक्षा की व्यवस्था शासन और निजी प्रयासों के परस्पर सहयोग से होना चाहिए। व्यक्ति के विकास में राज्य का हित भी निहित है अतएव शिक्षा को शासन से बिल्कुल अलग कर देना उचित न होगा। अपने प्राकृतिक साधनों के संरक्षण की भाँति उसे अपने मानवीय साधनों का भी संरक्षण करना चाहिए; तभी वह राज्य जीवनदायक गुणों और कौशलों को बनाये रख सकेगा। अतएव शासन को मात्रा में पर्याप्त और स्तर में ऊँची शिक्षा की व्यवस्था करना आवश्यक है। उसे अपने शिक्षालय शिशु-शालाओं से विश्वविद्यालय तक तथा उदार शिक्षा से लेकर वृत्तिक एवं तकनीकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा तक में खोलना चाहिए। शिक्षा पर जब शासन का नियंत्रण होता है तो उसकी प्रवृत्ति केन्द्रीकरण की ओर होती है। किन्तु स्थानीय शिक्षा-अधिकारियों को पहल और प्रयोग करने के अधिक अवसर और शैक्षिक स्वतंत्रता देने के लिए तथा शिक्षा पर निकट देखरेख रखने के लिए शिक्षा-प्रशासन का विकेन्द्रीकरण आवश्यक होता है।

सब विद्यालय शासन के नियन्त्रण में हों या सब निजी प्रयासों द्वारा चलाये जायें, यह दोनों ही अतिवादी नीति को प्रश्रय देते हैं। मध्यमार्ग ही श्रेयस्कर होगा। शिक्षा समाज का कर्म है अतएव समाज को इसकी यथा-सम्भव व्यवस्था करने का मौका देना चाहिए। जहाँ कहीं समाज आगे न आए वहाँ शासन को प्रबन्ध करना चाहिए। आदर्श विद्यालयों के रूप में कुछ शासन की संस्थाएँ हो सकती हैं। शिक्षा में असमानता दूर करने के लिए, चाहे वह पिछड़े वर्ग की शिक्षा से सम्बन्धित हो अथवा धनसाध्य विषयों के पढ़ाने की हो, शासन को प्रबन्ध करना चाहिए। शेष के लिए निजी प्रयासों को अनुदान देकर प्रोत्साहित करना चाहिए। वे ठीक स्तर की शिक्षा दें और अपने स्वार्थों की सिद्धि में न लगें, इसके लिए शासन का निरीक्षण और पर्यवेक्षण आवश्यक होगा। शिक्षालयों को मान्यता देने और निरीक्षण करने में ही शासन शिक्षा पर समुचित नियंत्रण रख सकता है। लोकहितकारी राज्य (वेलफेयर स्टेट) में इसी प्रकार का शिक्षा नियंत्रण मान्य होता है।

भारत में लोकहितकारी राज्य की स्थापना हुई है जिसमें समाजवादी ढाँचे का समाज और मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को स्वीकार किया गया है। संविधान ने अल्पसंख्यकों को अपनी इच्छानुसार शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित तथा संचालित करने का अधिकार दिया है। इससे स्पष्ट है कि यहाँ दो प्रकार के, शासकीय तथा निजी प्रयासों को शिक्षा की व्यवस्था करने का अवसर दिया गया है। भारत के तीन प्रदेशों को छोड़कर अन्य सभी में निजी प्रयासों की प्रधानता है। केवल आंध्र-प्रदेश, मध्य-प्रदेश और राजस्थान में अधिकांश शासकीय विद्यालय हैं। उनमें अशासकीय विद्यालयों को शासन के अधीन करने की विशेष प्रवृत्ति दिखाई देती है। छोटे-छोटे नेता निजी विद्यालयों को हड़पवाने में ही अपनी सारी राजनीति लगा देते हैं। उधर उत्तर-प्रदेश में शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की आवाज बुलन्द की जा रही है। कुछ प्रदेशों ने पाठ्य-पुस्तकों का व्यापार अपने हाथ में ले लिया है। यह शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की दिशा में अभिनव कदम है।

प्रश्न उठता है कि "क्या शिक्षा का राष्ट्रीयकरण उचित है?" सर्वाधिकारवादी देशों में शिक्षा की ऐसी ही स्थिति है और उसका उपयोग मतान्तः प्रवेशन के लिए किया जा रहा है। लोकतन्त्र में भी सम्भव है कि एक दल या गुट का शासन बहुत काल तक बना रहे और वह धीरे-धीरे अल्पतंत्र की ओर ढुलककर अधिनायकवाद में फिसल जाय। तो फिर उसमें भी शिक्षा द्वारा मतान्तः प्रवेशन की प्रवृत्ति उत्पन्न हो सकती है। तब लोकतन्त्र की शिक्षा का यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य होगा। किन्तु भारत में शिक्षा का राष्ट्रीयकरण कौन चाहता है? शायद कुछ अभिभावक चाहते हैं जो अपने बालकों को अच्छी शिक्षा दिलाने के इच्छुक हैं, कुछ सरकारी कर्मचारी चाहते हैं जो निजी संस्थाओं की अनियमितताओं से ऊब उठे हैं, और बड़ी संख्या में शिक्षक वर्ग जो अच्छी सेवा-शर्तें मांगते हैं और सरल सुगम कार्य चाहते हैं। राजनीतिक दबाव तथा अन्य कारणों से कुछ राज्य शासनों ने निजी संस्थाओं को अपने नियंत्रण में ले भी लिया है। किन्तु बहुत-सी सरकारी संस्थाएँ स्वयं निम्न स्तर की हैं और उनकी संख्या में वृद्धि करने से शिक्षा का उद्धार नहीं हो सकता।

राष्ट्रीयकरण करने से राजस्व व्यय बढ़ेगा और सामुदायिक सहयोग घटेगा। शिक्षा जैसी समाज-सेवा के लिए समुदाय का योगदान आवश्यक है। उदाहरणार्थ—बैंकों के राष्ट्रीयकरण को लीजिए। राष्ट्रीयकृत बैंकों की पहले की अपेक्षा कार्यक्षमता घट गई है और सेवा-भावना में कमी आ गई है। भले ही उनके कर्मचारियों में सुरक्षा की भावना आई हो और उनकी सेवा-शर्तें अच्छी हो गई हों, किन्तु उनकी हड़तालों और कलम-बंदी के कारण जनता की असुविधाएँ बढ़ी हैं। किसी उद्यम या संस्था की बुराइयों को दूर करने के लिए राष्ट्रीयकरण कोई रामबाण नहीं है। वह आजकल का एक आकर्षक नारा अवश्य है किन्तु अनियमित एवं अतार्किक कार्य राष्ट्र के नाम पर कर देने से वह न्यायसंगत और कल्याणकारी बन जाय, यह आवश्यक नहीं है।

[शेष पृष्ठ ५१ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा से प्रकाशित

प्रशिक्षण, मनोविज्ञान की श्रेष्ठ पुस्तकें

आदि और मध्ययुगीन भारत में शिक्षा □
डा० सरयूप्रसाद चौबे । १०.००
(प्रथम संस्करण, १९७४)

भारतीय शिक्षा के प्रवर्त्तक □
डा० आत्मानन्द मिश्र । १५.००

भारतीय शिक्षा □
सं० डा०एस०एन०मुकर्जी, डा० ओड़ १२.००

भारतीय शिक्षा का इतिहास □
जौहरी, पाठक । १२.५०
(आठवाँ संस्करण, १९७४)

भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ □
पी० डी० पाठक । १५.००
(प्रथम संस्करण, १९७४)

भारतीय शिक्षा के आयोग □
पाठक, त्यागी । ७.००

शिक्षा आयोग : कोठारी कमीशन □
पाठक, त्यागी । ४.००

शिक्षा-मनोविज्ञान □
डा० एस० एस० माथुर । १८.००
(तेरहवाँ संस्करण, १९७४)

शिक्षा-मनोविज्ञान □
पी० डी० पाठक । १४.००
(पाचवाँ संस्करण, १९७४)

Educational Psychology □
Dr. S. S. Mathur । 25.00

□ शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त
पाठक, त्यागी । १४.००
(सातवाँ संस्करण, १९७४)

□ शिक्षा सिद्धान्त
डा० एस० एस० माथुर । १०.००
(नवाँ संस्करण, १९७४)

□ शिक्षण कला एवं नवीन पद्धतियाँ
डा० एस० एस० माथुर । ९.००

□ सफल शिक्षण कला
पाठक, त्यागी । १०.००
(चतुर्थ संस्करण, १९७४)

□ विद्यालय प्रशासन एवं संगठन
एस० पी० सुखिया । १२.००
(नवाँ संस्करण, १९७४)

□ शैक्षिक एवं विद्यालय प्रशासन
भाई योगेन्द्रजीत । १०.००
(चतुर्थ संस्करण, १९७४)

□ स्वास्थ्य शिक्षा
डी० जी० पी० शैरी । १०.००
(आठवाँ संस्करण, १९७४)

□ **Health Education**
Dr. S. P. Chaube . 10.00

□ शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्त्व
श्रीमती सुखिया, डा० मेहरोत्रा । १२.५०

□ शैक्षिक पर्यवेक्षण के मूल तत्त्व
पारसनाथ राय । ५.००

□ शैक्षिक मूल्यांकन
रामपालसिंह वर्मा । ५.००

□ मनोविज्ञान, शिक्षा में मापन, मूल्यांकन
आर० एन० अग्रवाल । १४.००
(पंचम संस्करण, १९७४)

□ मनोविज्ञान एवं शिक्षा में सरल मूल्यांकन
रामपालसिंह वर्मा । ५.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ शैक्षिक मापन एवं निर्देशन
उमेश प्रसाद सिंह । ३.००

□ मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकी
डा० प्रीती वर्मा, श्रीवास्तव । ६.००
(तृतीय संस्करण, १९७४)

□ शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग
सुरेश भटनागर । ६.००

□ शिक्षा में सरल सांख्यिकी
रामपालसिंह वर्मा । ६.००

□ शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श
डा० सीताराम जायसवाल । १०.००

□ शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन
वर्मा, उपाध्याय । १०.००
(चतुर्थ संस्करण, १९७४)

□ निर्देशन एवं परामर्श
पी० डी० पाठक । ४.००

□ भारतीय शिक्षा-दर्शन
डा० रामनाथ शर्मा । १०.००

□ शिक्षा-दर्शन
डा० रामशकल पाण्डेय । १२.००
(तृतीय संस्करण, १९७४)

□ शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त
पाठक, त्यागी । १२.००
(संशोधित पंचम संस्करण, १९७४)

□ शिक्षा व्यवस्थाएँ
डा० सरयूप्रसाद चौबे । १२.००
(प्रथम संस्करण, १९७४)

□ तुलनात्मक शिक्षा
डा० सरयू प्रसाद चौबे । १८.००

□ संयुक्त राज्य अमेरिका की शिक्षा-प्रणाली
डा० सरयूप्रसाद चौबे । ६.००

□ सोवियत जनशिक्षा का स्वरूप
प्रो० चौहान, डा० सिंह । ४.००

□ इंग्लैण्ड की शिक्षा-प्रणाली
एच० एन० सिंह । ४.५०

□ शिक्षा और भाषा
डा० रामशकल पाण्डेय । ५.००

□ महान पश्चिमी शिक्षा-शास्त्री
डा० रामशकल पाण्डेय । ६.००

□ अन्य भाषा शिक्षण
डा० महावीर सरन जैन । ४.००

□ नैतिक-शिक्षा शिक्षण
के० सी० मलैया । ३.००

□ शिक्षक प्रशिक्षण
विद्यावती मलैया । ४.००

□ कक्षा शिक्षण में सहायक सामग्री
एम० एल० चौरासिया । ४.००
(द्वितीय संस्करण, १९७४)

□ **A Sociological Approach to Indian Education**
Dr. S. S. Mathur । 20.00
(3rd Edition, 1974)

□ **Nehru : on Society, Education and Culture**
Dr. Sitaram Jayaswal । 10.00

□ हिन्दी-शिक्षण
डा० रामशकल पाण्डेय । ७.००
(प्रथम संस्करण, १९७४)

□ हिन्दी भाषा-शिक्षण
भाई योगेन्द्रजीत । ८.००
(ग्यारहवाँ संस्करण, १९७४)

□ मातृभाषा-शिक्षण
के० क्षत्रिया । ७.००

□ इतिहास शिक्षण की रूपरेखा
भाई योगेन्द्रजीत । ४.००

□ इतिहास-शिक्षण
गुरुसरनदास त्यागी । ७.००
(नवाँ सस्करण, १९७४)

□ सामाजिक अध्ययन का शिक्षण
गुरुसरनदास त्यागी । ५.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरिक शास्त्र का शिक्षण
गुरुसरनदास त्यागी । ५.००
(छठा संस्करण, १९७४)

शिक्षक महाविद्यालयों में सामाजिक अध्ययन शिक्षण
सतगुरु शरण, दिनेश प्रकाश शर्मा । ५.००

नागरिकशास्त्र शिक्षण-कला
डा० उमेशचन्द्र कुदेसिया । ६.००
(प्रथम संस्करण, १९७४)

भूगोल-अध्यापन
जगदीश प्रसाद वर्मा । ७.५०

भूगोल-शिक्षण
एच० एन० सिंह । ६.००
(आठवाँ संस्करण, १९७४)

नवीन विज्ञान-शिक्षण
रावत, अग्रवाल । ६.००
(तृतीय संस्करण, १९७४)

विज्ञान-शिक्षण
डी० एस० रावत । ६.००
(नवाँ संस्करण, १९७४)

गणित-शिक्षण
रावत, अग्रवाल । ६.००
(नवाँ संस्करण, १९७४)

संस्कृत-शिक्षण
डा० रामशकल पाण्डेय । ६.५०
(छठा संस्करण, १९७४)

वाणिज्य-शिक्षण
उदयवीर सक्सेना । ६.००

गृहविज्ञान-शिक्षण
डा० जी० पी० शैरी । ६.००

अर्थशास्त्र-शिक्षण
गुरुसरनदास त्यागी । ६.००

Essentials of English Teaching
R. K. Jain . 12.00

मनोविज्ञान की पद्धतियाँ एवं सिद्धान्त
डा० जे० डी० शर्मा । १८.००
(प्रथम संस्करण, १९७४)

मनोविज्ञान का इतिहास : १
डा० शर्मा, सारस्वत । १०.००

मनोविज्ञान का इतिहास : २
डा० जे० डी० शर्मा । ८.००

मनोविज्ञान के सम्प्रदाय
रामपालसिंह वर्मा । ४.००

सामान्य मनोविज्ञान
डा० एस० एस० माथुर । १०.००

असामान्य मनोविज्ञान के मूल आधार
डा० लाभसिंह, डा० गोविन्द तिवारी । १८.००
(द्वितीय संस्करण, १९७४)

असामान्य मनोविज्ञान
डा० लाभसिंह, डा० गोविन्द तिवारी । १२.५०
(द्वितीय संस्करण, १९७४)

समाज मनोविज्ञान : प्रारम्भिक अध्ययन
डा० एस० एस० माथुर । १०.००
(पंचम संस्करण, १९७४)

समाज मनोविज्ञान
डा० एस० एस० माथुर । १५.००

औद्योगिक मनोविज्ञान
डा० आर० के० ओझा । १२.५०

विकासात्मक मनोविज्ञान
भाई योगेन्द्रजीत । ६.००

बाल मनोविज्ञान
भाई योगेन्द्रजीत । ८.००
(छठा संस्करण, १९७४)

Physiological Psychology
Dr. J. D. Sharma . 8.00

विनोद पुस्तक मन्दिर
आगरा–२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा और राजनीति : एकात्म मानववादी कसौटी

डा० रामनाथ शर्मा
रीडर तथा अध्यक्ष — मेरठ कालेज, मेरठ

शिक्षा और राजनीति का प्रश्न आधुनिक काल में विवादास्पद बन गया है। जहाँ एक ओर सक्रिय छात्र और शिक्षक राजनीति के क्षेत्र में भी सक्रिय होने के अपने अधिकार की जोरदार माँग करते आ रहे हैं वहाँ छात्रों और शिक्षकों का दूसरा वर्ग राजनीति में इस रुचि को सर्वथा अनुचित और अधिकार-क्षेत्र से बाहर मानता रहा है। जनता में भी इस सम्बन्ध में ये दोनों मत पाये जाते हैं। जहाँ कुछ लोग छात्रों के राजनीति के क्षेत्र में उतरने का स्वागत करते दिखलायी पड़ते हैं वहाँ अन्य लोग यह चाहते हैं कि विद्यार्थी-जीवन में युवक-युवतियाँ अपनी समस्त शक्ति को विद्याध्ययन में ही लगावें। राजनीतिज्ञों और राजनैतिक दलों के स्वार्थ तो इसी में हैं कि वे छात्रों और शिक्षकों को अपने कार्यक्रमों में घसीट लें क्योंकि जहाँ इससे एक ओर उनके कार्यक्रमों को बल मिलता है वहाँ दूसरी ओर नेताओं की नई पीढ़ी भी तैयार होती है। इस मत-मतान्तर में सामान्य व्यक्ति को यह निश्चित करना बहुत कठिन लगता है कि शिक्षा और राजनीति का क्या सम्बन्ध होना चाहिए?

किन्तु किसी भी समस्या पर विचार करने में उत्पन्न हुई कठिनाई मुख्य रूप से चिन्तन की कसौटी के अभाव के कारण होती है। प्रश्न यह है कि आप किस कसौटी से यह निश्चित करेंगे कि शिक्षा और राजनीति का क्या सम्बन्ध होना चाहिए? अनेक लोगों के पास ऐसी कोई कसौटी नहीं होती और वे केवल व्यक्तिगत पसन्द और नापसन्द के आधार पर इस महत्त्वपूर्ण विषय पर निर्णय देने लगते हैं। स्वाभाविक है कि उनके निर्णयों का कोई विशेष प्रभाव नहीं होता। दूसरी ओर कुछ अधिक चिन्तनशील लोग इस प्रश्न पर विचार करने के लिये कसौटी का इस्तेमाल करते हैं। परन्तु फिर ऐसी कसौटियाँ अनेक हैं। कुछ लोग यह कहते हैं कि समाज का अंग होने के नाते छात्र को समाज के प्रत्येक आन्दोलन में भाग लेना चाहिए और राजनैतिक आन्दोलन भी इसके अपवाद नहीं हैं। इसी तर्क के आधार पर शिक्षकों से भी राजनीति में सक्रिय भाग लेने की आशा की जाती है। केवल इतना ही नहीं बल्कि शिक्षक, समाज का सबसे अधिक पढ़ा-लिखा वर्ग है और वह नई पीढ़ी का निर्देशन करता है इसलिये राजनैतिक दल शिक्षकों को अपने दलों में भर्ती करने के लिये अत्यधिक इच्छुक दिखलायी पड़ते हैं। जो लोग राजनीति से अलग रहने का दावा भी करते हैं उन शिक्षकों में से भी बहुत-से ऐसे हैं जो तटस्थ रहने का बहाना करते हुए एक से अधिक राजनैतिक दलों में सक्रिय भाग लेते हैं। अधिकतर विश्वविद्यालयों के उच्चाधिकारी शासन चलाने वाले राजनैतिक दल में खुले या छिपे तौर से सक्रिय भाग लेते हैं क्योंकि ऐसा करने से ही उनकी कुर्सियाँ टिकी रहती हैं। जो उच्च अधिकारी अधिक बुद्धिमान हैं, वे सभी राजनैतिक दलों के नेताओं की प्रशंसा करते हैं, उन्हें अपने विश्वविद्यालयों में किसी-न-किसी कालेज में दीक्षान्त भाषण के लिए आमंत्रित करते हैं और प्रत्येक की इतनी अधिक प्रशंसा करते हैं कि वह उन्हें उच्च शिक्षाविद् मानने लगें क्योंकि क्या पता किस समय कौन-सा राजनैतिक दल सत्तारूढ़ हो जाय और उस परिवर्तन की घड़ी में उनकी कुर्सी हिल जाने का अवसर आ जाय। सामाजिक उत्तरदायित्व की कसौटी के अतिरिक्त विभिन्न राजनैतिक दलों से सक्रिय सम्बन्ध रखने वाले छात्र और शिक्षक अपने विशिष्ट राजनैतिक दल के स्वार्थ की कसौटी को लेकर राजनैतिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेते हैं तथा शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में अपने दल के स्वार्थ को अधिक-से-अधिक सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। कुछ अन्य विचारकों की कसौटी यह है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् व्यक्ति तटस्थ होता है और वह किसी जन-आन्दोलन में भाग नहीं लेता। अस्तु, विद्यार्थियों और शिक्षकों को राजनीति से अलग रहना चाहिए। सरकार की कसौटी यह रहती है कि सत्तारूढ़ दल के लाभ को लेकर तो छात्र और शिक्षक राजनीति में भाग लेते रहें किन्तु यह लाभ विरोधी पक्ष के दलों को न मिल पाये जो क्रान्ति को सामाजिक परिवर्तन का सर्वश्रेष्ठ माध्यम मानते हैं। उनकी कसौटी यह है कि क्रान्ति को सफल बनाने के लिये समाज का सबसे अधिक प्रज्ज्वलनशील वर्ग चुना जाना चाहिए और यह वर्ग विद्यार्थी है। अस्तु, वे यह नारा लगाते हैं कि छात्र ही क्रान्ति कर सकते हैं। ये सब कसौटियाँ परस्पर विरोधी विचार उपस्थित करती हैं जिनमें फँसकर यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि शिक्षा और राजनीति के सम्बन्ध को कैसे निश्चित किया जाय।

जहाँ तक कसौटियों का प्रश्न है यूँ तो कसौटियाँ अनेक हैं किन्तु उनमें से कोई छोटी और कोई बड़ी, कोई संकीर्ण और कोई व्यापक, कोई निम्न और कोई उच्च है। आप पूछेंगे कि कसौटियों के इस वर्गीकरण की कसौटी क्या है तो तर्क की दृष्टि से **जो कसौटी दूसरी कसौटियों से जितनी अधिक व्यापक और गहरी होगी उसे उतना ही अधिक उच्च और बड़ी कही जानी चाहिए।** दूसरे शब्दों में, राजनीति और शिक्षा के सम्बन्ध के प्रश्न को हल करने के लिए आपको ऐसी कसौटी चुननी पड़ेगी जो अधिक-से-अधिक व्यापक और गहरी हो। इस प्रकार की एक कसौटी एकात्म मानववाद है। मानववाद के नाम से आज शिक्षा और राजनीति के क्षेत्र में भी बहुत लोग परिचित हैं। मानववाद का अर्थ मनुष्य को निर्णय की कसौटी मानना है। इस दृष्टि से मानववादी प्रत्येक समस्या पर विचार करते समय यह ध्यान में रखता है कि वह मानव मात्र के लिए कहाँ तक लाभदायक है और जो लाभदायक है वह उचित है तथा जो मानव के लिए हानिकारक है वह अनुचित है। यदि कोई तथ्य मानव के किसी एक वर्ग के लिए लाभदायक और दूसरे समूह के लिए हानिकारक है तो निर्णय करने में यह देखना पड़ेगा कि मानव मात्र के लिए उसकी स्थिति क्या है। इस प्रकार मानववादी कसौटी सब प्रकार के वर्ग, समूह, गुट, जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा, लिंग, प्रजाति, मत-मतान्तर आदि के निहित स्वार्थों पर आधारित कसौटियों से कहीं अधिक व्यापक और गहरी है तथा इसलिए अधिक ऊँची है। चूँकि हम मनुष्य हैं और हमारा एकमात्र लक्ष्य इस पृथ्वी को मनुष्यों के सब प्रकार के विकास के लिए अधिक-से-अधिक उपयुक्त भूमि बनाना है, इसलिए हमारे चिन्तन के लिए मानववाद से ऊँची कसौटी नहीं हो सकती।

किन्तु समस्या इसी से सुलझ नहीं जाती। जिन लोगों ने मानववाद के क्षेत्र में विशेष अध्ययन किया है वे यह जानते हैं कि आज अनेक प्रकार के मानववादी विचार प्रचलित हैं। पश्चिम में बौद्धिक मानववादी और प्रकृतिवादी मानववादी के अतिरिक्त भारत में भी मानववाद के लगभग आधा दर्जन प्रकार देखे जा सकते हैं; जैसे—जवाहरलाल नेहरू का प्रकृतिवादी मानववाद, गांधी जी का धार्मिक मानववाद, एम. एन. राय का उग्र मानववाद तथा राधाकृष्णन् का आदर्शवादी मानववाद इत्यादि। इनके अतिरिक्त विवेकानन्द, रामकृष्ण, रवीन्द्रनाथ, अरविन्द घोष, भगवानदास, दयानंद इत्यादि अनेक समकालीन भारतीय दार्शनिकों ने मानववादी विचार प्रस्तुत किए हैं। मानववाद के इन विभिन्न प्रकारों में क्षेत्र और गहराई को लेकर ही अन्तर है। प्रकृतिवादी मानववाद प्रकृति के परे कुछ भी नहीं मानता और धर्म को मानव जीवन में कोई भी स्थान नहीं देता। यहाँ पर भी चिन्तन की वही कसौटी प्रयोग की जा सकती है जो पीछे दी जा चुकी है अर्थात् मानववाद का वही रूप सर्वोच्च है जो अधिक-से-अधिक व्यापक और अधिक-से-अधिक गहरा है। मानववाद का यह रूप एकात्म मानववाद है इसमें, मानव और प्रकृति के अतिरिक्त अति प्राकृतिक सत्ता को भी सम्मिलित कर लिया जाता है। इसमें, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानव-मानव के मध्य एकात्मता (Identity) के सम्बन्ध पर जोर दिया जाता है। भारत में प्राचीन वेदों से लेकर समकालीन युग में दार्शनिक विचारकों तक एकात्म मानववाद की सतत् परम्परा रही है। अस्तु, चिन्तन के प्रत्येक क्षेत्र में इस कसौटी का प्रयोग करके मार्ग-निर्देशन प्राप्त किया जा सकता है।

अब यदि इस कसौटी का शिक्षा और राजनीति के

[शेष पृष्ठ ५१ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा और राजनीति का सम्बन्ध

श्री बालगोविन्द तिवारी
प्राचार्य, शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, डबोक (उदयपुर)

यदि इस लेख में प्रचलित संकलपनाओं के विरुद्ध कुछ जान पड़े तो प्रेमी पाठकगण कृपया इसको एकदम ही तिरस्कृत न कर दें। इसका आधार विद्वत्ता नहीं, स्वतन्त्र चिन्तन है।

जन्म लेते ही नहीं, गर्भ में आते ही, हम एक परिवेश में आते हैं, जिसका हम पर प्रभाव पड़ता है, और जिस पर हम प्रभाव डालते हैं। इस परिवेश को हम तीन भागों में बाँट कर विचार करें, तो सुविधा होगी। ये हैं:—

(i) भौतिक परिवेश (Physical environment);
(ii) सामाजिक परिवेश (Social environment);
(iii) मानसिक परिवेश (Psychological environment)।

यह एक-दूसरे से भिन्न नहीं, परस्पर ओत-प्रोत हैं। हमारा आज का विषय सामाजिक परिवेश सम्बन्धी है।

साधारणतः जन्म से पूर्व और जन्म लेते ही, हमारा सामाजिक परिवेश हमारा परिवार होता है। जैसे-जैसे हम बड़े होते हैं, यह विस्तृत होने लगता है। बालक और सामाजिक परिवेश एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। परिवार और पड़ौस का बालक पर प्रभाव सर्वविदित है; किन्तु विचार करें तो जान पड़ेगा कि प्रत्येक बालक के जन्म लेने से, अथवा अन्य स्थान से आने से, परिवार और पड़ौस पर कुछ-न-कुछ प्रभाव पड़ता ही है, चाहे वह कितना ही कम क्यों न हो। उस छोटे-से समाज की परम्पराएँ प्रत्येक ऐसे प्रभाव से, किंचिन्मात्र ही सही, प्रभावित होकर परिवर्तित होती ही हैं। फिर भी, स्थूल रूप में, वे परम्पराएँ बालक के उस समाज में व्यवहार को निश्चित करती हैं। प्रत्येक बालक के विषय में इस प्रकार के "सामाजीकरण" की यह क्रिया उस समाज के (भौतिक एवं मानसिक दबाव) के द्वारा होती है। इस दबाव को, स्थूल रूप में, सामाजिक "नियमों" के अनुसार क्रियान्वित किया जाता है। किन्तु यह नियम लिखे हुए नहीं होते, न इनका प्रयोग सब बालकों पर अथवा सब दशाओं में एक ही बालक पर, सदा एक-सा नहीं होता है। इनमें नमनीयता बहुत अधिक होती है। बालक, बालक के साथ, अथवा बालक परिवार या पड़ौस के साथ, कैसा बर्ताव करे, यह एक गतिशील क्रिया है, जिसमें प्रत्येक बालक का व्यक्तित्व और परिवार या पड़ौस के प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व, परिस्थितिवश अपनी-अपनी प्रतिक्रिया करता रहता है।

अब बालक बड़ा होकर प्रौढ़ हो गया। यहाँ मनुष्य का मनुष्य से व्यवहार, अथवा उसका परिवार, पड़ौस या अधिक विस्तृत स्तर पर "समाज" से व्यवहार, हमारा विचार-बिन्दु बन गया। इस "सामाजिक" क्रिया का बहुत बड़ा भाग तो उसी प्रकार चलता है जैसा कि मनुष्य के बालपन में चलता था। परन्तु व्यवहार के कुछ क्षेत्र ऐसे चुन लिए जाते हैं जहाँ नमनीयता को स्थान देना घातक मान लिया जाता है, और उन क्षेत्रों में अमुक प्रकार के व्यवहार को बरदाश्त नहीं किया जाता है तथा उसको दण्डनीय ठहराया जाता है। दण्ड देना भी चाहे जिस व्यक्ति का अधिकार नहीं होता, वरन् समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली एक विशिष्ट व्यवस्था होती है जिसे "सरकार" कहते हैं, और इस "सरकार" द्वारा नियुक्त "अधिकारियों" को यह अधिकार दिया जाता है। इतना ही नहीं, उन अधिकारियों के मार्गदर्शन के लिए "नियम" बनाकर लागू किये जाते हैं। इन नियमों में नमनीयता नहीं है, ऐसा मानना ठीक होगा, क्योंकि उनको अनिवार्य, अलंघ्य कहते हैं। फिर भी इनमें इतना प्रावधान रखा जाता है कि परिस्थिति को ध्यान में रख कर दण्ड की मात्रा में न्यूनाधिकता की जा सकती है। साधारणतः यह मानना चाहिए कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य, मनुष्य से अथवा समाज से, कैसा बर्ताव करे, यह विशिष्ट क्षेत्रों में गतिशील क्रिया नहीं है। यद्यपि जीवन के शेष क्षेत्र में, जो कि बहुत ही विस्तृत है, और जिसको सामाजिक क्षेत्र कहना चाहिए, यह वर्ताव अपने पारस्परिक प्रभावों की नमनीयता के कारण, गतिशील क्रिया ही है। अब हम इन क्षेत्रों पर इस प्रकार विचार कर सकते हैं :—

(i) वह क्षेत्र जिसमें मनुष्य के मनुष्य से, अथवा समाज से, व्यवहार के प्रभावों में नमनीयता हो, अर्थात् जहाँ बर्ताव-व्यवहारों में गतिशीलता हो। यह सामाजिक क्षेत्र है।

(ii) वह क्षेत्र जिसमें इन प्रभावों में नमनीयता न हो, अर्थात् जहाँ गतिशीलता न हो। यह राजनीतिक क्षेत्र है। वास्तव में यह सामाजिक क्षेत्र के अन्तर्गत ही समझा जाना चाहिए, किन्तु "व्यवस्था" द्वारा "व्यवस्थित" होने के कारण इसने अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को न केवल बनाया ही है, बल्कि अपने आप को अलग भी रखा है। इसी कारण अधिकारीगण जनता के भाग होते हुए भी अपने आप को जनता से अलग मान बैठते हैं, और इसमें गौरव का अनुभव करते हैं।

सामाजिक क्षेत्र सकारात्मक है। यह बालक और प्रौढ़, सबके व्यक्तित्व को विकसित करके उसको निखारता है।

राजनीतिक क्षेत्र नकारात्मक है। यह व्यक्ति से कहता है, "ऐसा मत करो, अन्यथा दड मिलेगा।"

सामाजिक क्षेत्र सिखाता है, राजनीतिक क्षेत्र रोकता है।

सामाजिक क्षेत्र व्यापक है, राजनीतिक क्षेत्र सीमित है।

राजनीति का जन्म इसलिए हुआ कि—

(i) समाज के विकास में बाधक तत्त्वों का निराकरण करे,

(ii) समाज के विकास में साधक तत्त्वों को प्रस्तुत करे,

(iii) जो तत्त्व अब तक न साधक हों न बाधक, उनके लिए ऐसी व्यवस्था करे कि—

(क) वे आगे चलकर बाधक न हो जायें, और

(ख) वे अधिकाधिक साधक बनते जायें।

(iv) बाधक तत्त्वों को साधक तत्त्वों में परिवर्तित करें,

(v) साधक तत्त्व बाधक न बन जायें, इसके विषय में सतर्क रहें।

इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र सामाजिक क्षेत्र का एक अंश है, एक विशिष्ट अंश है। इस "अंश" का कार्य सम्पूर्ण (अर्थात् समाज) की उक्त पाँच कार्यक्रमों द्वारा सेवा करना है। यदि समाज खेत है तो राजनीति उसकी बाड़ है। परन्तु हुआ यह कि बाड़ ही खेत को खाने लगी। तभी तो रक्षा करने वाले राक्षस बन गये और भगवान परशुराम को यह कार्य करना पड़ा कि इक्कीस बार धरती को क्षत्रिय-विहीन कर दें।

शिक्षा का कार्य रचनात्मक है, सकारात्मक है, गतिशीलतापूर्ण है। इसका क्षेत्र सामाजिक है। राजनीतिक क्षेत्र इसका एक अंश मात्र है। इसको भी शिक्षा के अन्तर्गत आना चाहिए, न कि शिक्षा को राजनीति के अन्तर्गत। शिक्षा धर्म-नीति है, राजनीति इसका एक अंग है।

यदि केवल धर्म-नीति के द्वारा सब मनुष्यों में सामाजिकता का विकास हो जाता तो राजनीति की आवश्यकता ही नहीं रहती, राज्य की ही आवश्यकता नहीं रहती। महात्मा गांधी ने ९ अगस्त, १९४२ को जिस परिस्थिति का आह्वान किया था। वह शायद यही थी। इतिहास तो यह नहीं बताता कि कभी ऐसी परिस्थिति रही हो, किन्तु सतयुग की पौराणिक कल्पना इसी की है ऐसा जान पड़ता है। बाइबिल की Millennium की भविष्य की आशा संभवतः यही हो। ऐसी दशा में धर्म-नीति अर्थात् शिक्षा अपना काम पूर्णरूपेण कर सकेगी। उस समय राजनीति की आवश्यकता ही नहीं रहेगी, क्योंकि आत्मानुशासन ही सब कुछ कर सकेगा। सफल शिक्षा यही होगी।

इस प्रकार—

सफल शिक्षा =धर्म नीति द्वारा आत्मानुशासन की सिद्धि,
=सतयुग।

राजनीति =आत्मानुशासन के अभाव में बाह्यानुशासन की कल्पना,
=सिद्धि का अभाव,
=कलियुग। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा की दिशा और राजनीति

श्री लक्ष्मी नारायण गुप्त
अध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद डिग्री कालेज

शिक्षा मनुष्य की व्यक्तिगत और सामाजिक प्रगति हेतु प्राप्त किया जाने वाला प्रयोजनपूर्ण, सचेतन और लाभप्रद अनुभव और ज्ञान है जिसके फलस्वरूप मनुष्य अपने चारों ओर होने वाले कार्यों में अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार भाग लेता है। ऐसी दशा में शिक्षा और राजनीति में सहसम्बन्ध होता है। आज के युग में हरेक देश में विद्यालय के लोग विद्यालय के मामलों में राजनीति के प्रवेश से दुखित नहीं जान पड़ते हैं, वे समझते हैं कि यदि राजनीति का प्रयोग किया जावेगा तो निश्चय ही उससे शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति होगी। इसका कारण यह है कि "राजनीति इस अर्थ में समझा जाने पर तिरस्कार का शब्द नहीं है, अपेक्षाकृत यह राजनीतिज्ञता का समानार्थी है। यह नीतिशास्त्र का वह पहलू है जो राज्यों के कर्त्तव्यों के बारे में बताता है। इस अर्थ में शायद साधारण समाज भी मानेगा कि शिक्षा मुश्किल से राजनीति से अलग रह सकती है।"[1] अब तो स्पष्ट है कि राजनीति के इस शुद्ध और उच्च अर्थ में शिक्षा के लिए उसकी आवश्यकता होती है और आज सभी देशों में राजनीति का सम्बन्ध शिक्षा की नीति, उसके उद्देश्य एवं उसके प्रसार आदि से होता है। राज्य एवं शासन का कर्त्तव्य शिक्षा के लिए बहुत माना जाता है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि विद्यालय भावी नागरिकों को प्रशिक्षित करता है, वह उन्हें इस योग्य बनाता है कि वे अपना और समाज का नव-निर्माण करें और प्रगति के पथ पर लोगों को बढ़ाते जावें।

शिक्षा की दिशा—ऊपर के विचारों से शिक्षा की दिशा की ओर कुछ संकेत मिलता है। शिक्षा की एक दिशा ही आज दिखायी देती है, "स्वतन्त्रता, समानता, व्यक्तित्व के लिए आदर, समान हित के लिए व्यक्तिगत उत्तरदायित्व, व्यक्तिगत एकीकरण, चिन्तनपूर्ण कार्य बुद्धि के स्वतन्त्र प्रयोग"[2] के आदर्श प्रदान करने की दिशा। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि आज शिक्षा की दिशा जनतान्त्रिक आदर्शों को नागरिकों को प्रदान करने की ओर है, तभी तो देश को ऊपर उठाने में आज का विद्यार्थी समुदाय अपने को लगाए हुए है। उसके कार्य करने का तरीका, यह अवश्य है कि सभी देशों में अपना अलग-अलग है। इस सम्बन्ध में मिल्स महोदय के शब्द भी विचारणीय हैं: "दो चीजें वयस्कों के कालेज कर सकते हैं और करना चाहिए—(१) जो कालेज को व्यक्ति के लिए करना चाहिए वह है व्यक्तिगत कष्टों और समस्याओं को सामाजिक प्रसंगों में बदलना और विवेकपूर्ण ढंग से समस्याओं को सुलझाना। व्यक्तिगत छात्र के लिए कालेज का उद्देश्य है कालेज के लिए अपने जीवन की जरूरतों को दूर करना; कालेज का काम है उसे अपने को एक शिक्षित करने वाला मनुष्य बनने में सहायता देना। क्योंकि केवल वही उसे स्वतंत्र करेगा; (२) संध्याकालीन कालेज को समुदाय के लिए जो करना चाहिए वह है उन सभी शक्तियों से लड़ना जो सच्चे जनों को नष्ट कर रही हैं और एक शहरी जनसमूह उत्पन्न कर रही हैं; अथवा निश्चयात्मक रूप में कहते हुए: "आत्म-निर्माणकारी उदार जनता को बनाने और सशक्त बनाने में सहायता करना। क्योंकि केवल वही उसे स्वतंत्र करेगा।"[3] इन शब्दों से शिक्षा

१. जे० एस० ब्रूबेकर, '**माडर्न फिलॉसफीज ऑफ़ एजूकेशन**', पृ० ५१।

२. डब्ल्यू० एच० किलपैट्रिक, '**फिलॉसफी ऑफ एजूकेशन**', पृ० ४१२।

३. सी०डब्ल्यू० मिल्स, '**पावर, पॉलिटिक्स एण्ड पीपुल**' (सम्पा० आई० एल० होरोविज), पृ० ३६७-६८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की दिशा स्पष्ट हो जाती है। आज शिक्षा के द्वारा एक ऐसे जनसमूह का निर्माण करना है जो सच्चे रूप में जनतान्त्रिक हो, उसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता न हो तभी तो वह शासन के क्षेत्र में ऐसी राजनीति को फैलाएगा जो वास्तव में राजनीतिज्ञों को अपने सामाजिक कर्त्तव्यों का स्मरण करावेगी। दूसरे शब्दों में, शिक्षा की दिशा आज जनतान्त्रिक है क्योंकि इसमें व्यक्ति एवं समाज के हित का ध्यान पूरा-पूरा होता है।

जनतन्त्र का वास्तविक तात्पर्य—आधुनिक युग के देशों पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि किसी-न-किसी रूप में जनतन्त्र सभी देशों में पाया जाता है। प्रमुख देशों के उदाहरण लेने से यह बात स्पष्ट होती है। संयुक्त राज्य अमरीका में जनतन्त्र है ही, इंगलैंड में भी संसदीय जनतन्त्र कहा गया है। अपने देश में भी समाजवादी जनतन्त्र बन गया है। रूस में साम्यवादी जनतन्त्र कहा जाता है क्योंकि वहाँ जनता का शासन अवश्य है लेकिन साम्यवादी जीवन के सिद्धान्तों पर आधारित है। चीन में कुछ रूसी परम्परा पायी जाती है यद्यपि सैनिकवादी सिद्धान्त का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। जर्मनी के एक भाग में गणतन्त्रीय जनतन्त्र है तो दूसरे में रूसी ढङ्ग का जनतन्त्र है। फ्रांस में भी कुछ गणतन्त्रीय जनतन्त्र है। अन्य देशों में भी कुछ इन्हीं से मिलते-जुलते जनतन्त्र के रूप हैं, यह अवश्य है कि संयुक्त राज्य अमरीका के जनतन्त्र का प्रभाव सभी पर पड़ा है। जनतन्त्र की सबसे बड़ी विशेषता वैयक्तिक स्वतन्त्रता और निरंकुशता का लोप होना है। इस आधार पर शिक्षा सबके लिए होनी चाहिए और शिक्षा पाने का अधिकार सभी को होता है। इसी आधार पर हमारे यहाँ भी श्री नूरुल हसन, केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री ने घोषित किया है कि "पांचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक प्राथमिक शिक्षा सर्व-व्यापी बना दी जावेगी। ६-११ वर्ष के समूह में सभी लड़कों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जावेगी और छठवीं योजना में ११-१४ वर्ष के समूह को शामिल करने का प्रयत्न होगा।" वास्तव में अनिवार्य शिक्षा सभी देशों में निःशुल्क दी जाती है। इससे स्पष्ट है कि जनतन्त्र की दशा में समाज के सभी लोगों को शिक्षा की सभी सुविधाएँ उनकी आवश्यकताओं को देखते हुए तथा उनकी योग्यताओं के अनुकूल दी जाती हैं। यह अवश्य है कि ऐसी सुविधाएँ शासन की आर्थिक एवं अन्य क्षमताओं के अनुकूल ही दी जा सकती हैं। प्रो० ब्रूबेकर ने ठीक ही लिखा है कि "परिणामतः, जबकि सर्वोत्तम शिक्षा के लिए सुविधाएँ शुरू में सीमित हो सकती हैं, बाद में यह आशा की जाती है कि वे सभी को प्रसारित की जावेंगीं।"[1] ऐसी दशा हमारे देश में है।

जनतन्त्र का वास्तविक तात्पर्य इस प्रकार व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए समान रूप से सभी सुविधाएँ प्रदान करने से होता है। इससे यह अर्थ लिया जाता है कि जनतन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति का आदर होता है, उसका एक ही लक्ष्य समझा जाता है। यौन, वर्ण, प्रजाति, धर्म, आर्थिक स्तर, परिस्थिति आदि के भेदों को कोई स्थान नहीं दिया जाता है। एक मनुष्य एक मनुष्य है, यही विचार जनतन्त्र में होता है। ऐसी दशा में मनुष्य स्वतन्त्र रूप से विकास करने का अवसर प्राप्त करता है चाहे वह नेता हो, अथवा अनुगामी हो। दोनों बराबर हैं। शासक और शासित एक ही हैं।

जनतन्त्र का तात्पर्य केवल वैयक्तिक दृष्टिकोण से ही नहीं समझना चाहिए बल्कि उसे सामाजिक बल भी देना चाहिए। "जनतन्त्र····जीवन का एक तरीका है। यह साहचर्य का एक ढङ्ग है। रहन-सहन के इस ढङ्ग की जो विशेषता बताता है वह यह है कि हरेक सदस्य को उसकी क्षमता के अनुपात में जिस समूह से वह सम्बन्ध रखता है उसकी नीतियों को रूप प्रदान करने में भाग लेने के उत्तरदायित्व को यह बल देता है।"[2] इस तात्पर्य को स्वीकार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जनतन्त्र के विद्यालय केवल इसलिए होते हैं कि वे युवकों को समाज के सभी कार्यों में भाग लेने के लिए तैयार करें।

शिक्षा और राजनीति—शिक्षा और राजनीति में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है और इस आधार पर यह कहा गया है कि "अति विस्तृत रूप से कहते हुए शिक्षा का कार्य जैसा कि इस देश में पहले स्थापित किया गया,

---

१. जे० एस० ब्रूबेकर, **'मॉडर्न फिलॉसफीज ऑफ एजूकेशन'**, पृ० ५५।
२. जॉन डीवी, **'रिकॉन्स्ट्रक्शन इन फिलॉसफी'**, पृ० २१०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनैतिक था। नागरिकों को अधिक ज्ञानपूर्ण और अधिक अच्छे विचारक बनाना।"[१] यह कार्य जनतन्त्र में सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझा जा रहा है तभी शिक्षक, शिक्षार्थी एवं शिक्षा व्यवस्थापक राजनीति में भाग ले रहे हैं। "....यदि विद्यालय अपना काम कर रहे हैं तो हमें शिक्षकों से राष्ट्र के बौद्धिक स्तर को महत्वपूर्ण और विवाद रहित उपलब्धि के बिन्दु तक ऊपर उठाने की आशा करनी चाहिए—जिसकी जाँच पुस्तकों एवं गम्भीर पत्रिकाओं के लिए बढ़ी प्रति व्यक्ति की दर से माँग के द्वारा, चलचित्रों और रेडियो के कार्यक्रमों में निश्चित ही उन्नत रुचि के द्वारा, राजनीतिक वादविवादों के उच्चतर मानकों के द्वारा, वाणी और चिन्तन की स्वतन्त्रता के लिए बढ़ी हुई रुचि के द्वारा, वयस्कों द्वारा हँसी-मजाक की पुस्तकों के लगातार अध्ययव जैसे मानसिक मन्थन के साक्ष्यों में भारी गिरावट के द्वारा होती है।"[२] शिक्षा हमें सद्गुण और सद्ज्ञान देती है और राजनीति हमें वह तरीका देती है जिससे कि हम सद्ज्ञान को उपयुक्त लोगों को दें। अब यह भी ज्ञात हो जाता है कि राजनीति आजकल की "गन्दी दलबन्दी" नहीं है बल्कि यह "नीतिशास्त्र का एक ऐसा अंग" है जो मनुष्य को समाज की व्यवस्था का सही रास्ता बताता है और उसे उसमें भाग लेने के लिए क्या करना चाहिए, कितना भाग लेना चाहिए यह भी बताता है, तभी वह सच्चा नागरिक बनता है और राष्ट्र के स्तर को ऊँचा उठाता है। अतएव राजनीति नागरिकता का नीतिशास्त्र है और शिक्षा के द्वारा ही इसे प्रदान किया जा सकता है। इसका उज्ज्वल उदाहरण प्लेटो से लेकर आज तक के योग्य ज्ञानी और राजनीतिज्ञ बताए जा सकते हैं।

शिक्षा और राजनीति का सम्बन्ध तब और स्पष्ट हो जाता है जब हम शिक्षा की नीति, शिक्षा की योजना, शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षा की सामग्री, शिक्षा की संस्थाओं आदि पर सही अर्थ में राजनीतिज्ञ एवं राजनीतिक प्रबन्ध या शासन का प्रभाव देखते हैं। राजनैतिक व्यवस्था का मुख्य कर्त्तव्य है—समाज के लोगों को, उनकी सम्पत्ति की, उनके स्वत्वों की, उनकी संस्थाओं की और उनके विकास के साधनों की सुरक्षा करना। शिक्षा भी समाज की वस्तु है और राजनैतिक व्यवस्था के लिए इसकी सुरक्षा, प्रचार, विस्तार आदि पर ध्यान देना आवश्यक है। समाज के सदस्य शिक्षा की आवश्यकताओं को अपने प्रतिनिधि-शासकों के समक्ष रखते हैं जो उन्हें समझते हैं और उनकी पूर्ति करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। जहाँ ऐसा सम्बन्ध जनता एवं शासन के बीच स्थापित होता है वहाँ सच्ची राजनीति दिखाई देती है।

शिक्षा की दिशा पर राजनीति का प्रभाव—शिक्षा की दिशा निर्धारित करने में राजनीति का प्रभाव कितना पड़ता है यह हम कुछ उदाहरणों से मालूम कर सकते हैं। अमरीकी स्वतन्त्रता की घोषणा के अनुसार "सभी मनुष्य समान उत्पन्न हुए हैं"। अतएव सभी अमरीकी लोगों को शिक्षा समान रूप में मिलनी चाहिए जो उनकी आवश्यकता के अनुसार हो। अपने देश में ४८वें अखिल भारतीय शैक्षिक अधिवेशन में २८ दिसम्बर, १९७३ को कलकत्ता में पश्चिमी बंगाल के वित्तमन्त्री श्री शंकर घोष महोदय ने अपने उद्घाटन भाषण में जो कहा है उससे भी शिक्षा की दिशा पर राजनीति का प्रभाव प्रकट होता है। श्री घोष महोदय ने कहा, "........एक समानतावादी समाज में शिक्षा एक सामाजिक निवेश है और स्वाभाविकता इसका अर्थ होगा अधिक उत्पादकता की ओर अग्रसर करना। लेकिन दुर्भाग्यवश हम दशकों से एक अपरिवर्तनशील शिक्षा-प्रणाली रखते आ रहे हैं, जो शायद मैकॉले के दिनों में बिल्कुल उपयुक्त रही हो परन्तु अब एक समानतावादी समाज में अपव्यय मात्र ही होगी।"[३] आगे भी उन्होंने संकेत किया कि आज शिक्षा को सामाजीकृत करने की आवश्यकता है जो सामान्य शिक्षा और कृषि तथा औद्योगिक शिक्षा को एक में मिलाने से सम्भव होगा। उक्त अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में डा० के० एल० श्रीमाली, कुलपति, बनारस विश्वविद्यालय ने वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की आलोचना की और कहा कि शिक्षा के प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालयीय, सभी स्तरों पर आवश्यकता-आधा-

---

१. सी० डब्ल्यू० मिल्स, **'पावर, पालिटिक्स एण्ड पीपुल'** पृ० ३६८।
२. **वही, पृष्ठ ३६९।**
३. **'द एजूकेशनल रिव्यू'**, जनवरी १९७४, पृष्ठ २०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रित शिक्षा होनी चाहिए। आगे बढ़ने के लिए अध्यापकों को श्रमिक संघों के साथ मिलना चाहिए अन्यथा शासन उनकी ओर उपेक्षित होने में परिदृढ़ होगा। बात सही है। आज विद्यार्थी, अध्यापक एवं श्रमिक संघ का कार्यक्रम राजनीति को बदलने में लगा हुआ है। इसके विपरीत भी शासन जो राजनीति का एक अंग है, शिक्षा को बदलने में तत्पर रहता है जैसा कि राष्ट्रीय शिक्षा-आयोग १९६४-६६ की रिपोर्ट में हमें मिलता है : "एक विज्ञान आधारित संसार में शिक्षा और शोध किसी देश की सम्पूर्ण विकासात्मक प्रक्रिया, उसके कल्याण, प्रगति और सुरक्षा के लिए आवश्यक है।....यह सर्वाधिक एक शैक्षिक नीति की आवश्यकता पर जोर देता है जो एक बनी-बनायी नम्यता शामिल करता है जिससे कि यह बदलती हुई परिस्थिति के अनुकूल समायोजन कर सके।....तेजी से बदलते हुए आज के संसार में एक बात निश्चित है : कल की शिक्षा-प्रणाली आज की आवश्यकता पूरी नहीं कर सकेगी, और आने वाले कल की आवश्यकता को तो और भी कहीं कम" (डा० डी० एस० कोठारी)।"[1]

एक दूसरा उदाहरण "शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की माँग" का है। अपने देश में राज्य के द्वारा शिक्षा को पूरी तरह से लेने के लिए अध्यापक वर्ग जोर-शोर के साथ माँग कर रहा है और दूसरी ओर प्रबंधक वर्ग उतने ही जोर-शोर से विरोध कर रहा है। देश की राजनीति अभी इस ओर शासन को झुकने नहीं दे रही है। वास्तव में गन्दी दलबन्दी ने ऐसी दशा उत्पन्न कर दी है अन्यथा राष्ट्रीयकरण की माँग नहीं भी होती क्योंकि साम्यवादी रूस और चीन को छोड़ कर हरेक देश में अनिवार्य शिक्षा के अलावा सभी शिक्षा जनता के हाथों में है और व्यक्तिगत व्यवस्था अच्छे ढंग से चल रही है जिससे शिक्षा की प्रगति बहुत हुई है। हमारे देश में व्यक्तिगत व्यवस्थापक की राजनीति कुछ उल्टी ही है। यहाँ 'बुरी' राजनीति का प्रभाव शिक्षा की दिशा पर पड़ता दिखाई देता है।

अपने देश में वैज्ञानिक उन्नति लाने के विचार से देश के शासन ने विज्ञान में प्रतिभाशाली व्यक्तियों की खोज की राष्ट्रीय नीति बना ली है और उन्हें मालूम करके उन्हें विज्ञान की शिक्षा की अधिकतम सुविधा दे रही है। इसी प्रकार से देश की 'बेसिक शिक्षा' जो वर्षों पूर्व गांधी जी के द्वारा चलायी गई थी, को सुधारने के विचार से उसे संशोधित करके 'राष्ट्रीय शिक्षा' बना दिया गया है। कुछ स्तर तक राज्य की ओर से पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य भी ले लिया गया है जिससे कि मान्य स्तर की पाठ्यपुस्तकें एवं पाठ्यसामग्री पढ़ने वालों को सुलभ हों और उनका बौद्धिक विकास उचित दिशा में हो। राज्य की ओर से स्थापित 'अकादमी' ने देश की विभिन्न भाषाओं में पाठ्यपुस्तकों का अनुवाद कराना शुरू किया है जिससे कि तकनीकी ग्रन्थों का भारतीय भाषाओं में अभाव दूर हो सके तथा इन भाषाओं को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाने में सुविधा हो सके। फलस्वरूप अपनी भाषा में ही सभी स्तरों पर स्वाभाविकतया शिक्षा देना सम्भव हो सके।

राजनीति के प्रभावस्वरूप लोगों का सामाजिक दृष्टिकोण बदलता है। आज भारत जनतन्त्र हो गया है और यहाँ के लोग उसी ढंग से सोच रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में शोध की आवश्यकता राजनीतिज्ञों को मालूम पड़ी और इसका प्रभाव यह हुआ कि केन्द्रीय तथा राज्य शासन की ओर से शोध एवं प्रशिक्षण के लिए केन्द्र एवं प्रयोगशालाएँ खोली गयीं। "शैक्षिक शोध एवं प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद्" इस तथ्य का साक्षी है कि राजनीति शिक्षा की दिशा को बदलने में कितनी सशक्त होती है। राजनीति में जनतंत्र के फैलने से मनुष्य का दृष्टिकोण राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा की ओर गया है। आज शिक्षालय में भिन्न प्रजातियों, राष्ट्रीय पृष्ठभूमियों, धार्मिक विश्वासों, राजनैतिक दृढ़ताओं, और आर्थिक परिस्थितियों वाले छात्र एक साथ उठते-बैठते एवं परस्पर आचार-विचार बदलते रहते हैं। आज उच्चता और निम्नता का दृष्टिकोण बिल्कुल दूर हो गया है जिससे शिक्षा की दिशा बदल गई और 'समान शिक्षा' की माँग की गयी। यह राजनीति का विप्लवकारी प्रभाव कहा जावेगा।

निष्कर्ष—ऊपर के विचारों से शिक्षा की दिशा और राजनीति का जो परस्पर योग दिखायी देता है उससे यह ज्ञात होता है कि राजनीति किसी प्रकार की बुरी

[शेष पृष्ठ ४४ पर]

---

१. 'शिक्षा-आयोग रिपोर्ट', १९६६, श्री छागला को पत्र, दिनांक २९ जून, १९६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा में राजनीति

श्री बैजनाथ शर्मा
लोकमान्य तिलक प्रशिक्षण महाविद्यालय, डबोक

सूर्य उदय होता है और अस्त हो जाता है। रात में तारे चमकते हैं और दिन में विलीन हो जाते हैं। यह नियम है। इसी को नई पीढ़ी बन्धन कहती है। वह बन्धन नहीं चाहती। उसकी दृष्टि में पवन जैसी स्वच्छन्दता इस बन्धन से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। चाहे वह बहुतों को विलोड़ित करे और कुछ को उखाड़कर भी फेंक दे। पवन से भी अधिक तेज गति और स्वच्छन्द विचरण मन का है। चाँद पर पहुँचने वाले जिस दिन वायु पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे उस दिन ही मानव की सच्ची विजय होगी। मानव की इससे भी बड़ी विजय उस दिन होगी जब वह मन को वशीभूत करने का एक सूत्र खोज निकालेगा। मानव शरीर में मन:स्थिति अनुभव की जा सकती है लेकिन प्रत्यक्ष नहीं देखी जा सकती। यही दशा आत्मा की भी है। दोनों की वास्तविक स्थिति का ज्ञान किसी को हो अथवा नहीं परन्तु अधिकांश दार्शनिकों एवं विचारकों के अनुसार मन में पैदा होने वाले विचार स्वार्थ पर केन्द्रित होते हैं और हृदय या आत्मतत्त्व से प्रभावित विचार परहित की भावना से ओतप्रोत होते हैं।

मस्तिष्क में विचार उत्पन्न होते हैं और सक्रिय रूप धारण करने से पूर्व मन तथा आत्मा में 'स्व' और 'पर' की भावना को लेकर संघर्ष पैदा होता है। इस संघर्ष में जो दूसरे पर हाबी होकर विजयी होता है, वही दूसरे पर अपना प्रभुत्व जमा लेता है। देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार एक-दूसरे पर हाबी होना और प्रभुत्व जमाना भी परिवर्तित होता रहता है। कभी मन की विजय होती है तो कभी आत्मा की। कभी नाव लढ़े पर और कभी लढ़ा नाव पर। जब मन दूसरों के अहित की बात सोचता है तो उसी के अनुरूप नीति भी निर्धारित करता है। इसी का नाम कूटनीति है। कूटनीति राजनीति का ही एक अङ्ग है। अतः राजनीति वह नीति है जिसमें स्वार्थसिद्धि के लिए परहितों की होली जलाई जाती है।

राजनीति का कर्मक्षेत्र बड़ा विस्तृत है। मानव हृदय (आत्मा) को छोड़कर ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ इसका प्रवेश वर्जित हो अथवा यह प्रवेश न करती हो। यह उन अखाड़ों से कम नहीं जहाँ पहलवान नये-नये दांव चलाकर एक-दूसरे को चारों खाने चित्त पटक देना चाहते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि वहाँ शरीर जूझते हैं, यहाँ मस्तिष्क चाल चलते हैं और जहाँ मस्तिष्क चाल चलते हैं वहाँ अन्त में खोखलेपन के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं बचता।

हर्ष हो या विषाद लेकिन सत्यता यह है कि इधर कुछ समय से शिक्षा ने राजनीति में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। एक छोटी-से-छोटी पाठशाला में भी जहाँ एक से अधिक अध्यापक हैं वहाँ कम-से-कम तीन बड़े अखाड़े नजर आने लगते हैं। पहले अखाड़े के पहलवान शिक्षार्थी होते हैं और दूसरे का सृजन शिक्षक वर्ग स्वयं अपनी गौरव-गरिमा दिखाने के लिए करता है। जब ये दोनों ही वर्ग अपनी-अपनी सीमाओं का अतिक्रमण कर जाते हैं तो कभी-कभी किन्हीं संस्थाओं में एक तीसरा अखाड़ा और तैयार हो जाता है जिसमें एक ओर शिक्षक वर्ग और दूसरी ओर विद्यार्थी-समुदाय अपने-अपने बलों का प्रदर्शन करने के लिए मैदान में उतर आते हैं। यह सबसे निकृष्ट स्थिति है।

राजनीति के इन अखाड़ों की स्थिति, क्रिया-क्षेत्र एवं सीमाएँ साधारण अखाड़ों से कहीं भिन्न होती हैं। भिन्न इस अर्थ में कि साधारण अखाड़ों में हार-जीत का निर्णय चटपट हो जाता है, जबकि मन भिड़न्त महीनों और सालों तक चलती ही रहती है और कभी-कभी तो स्थिति इतनी भयङ्कर बन जाती है कि दो-चार शहीद हो जाने पर भी शान्त नहीं होती। वैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन-भिड़न्त राजनैतिक अखाड़े की अन्तिम और अधमतम सीमा है। साधारण क्षेत्र में इन अखाड़ों की स्थापना दलों की सुदृढ़ता के लिए की जाती है किन्तु शिक्षा में किसी भी प्रकार के अखाड़े की स्थापना का अर्थ है—संस्था को जीर्ण-शीर्ण बनाकर उसे समाप्त कर देना।

शिक्षा के क्षेत्र में राजनीति के प्रवेश करते ही उस ज्वालामुखी का सृजन प्रारम्भ हो जाता है जो अपने विस्फोट से बहुतों को नष्ट कर देता है। दूसरों की असहायता, निरीहता और उत्पीड़न का उसके यहाँ कोई मूल्य नहीं। जब राजनीति के हथकण्डे समान वर्ग से प्रारम्भ होते हैं तब इसके अस्त्र ईर्ष्या, द्वेष या इसी प्रकार के मनोभाव होते हैं, जो उसे प्रकृति का श्रेष्ठतम जीव न रहने देकर नराधम या पिशाच की श्रेणी में ला पटकते हैं। यही राजनीति जब असमान वर्ग में प्रवेश करती है तो इसके अस्त्र भी बदल जाते हैं। एक ओर प्रतिशोध की शान्त ज्वाला होती है तो दूसरी ओर घृणा की तीव्र भावना। कभी-कभी ऐसी भी होता है कि कुछ लोग अपने प्रतिद्वन्दी से बदला लेने में सर्वथा असमर्थ होते हैं और उनकी वह असमर्थता निर्बलों पर चलाये जाने वाले अस्त्र 'क्रोध' के रूप में परिवर्तित हो जाती है। कुछ भी हो, कूटनीतिज्ञों के हृदय में दया के आँसू नहीं होते, जो दूसरों के दर्द को समझें। वे अवसरवादी होते हैं, आदर्शवादी नहीं। इस प्रकार सहयोग, सहानुभूति और सत्कार्य की दृष्टि से जिस शिक्षण संस्था की स्थापना हुई थी, उसकी जड़ें सुदृढ़ होने से पूर्व ही असहयोग, ईर्ष्या, द्वेष घृणा एवं प्रतिशोध की दीमक उसे अन्दर ही अन्दर खा जाती है और वह निर्जीव संस्था एक दिन परिस्थितियों के थपेड़े खाकर धराशायी हो जाती है। उसका अस्तित्व विलीन हो जाता है एवं सुमन और सुफल की प्राप्त्याशा कल्पना बनकर ही रह जाती है। भटकती हुई राजनीति भी दूसरा अखाड़ा तैयार करती है और बसे हुए लोगों को उखाड़ती है।

आज शिक्षण-संस्थाओं में सर्वत्र यही हो रहा है। परिणामतः शिक्षा का स्तर गिर रहा है और समस्याएँ उत्तरोत्तर बढ़ रही हैं। न्याय के साथ अन्याय हो रहा है। शिक्षकों की आत्माएँ उन्हें कचोटती हैं, कहती हैं कि उनका रास्ता सही नहीं है, फिर भी वे अपने मार्ग को नहीं बदल पाते। विद्यार्थियों के साथ तो यह बात और भी अधिक लागू होती है। वे पढ़ना ही नहीं चाहते और शिक्षक भी या तो पढ़ाना नहीं चाहते अथवा पढ़ा नहीं सकते। कुछ भी हो, दोनों का दुष्परिणाम शिक्षार्थी को ही भोगना पड़ता है। वह ज्ञान प्राप्त कर ही नहीं पाता और वांछित ज्ञान के अभाव में स्वयं या राष्ट्र के विकास की बात सोचना बालू की दीवार बनाने से किसी भी प्रकार कम नहीं। आज तो यह राजनीति प्रमाणपत्र से लेकर शिक्षकों के स्थानान्तरण तक बात-बात में प्रवेश कर गई है। शिक्षक, शिक्षक न रहकर राजनेता बनने के चक्कर में है। अतः आवश्यकता है शिक्षा का स्तर उठाने तथा शिक्षक और शिक्षार्थियों के विचारों में परिवर्तन लाने की।

जिस दिन यह राजनीति स्वार्थ की संकुचित दीवारों को तोड़कर 'परहित' पर केन्द्रित होगी और मन के हाथ में नाचने वाली कठपुतली न रहकर आत्मा या हृदय का नियन्त्रण स्वीकार कर लेगी उस दिन इसका नाम भी राजनीति न रहकर धर्मनीति होगा। शिक्षा का स्तर पुनः ऊँचा उठ जावेगा और मानव पुनः हर्षोल्लास से नाच उठेगा। ●

[पृष्ठ ४२ का शेषांश]

भावना, गन्दी चिन्तना, और स्वार्थमयता से सम्बन्ध नहीं रखती है, यद्यपि वास्तव में आज राजनीति का रूप इन्हीं सब बातों में पाया जाता है। इसका अर्थ न तो केवल शासन या राज्य से ही है, बल्कि वास्तव में राजनीति उस महान् नीति का द्योतक है जो मनुष्य को उदार दृष्टिकोण वाला, उच्च विचारक एवं सबके हित में काम करने वाला बनाती है, यह अवश्य है कि शासन एवं शासन में लगे लोगों के हाथ यह हमेशा जुड़ी होती है। इसीलिए राजनीति वह नीतिशास्त्र है, जिसके कारण राजनीतिज्ञ, राजनेता, राजभक्त एवं जनता सभी अपने कर्त्तव्य को समझते हैं और सब मिल-जुलकर एक-दूसरे के उत्थान में सामूहिक योगदान करते हैं। ऐसे ही भाव के साथ इसका सम्बन्ध शिक्षा से होता है। शिक्षा उत्थान की प्रक्रिया है और राजनीति उत्थान के मार्ग पर ले जाने का संकेत है। अतएव शिक्षा की दिशा भी राजनीति के द्वारा निश्चित होती है, यह कहना अनुचित न होगा। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा में राजनीतिज्ञों का योगदान

प्रो० वैद्यनाथ शर्मा
ग्राम–पटसारा, जिला–मुजफ्फरपुर (बिहार)

प्रस्तुत लेख में तीन शब्द व्यातव्य हैं; यथा–शिक्षा, राजनीतिज्ञ तथा योगदान। यों तो शिक्षा आदमी घर पर भी प्राप्त कर सकता है। जन्म से ही मनुष्य शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ करता है और यावज्जीवन करता ही रहता है। गलतियों से भी लोग शिक्षा ग्रहण करते हैं। आप्त वचन तथा अनुभव भी शिक्षा के सोपान स्वरूप हैं परन्तु प्रस्तुत लेख में 'शिक्षा' शब्द से जनशिक्षा का तात्पर्य है। इस प्रकार की शिक्षा तो शिक्षण-संस्थाओं में ही सम्भव है। इन संस्थाओं में प्राप्त होने वाली शिक्षा पर बाहरी वातावरण एवं व्यक्ति का प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है।

अब दूसरा शब्द है—'राजनीति'। राजनीति से तात्पर्य प्राचीन काल के राजाओं द्वारा अपनायी जाने वाली नीति से था। आधुनिक काल में राजनीति राजाओं के हाथों से निकलकर जनता या सेना के हाथों में आ गयी है परन्तु उसकी प्रतिपादन-शैली में ज्यादा फर्क नहीं आया है। राजा की जगह नेता अधिनायक बन बैठे हैं। आजकल तो शासन-संचालन तथा विधि-निर्माण में हाथ बँटाने वाले ही राजनीतिज्ञ कहलाते हैं, चाहे भले ही वे राजनीतिशास्त्र के ए-बी-सी से वाकिफ न हों। यहाँ राजनीतिज्ञ से तात्पर्य राजनीतिशास्त्र-विशारदों से नहीं है वरन् राजनेताओं से है। बल्कि यों कहा जाय कि आज की राजनीति ज्ञानाश्रित कम और पैंतरेबाजी अधिक बन गयी है। आज की राजनीति में गुटबन्दी का बोलबाला है। 'पंडित सोई जो गाल बजावा' वाली कहावत आज राजनीतिज्ञों पर अक्षरशः ठीक बैठती है। आज के राजनेता अपने को हरफन-मौला समझने लगे हैं। आज की राजनीति तो दलगत भावना से प्रेरित है और सेवा से स्वार्थ को ऊपर मानती है।

अब तीसरा शब्द है—'योगदान' जिसका अर्थ है—किसी कार्य के सम्पादन में हाथ बँटाना। आजकल योगदान स्वार्थ के वशीभूत ही होता है।

इस युग में सभी संस्थाओं में राजनेताओं का प्रवेश हो गया है तो भला शिक्षण-संस्थाएँ ही इसका अपवाद क्योंकर होतीं। यह अबाध प्रवेश शुभकारी है अथवा अशुभकारी—इसी की विवेचना प्रस्तुत लेख का विषय है। किसी भी संस्था के लिए व्यक्ति अनिवार्य है चाहे वह नेता हो या अभिनेता या वैज्ञानिक अथवा कलाकार; आखिर सभी तो समाज के अंग हैं न।

आज राजनीतिज्ञों की दखलन्दाजी तो आम बात बन गयी है। कोई भी संस्था इससे अछूती नहीं है। यह युग भी उनका ही है। जिस किसी संस्था में राजनेता प्रवेश करते हैं वे अपनी या अपने दल की नीति को घुसेड़ देते हैं क्योंकि आज की राजनीति दलगत राजनीति है। रूस में तो पाठ्यक्रम-निर्धारण, पाठ्य-पुस्तक प्रणयन, पठन-पाठन सभी एक दल-विशेष की नीति के अनुसार होता है। इस विषय में शिक्षा-विशारद भी चूँ-चपड़ नहीं कर सकते। इस प्रकार एक दल-विशेष के दकियानूसीपन के कारण विरोधी भावनाओं को पनपने का अवसर ही नहीं दिया जाता ताकि भविष्य में आल-औलाद भी किसी प्रकार का विरोध करने में समर्थ न हो सके। यह तो शिक्षा की स्वस्थ प्रवृत्ति नहीं है। इससे व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हनन होता है और लोगों को बनी-बनाई लीक पर चलने को मजबूर किया जाता है। अभी बिहार में श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में चलने वाला आन्दोलन भी कुछ इसी प्रकार का है जिसमें कि अपने सिद्धान्तों को जोर-जबरदस्ती से लादने का प्रयास किया जा रहा है। मेरी समझ में नहीं आता कि जो इस आन्दोलन में नहीं पड़ना चाहते, उन्हें बेकार ही क्यों घसीटा जाता है।

[शेष पृष्ठ ४८ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे १९७४ के गौरवशाली प्रकाशन

आलोचना

● **प्रसाद के नाटक : सिद्धान्त और विवेचन** — डा० देवेन्द्र आर्य २०.००

प्रसाद के नाटक-साहित्य का ऐतिहासिक, सामाजिक एवं साहित्यिक दृष्टि से गवेषणात्मक विश्लेषण और विवेचन

उपन्यास

● **फिर सुबह होगी** [बहुचर्चित उपन्यासकार का नया उपन्यास] — बलवन्तसिंह १२.५०

कहानी-संग्रह

● **नया सफर** — सत्येन्द्र शरत् ८.००

सत्येन्द्र शरत् का नया कहानी संग्रह "नया सफर" आपके सामने प्रस्तुत है। आप इन्हें स्वतन्त्र कहानियों की तरह भी पढ़ सकते हैं और जिस क्रम में ये रखी गयी हैं उनके अनुसार आदि से लेकर अन्त तक पढ़कर लघु-उपन्यास का आनन्द भी उठा सकते हैं।

● **रथचक्र** — हिमांशु जोशी १०.००

नई पीढ़ी के सशक्त कथाकार हिमांशु जोशी का नया कहानी संग्रह। जिनमें वर्तमान समाज की विडम्बनाओं एवं विभीषिकाओं का सजीव चित्रण हुआ है।

● **भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठ कहानियाँ** — सम्पादक : हिमांशु जोशी २०.००

भारत के श्रेष्ठ कथा-शिल्पियों की श्रेष्ठ कहानियाँ। अपने ढंग का एक अनूठा संकलन।

हमारे अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

उपन्यास

● **अरण्य** — हिमांशु जोशी १०.००
● **विदा बन्धु विदा** — प्रणवकुमार वन्द्योपाध्याय १०.००

कहानी-संग्रह

● **बारूद की सृष्टि-कथा** — प्रणवकुमार वन्द्योपाध्याय ७.००

कविता-संग्रह

● **मृत शिशुओं के लिये प्रार्थना** — प्रणवकुमार वन्द्योपाध्याय १०.००

बाल-साहित्य

● **सफलता की सीढ़ियां** — श्री व्यथित हृदय ४.००
● **दिल्ली के शहीद : दिल्ली के देवता** — श्री व्यथित हृदय २.५०

नोट—हमारे यहाँ सभी प्रकार की पुस्तकें मिलती हैं। अधिक जानकारी के लिए पत्र लिखकर हमारा बृहद सूची-पत्र मँगाइए।

पांडुलिपि प्रकाशन

प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

ई–११/५, कृष्ण नगर, दिल्ली—११००५१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति और सामाजिक परिवर्तन तथा शिक्षा

डा० तेज बहादुर माथुर
रीजनल कॉलेज ऑफ़ एजूकेशन, अजमेर

राजनीति और राजनैतिक विषयों पर चर्चा हमारे सामाजिक जीवन का अंग है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय जीवन में राजनीति का अत्यधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ और व्यक्ति भी हैं जो सामाजिक परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं और जिन्हें समाचार-पत्रों तथा पत्र-पत्रिकाओं में अपने योगदान की चर्चा का शौक नहीं है और न हमारे संवाददाताओं को उनसे भेंट करने की फ़ुरसत। इनमें से बहुधा धार्मिक संस्थाएँ हैं। भारतीय सामाजिक जीवन पर धर्म का तथा प्राचीन संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। रामायण, गीता, जैन व बौद्ध धर्म ग्रन्थ, क़ुरान शरीफ, बाइबिल और गुरु-ग्रन्थ साहब आदि धार्मिक पुस्तकों का भी सामाजिक परिवर्तनों पर काफी प्रभाव होता है।

दूसरा प्रभाव सामाजिक परिवर्तन पर वैज्ञानिक खोजों का हुआ है जिसने व्यक्ति को वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके विचारों और कार्यों में परिवर्तन लाने का ढंग सिखाया है। इसी के साथ पश्चिमी देशों के साहित्य और सामाजिक जीवन का हमारे व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। बड़ी संख्या में हमारे देश के शिक्षित व्यक्ति पश्चिमी देशों से आई पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन करते हैं। विदेशों का भ्रमण करके आए हुए व्यक्ति और विदेशी लोग जो हमारे देश में रहते हैं और प्रायः आते रहते हैं, हमारे सामाजिक जीवन पर प्रभाव डालते हैं।

आर्थिक परिस्थितियों का भी सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण कार्य-भाग होता है। आर्थिक संतुलन के परिणामस्वरूप अनेक सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए हम विवश होते हैं। उदाहरण के लिए, पेट्रोल के मूल्य में वृद्धि होने के कारण लोगों के मेल-मिलाप पर प्रभाव दिखाई पड़ता है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न लोग भी सामाजिक परिवर्तनों में भाग लेते हैं और अपने आचरण से सामान्य लोगों को प्रभावित करते हैं।

विद्यालय, कॉलेज व विश्वविद्यालय का सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षा के यह केन्द्र विचारों का मन्थन करके प्रायः व्यावहारिक जीवन-दर्शन तैयार करते हैं और ऐसा मानस बनाते हैं जो सामाजिक परिवर्तन लाने में सक्रिय भाग लेता है। विद्यार्थी समुदाय ने राजनीतिक व सामाजिक क्रांति लाने में पहल की है।

इतिहास के पन्ने हमें बताते हैं कि महत्त्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन प्रयत्न करके लाए जाते हैं। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द, महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू उन व्यक्तियों में प्रमुख हैं जिन्होंने भारतीय जन-जीवन पर अपने विचारों और कार्यों की अमिट छाप छोड़ी। उन्होंने सामाजिक जीवन को प्रभावित किया। यह सामाजिक परिवर्तन प्रयत्न करके लाए गये। इन सामाजिक परिवर्तनों का उदय मानव चिन्तन से होता है और इनमें प्रसार होने की शक्ति आती है व्यक्तियों के उत्साह से। महान् पुरुष अपनी सामाजिक कल्याण की भावना से ओत-प्रोत होकर सच्चे हृदय से सामाजिक परिवर्तन का संचालन करते हैं।

राजनीति—सामाजिक व्यवस्था को उन्नतशील बनाने के लिए राज्य, सरकार व शासन-प्रबन्ध की आवश्यकता होती है। संसद का कर्त्तव्य होता है कि वह सामाजिक प्रगति के लिए आवश्यक तत्त्वों पर विचार-विमर्श करे। विचार-विमर्श और विचार-मन्थन के पश्चात् ही विधियों को पारित किया जाता है और फिर सरकार द्वारा उनको प्रसारित किया जाता है। यह सर्वविदित है कि संसद द्वारा पारित अनेक विधान समाज में आंशिक रूप में ग्राह्य हुए। बेमेल विवाह,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल-विवाह, बाल-श्रम आदि प्रथाएँ आज भी प्रचलित हैं और बड़ी संख्या में लोगों ने इन प्रथाओं को जारी रखा है। क़ानून बनाने से सामाजिक परिवर्तन नहीं आते। इसका मुख्य कारण है—संसद के निर्वाचित सदस्यों का सामाजिक विचारधारा से अनभिज्ञ होना। शायद हमारे प्रजातन्त्र में संसद के निर्वाचित सदस्य सही अर्थ में सामाजिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व नहीं करते। इस दिशा में हमें बहुत कुछ करना है।

शिक्षा—पुस्तक-केन्द्रित शिक्षा ही प्रमुख रूप से हमारे देश में प्रचलित है। शिशु-केन्द्रित शिक्षा तथा समाज-केन्द्रित शिक्षा के तत्त्वों का शिक्षा में समावेश करने का हम प्रयत्न कर रहे हैं। वर्तमान काल में सामान्य रूप से विद्यालयी-शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य नौकरियों के लिए बालक व बालिकाओं को तैयार करना है। इस रूप में शिक्षा समाजोपयोगी व्यक्ति तैयार करने में असफल रही है। सामुदायिक विद्यालय व समाज-केन्द्रित शिक्षा की हम सैद्धान्तिक चर्चा करते हैं परन्तु ऐसे विद्यालयों की स्थापना अभी हमें करनी है।

सामाजिकता के गुणों को विकसित करने का प्रयास हमारे तकनीकी, इन्जीनियरिंग व मेडिकल कॉलेज के पाठ्यक्रम में नहीं किया गया। अध्यापक प्रशिक्षण में भी व्यावहारिक रूप में सामाजिकता व सामाजिक परिवर्तन सम्बधी विचार-विमर्श को यथेष्ट स्थान नहीं मिला है। वर्तमान काल में सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षकों का महत्त्वपूर्ण कार्य-भाग नहीं दिखाई पड़ता परन्तु लेखक की दृढ़ मान्यता है कि सामाजिक परिवर्तन लाने में युवा-पीढ़ी विशेषकर शिक्षित युवक व युवतियों का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है और इन्हें इस उत्तरदायित्व के लिए उचित शिक्षा दी जानी चाहिए। यहाँ पर शिक्षा, शिक्षक प्रशिक्षण, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक व पाठन विधि का स्थान है। शिक्षक का शिक्षा की प्रक्रिया में केन्द्रित स्थान है। यद्यपि अनौपचारिक शिक्षा (Informal Education) शक्तिशाली होती जा रही है परन्तु फिर भी शिक्षक का गौरवपूर्ण स्थान बना रहेगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षक सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षार्थियों के मानस को तैयार करने में समर्थ है।

शिक्षक का उत्तरदायित्व—मुदालियर शिक्षा-आयोग (१९५६) ने शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए इस बात पर बल दिया था कि माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के लिए लीडर तैयार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए माध्यमिक विद्यालयों को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है। कॉलेज और विश्वविद्यालय के शिक्षक भी इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कर सकते हैं। विषय के अध्यापन के साथ-साथ शिक्षा के उद्देश्यों की ओर ध्यान देकर शिक्षक अपने व्यक्तित्व, आचरण तथा विचारों से विद्यार्थियों के मानस को तैयार कर सकता है। समाज-केन्द्रित शिक्षा की ओर बढ़ने का शिक्षकों को प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक और पाठ्येतर क्रियाओं में आवश्यक परिवर्तन किया जाना चाहिए और ऐसा करने के लिए केन्द्र तथा राज्यों के शिक्षा-विभाग को उचित मार्ग-निर्देशन देना चाहिए।

शिक्षक संगठनों में भी इस प्रकार की चर्चा होनी चाहिए। विचार-गोष्ठियों द्वारा उन व्यावहारिक तरीकों का पता लगाकर हम इस दिशा में कार्य कर सकते हैं। मेरे विचार से शिक्षक वर्ग सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए युवा पीढ़ी को भली-भाँति तैयार करने में समर्थ हो सकता है। ●

[पृष्ठ ४५ का शेषांश]

पौराणिक काल में प्रह्लाद को भी उसके पिता ने अपने मन की शिक्षा देनी चाही थी परन्तु उसने वैसी शिक्षा लेने से इंकार कर दिया और यातनाएँ भोगीं। यही हाल आज के राजनीतिज्ञों का भी है। यदि उनके मन की बात नहीं हुई तो वे बदला लेने पर उतर आते हैं। राजनीतिज्ञ भी आखिर मनुष्य हैं। यदि वे विवेक से काम लें तो उनका काम वरदान सिद्ध हो सकता है। शिक्षकों एवं छात्रों के बीच वे सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं और आये-दिन होने वाले दंगे-फसादों को भी समाप्त करवाने में मदद कर सकते हैं। सबसे दयनीय स्थिति तो तब उपस्थित होती है जबकि राजनेता अपनी दलगत नीति को चरितार्थ करने के लिए विद्यार्थियों को अपना हथकंडा बनाते हैं। वे अपने को 'अलादीन के चिराग' से कम चमत्कारी नहीं समझते। इससे

[शेष पृष्ठ ५९ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति के ब्रह्मपाश में ग्रसित शिक्षा

श्री ताराचन्द शर्मा
स्नातकोत्तर शिक्षक, केन्द्रीय विद्यालय, मथुरा कैण्ट

शिक्षा, यदि एक ओर, सभ्यता का सोपान, संस्कृति का सम्बल, मानव-प्रेम का मूलाधार और मोक्ष का द्वार है तो दूसरी ओर आत्मीयता की प्रेरक-शक्ति, समरसता की प्रचारिका, एकता की प्रसारिका, संगठन की नियामिका और विकास सरिता की प्रवाहिका है। किन्तु ऐसी महत्त्वपूर्ण शिक्षा जब अन्य सामयिक कुप्रभावों से प्रभावित हो जाती है तो उसका रूप विकृत होने पर अकबर इलाहाबादी की इन पंक्तियों का सहज स्मरण हो आता है—

किताबें वो तमाम हम काबिले जब्ती समझते हैं,
कि पढ़कर जिनको बेटे बाप को खब्ती समझते हैं।

विश्लेषणात्मक मनन से स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान युग में शिक्षा-प्रक्रिया को जिन धाराओं ने प्रभावित किया है, उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण राजनैतिक विचार-धारा ही है। शाला अधिनायकत्व का एक प्रकार से अस्त्र बन गई है। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि कभी भी सरकारों ने अपने आप को सीमाओं में आबद्ध नहीं रखा बल्कि जनमानस के कार्यों तथा विचारों को अपने नियन्त्रण में करने का प्रयास किया। आंग्ल शासनकाल में सात समुद्र पार से लाकर थोपी गई पाश्चात्य प्रणाली से प्रभावित मैकॉले की शिक्षा राजनीति से पूर्णतः परिपूरित थी जिसके दुष्परिणाम आज तक भोगने पड़ रहे हैं। आज भी हम इससे परे नहीं हैं जबकि हर दल का नेता अपने मन्तव्यों की पूर्ति के लिए मतिभ्रमित हो शिक्षा-विषयक प्रश्न-चिह्न लगाकर बात करता है और उसके माध्यम से देश में विघटनकारी चिंगारियाँ प्रज्ज्वलित करता है तथा शिक्षा को खुलकर स्वार्थ-सिद्धि हेतु उपयोग में लाने लगता है जिससे राजनीति जो लोकसभा-मंच पर कुछ नहीं कर पाती, शिक्षा-मंच पर आन्दोलन सिखाकर विडम्बना बन, शिक्षा की सांस्कृतिक स्वतन्त्रता का अपहरण करती है जिसके फलस्वरूप छात्र विवेकात्मक निर्णयों का अभ्यास करने की अपेक्षा आन्दोलनात्मक राजनीति का व्यायाम सीखना प्रारम्भ करता है।

शिक्षा पर हावी सत्ता की राजनीति से शिक्षा की उपेक्षा होने के कारण समग्र राष्ट्र को हानि होती है और अनेकानेक समस्याएँ स्वभावगत, स्वार्थगत, अकर्मण्यतावश उठ खड़ी होती हैं जिनमें उलझने से अभीष्ट पाथेय ही अज्ञेय बन जाता है और महाकाल की विभीषिका हमारे सम्मुख ताण्डव नृत्य करने लगती है। उदाहरणार्थ—राष्ट्रीय शिक्षा-नीति और उसका अनुपालन राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक है किन्तु छिछली राजनीति की भाषायी साम्प्रदायिकता ने इसका मार्ग अवरुद्ध कर लिया है और राष्ट्र की आवश्यकता यथावत् है क्योंकि अल्पसंख्यकों के निर्दिष्ट मतों को पाने के लिए उनके नाम पर छीछालेदर की जाती है। फलस्वरूप देश की राष्ट्रभाषा का प्रश्न अभी तक अनिर्णीत पड़ा है और प्रदेश की भाषा तथा शिक्षा की भाषा स्वयं में एक बड़ा प्रश्न हो गई है। वस्तुतः संविधान ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है परन्तु राज नैतिक घटकों ने अपने स्वार्थ के लिए इस समस्या को उभारा है जिससे क्षेत्रीय आन्दोलनों ने सभी विधाओं कोपीछे छोड़ दिया है। इस प्रकार राजनीति के कुप्रभाव से हम लक्ष्य को भूल गये और इतर उलझनों में फँस गये हैं।

राजनीति से प्रभावित होने के कारण शिक्षा सुदृढ़ एवं उत्तम गुण-प्रधान बनने की अपेक्षा लोकप्रिय मात्रा-प्रधान बन पाई है। परिणामस्वरूप सहस्रों शिक्षित युवक नौकरी की खोज में आवारा घूमने लगे हैं और किसी अन्य कार्य को करने में असमर्थ होने के कारण उन्हें सुख-शान्ति के दर्शन दुर्लभ हैं। इसी से कवि के ये उद्‌गार प्रकट हुए हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

**"शिक्षित जनसंख्या बढ़ती, शिक्षा बढ़ती जाती है।
फिर क्या कारण है कि, कहीं सुख-शान्ति न मुख दिख-
लाती है ।।"**

यही नहीं, व्यावहारिक दृष्टि से जब कृषकाय शिक्षक को स्थूलकाय राजनीतिज्ञ के उपदेश सुनने पड़ते हैं तथा धन व सत्ता के लोभी नेताओं की सलाह सहन करनी पड़ती है तो वह विक्षुब्ध हो, स्वलक्ष्य से भटका-भटका-सा प्रतीत होता है। ऐसा निराश गुरु-वर्ग जब कक्षा में जाता है तो छात्रों में विद्यमान बाल-सुलभ जीवन स्वतः ही समाप्त हो जाता है और नैराश्य, लक्ष्यहीनता एवं भविष्य की अनिश्चितता की भावनाएँ उन्हें सड़क पर ले आती हैं तथा सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट कराके पथभ्रष्ट वीरता का परिचय कराती हैं। इतना ही नहीं, इस स्थिति में भी शीघ्र ही छात्रों का मार्ग प्रशस्त करने हेतु राजनैतिक दल आ धमकते हैं। फलतः शिक्षा-मन्दिरों में छिछली राजनीति प्रवेश कर जाने से राजनैतिक हल-चलें बढ़ने लगती हैं तथा सशक्त राजनैतिक दल शिक्षक के हाथों से छात्रों की बागडोर छीनकर कल्याण करने का राग अलापने लगते हैं। किन्तु ऐसी राजनीति जिससे संसद भवन एवं विधानसभाओं में शिष्टाचार कोसों दूर भाग गया हो, के चरण-कमल से विद्या-मन्दिर कितना पवित्र होगा, इसका अनुमान लगाया जा सकता है। इसी की महिमा से शिक्षक परिश्रम से कतरा कर अवकाश वृद्धि व कार्य-कालांश कम करने लगे तो छात्र चन्द दिनों में ही धनवान राजनीतिज्ञ होने का स्वप्न देखने से 'आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास' की बात चरितार्थ करने लगे हैं तथा अपनी मनमानी करने की आजादी की नयी गुलामी में भूले उस कगार पर आ पहुँचे हैं जिस पर यादव-कुल अपने विनाश काल में खड़ा था। बस देर है तो इतनी कि—

**मँझधार से उतर साहिल तक
एक ऐसी लहर भी आएगी।
तूफाँ के नजारा बाजों को
तूफाँ में बहा ले जाएगी।।**

इतना ही नहीं, शिक्षालय राजनैतिक गढ़ बनते जा रहे हैं और कुछेक राजनैतिक कार्यकर्त्ता शिक्षालयों की पवित्रता को नष्ट करने पर उतारू हैं। इसी से अब पाठ्य-क्रम शैक्षिक प्रक्रिया का सशक्त माध्यम न होकर राज-नीतिज्ञों के हाथों की कठपुतली रह गया है और भाषा की धुरी पर घूम रहा है। शिक्षा का माध्यम भी इन्हीं राजनैतिक हथकण्डों के कारण इतना विवादग्रस्त प्रश्न हो गया है कि शिक्षा की वास्तविक भूमिका लुप्त हो गई है। इस पाठ्य-प्रक्रिया के दोषी व परिस्थिति के अनु-कूल न होने से ही आज देश के कोने-कोने में आन्दोलन हो रहे हैं—कहीं छात्रों द्वारा तो कहीं अध्यापकों द्वारा। स्पष्टतः शिक्षा और कार्य के मध्य एकीकरण की प्रणाली का अभाव अर्थात् शिक्षा व राजनीति में असामंजस्य ही झंझटों का मूल है। कविवर प्रसाद के शब्दों में—

**ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की ?
एक-दूसरे से न मिल सके
यह विडम्बना है जीवन की।**

और इसका एकमात्र समाधान है—मानव-कल्याण के निमित्त इनका समन्वय और एक-दूसरे का पूरक होना। अतः ऐसी स्थिति में जबकि राजनैतिक दांव-पेंच से विद्यार्थी-समुदाय अनुशासनहीनता का प्रतीक मात्र बनकर रह गया है और राजनैतिक जीवन के दोष शिक्षा में प्रवेश कर गये हैं, शिक्षाविदों को समय के साथ शिक्षा-क्षेत्र में प्रविष्ट इन व्याधियों का समय रहते उपचार करना है जिससे यह संक्रामक रोग और न फैल पाये। अब प्रश्न उठता है कि ऐसी दशा में जबकि शिक्षा और राजनीति इतने निकट आ गये हैं कि शिक्षा राजनीति से असंपृक्त नहीं रह सकती और न पृथक् क्योंकि शालाओं द्वारा भावी नागरिकों को प्रशिक्षित करने से शिक्षा राज्य का ऐसा अस्त्र बन गया है कि उसे राज्य अपने आप से अलग करना नहीं चाहता, शिक्षा पर राजनीति के नियंत्रण का कौन-सा स्वरूप हो जिससे राष्ट्र को आदर्श नागरिकों की उपलब्धि हो।

सत्यतः राज्य के पूर्ण नियंत्रण से शिक्षा का विकास अवरुद्ध हो जाता है, मौलिकता मलिन पड़ जाती है। प्रो० स्मिथ ने स्वपुस्तक 'देश के विद्यालय' में लिखा है कि शासन के हस्तक्षेप का प्रभाव यह होना चाहिए कि हमारी स्वतंत्रता में वृद्धि हो, न कि यह कि उसमें और कमी आवे। इस हेतु शिक्षा की उसी परम्परा को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है जो प्राचीन भारत में विद्यमान थी जिसमें शिक्षक शिक्षा का केन्द्र-विन्दु था और शिक्षा-संस्थाओं के संचालन का पूर्ण उत्तरदायित्व सरकार को वहन करना पड़ता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तु, राजनीतिज्ञों को अपने कार्य-व्यवहार से वैचारिक क्षेत्र में जनता का मार्गदर्शन करना चाहिए और समाज में जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा करना राज्य का उद्देश्य हो, उन मूल्यों के विरुद्ध लोकनेता को आचरण कदापि नहीं रखना चाहिए। शिक्षा-संस्थाओं को राजनैतिक दाँव-पेचों से सर्वथा मुक्त रखना चाहिए तथा उन्हें अपने ढंग से विकसित होने का अवसर प्रदान करना चाहिए। राजनीतिज्ञों द्वारा शिक्षा-संस्थाओं के कार्यों को प्रोत्साहन तो अवश्य दिया जाय किन्तु प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनके कार्यों में हस्तक्षेप न किया जाय। ऐसा सम्भव होने पर ही ऐसे विचारशील नागरिकों का सृजन होगा जो शिक्षा द्वारा राजनैतिक चरित्र के ह्रास को रोक कर प्रत्येक प्रश्न एवं सुझाव पर सार्वजनिक दृष्टि से विचार कर सकेंगे, सामाजिक भावावेश में नहीं बहेंगे और कोरे प्रदर्शन का अनुसरण न करके तथ्य व तर्क पर निर्णयों को आधारित करके राष्ट्र के सर्वतोमुखी विकास में योगदान प्रदान करेंगे। ●

[पृष्ठ ३१ का शेषांश]

शिक्षा-क्षेत्र में हमारे कुछ निजी प्रयासों का कार्य प्रशंसनीय है। वे उच्चकोटि की शिक्षा देने वाली संस्थाओं का संचालन करते हैं। कुछ संस्थाएं अच्छा कार्य करना चाहती हैं किन्तु साधनों के अभाव में पंगु पड़ी हैं और सीमित प्रयत्नों से ही संतोष कर लेती हैं। बहुत-सी निजी संस्थाएं ऐसी हैं जिनके प्रबन्धक धनोपार्जन के लिए अथवा जातिवाद के आधार पर या राजनीतिक प्रभाव बनाये रखने के लिए उन्हें चलाते हैं। कुछ प्रबन्धक शिक्षकों को कम वेतन देकर अधिक धन-राशि पर हस्ताक्षर कराकर अथवा छात्रों से नाना प्रकार के शुल्क लेकर खूब पैसा कमाते हैं। अपने सम्प्रदाय के बालकों को शिक्षा-सुविधाएं देने तथा स्व-जाति के लोगों को नौकरियां बाँटने के ध्येय से कुछ संस्थाएँ चलती हैं तो कुछ राजनीतिक दांव-पेंच विशेषकर निर्वाचन के समय छात्रों और शिक्षकों का उपयोग करने के लिए विद्यालय खोले हुए हैं। इन वणिक वृत्ति वालों, साम्प्रदायिकता का विष फैलाने वालों तथा राजनीतिक प्रपंचों में डालने वालों को शिक्षा से दूर रखना पड़ेगा। इनके लिए शासन का कड़ा नियंत्रण आवश्यक होगा। ●

[पृष्ठ ३६ का शेषांश]

सम्बन्ध में प्रयोग किया जाय तो अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आते हैं। चूंकि यहां पर विवेचन का स्थान बहुत सीमित है इसलिए इस कसौटी के प्रयोग से निकलने वाले निम्नलिखित निष्कर्ष बताना ही पर्याप्त होगा :—

१—मानव जीवन के सभी क्षेत्र परस्पर सम्बन्धित हैं। इसलिए प्रत्येक मानव को राजनीति के क्षेत्र में रुचि लेनी चाहिए और जब आवश्यक हो जाय तो सक्रिय भी अवश्य होना चाहिए। यह बात शिक्षकों के लिए है क्योंकि वे वयस्क हैं और उत्तरदायी बुद्धिजीवी हैं।

२—किन्तु समाज श्रम-विभाजन से चलता है। कुछ लोग राजनीति के क्षेत्र में प्रत्यक्ष रूप से काम करते हैं जब कि अन्य लोगों से यह आशा नहीं की जाती। आज जब देश स्वतन्त्र है तो जब तक स्वतन्त्रता पर ही कोई खतरा न आ जाय तब तक छात्रों और शिक्षकों को केवल उन्हीं राजनैतिक कार्यक्रमों में भाग लेना चाहिए जो मानव मात्र के लिए हितकारी हैं और वह भी केवल वहां तक जहां तक कि इससे विद्यार्थियों के अध्ययन और शिक्षकों के अध्यापन कार्य में बाधा न आती हो।

३—एकात्म मानववाद के अनुसार हमारा दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि मैं मनुष्य हूँ और मेरे चारों ओर जो लोग हैं वे भी मनुष्य हैं तथा हम सब इस मानवता के विकास में सहयात्री हैं और इसलिए हमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे विचारों और कार्यक्रमों का विरोध करना चाहिए जो मानव-मानव में खाई उत्पन्न करते हैं और एकात्मता कम करते हैं। दूसरी ओर हम ऐसे विचारों और कार्यक्रमों को आगे बढ़ावें जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ते हैं और एकात्मता उत्पन्न करते हैं। यह विचार विद्यालय, पड़ोस, परिवार, ग्राम और नगर, राज्य और देश तथा विदेश एवं मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है।

४—अन्त में प्रत्येक बौद्धिक व्यक्ति, जिसमें छात्र और शिक्षक दोनों ही आ जाते हैं, के लिए यह आवश्यक है कि वह उपर्युक्त कसौटी का प्रयोग करके शिक्षा और राजनीति के सम्बन्ध के विभिन्न पहलुओं का चिन्तन करके स्वयं यह निष्कर्ष निकाले कि उसे क्या करना चाहिए क्योंकि इस प्रकार आत्म-चिन्तन से निकाला गया निष्कर्ष ही सबसे अधिक प्रामाणिक होता है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लायब्रेरियों के लिए महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

★पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र — डॉ० जगदीश प्रसाद मिश्र — २०.००

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के आरम्भ से आधुनिक काल तक के विभिन्न रूपों, उनके समस्त विकासात्मक अंगों तथा नव्यतम सिद्धान्तों का सर्वाङ्गीण विवेचन किया गया है।

★पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धान्त — डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र — ३०.००

अनुभवी लेखक ने प्रमुख पाश्चात्य आचार्यों के काव्य सिद्धान्तों, वादों का गम्भीर रूप से विवेचन किया है, आधुनिक समीक्षा पद्धतियों का भी व्यापक अध्ययन है।

★कालिदास दर्शन — डॉ० शिवप्रसाद भारद्वाज — ४०.००

कालिदास के सम्पूर्ण साहित्य का मनोवैज्ञानिक ढंग से भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों के संदर्भ में विवेचन किया गया है।

★अज्ञेय की काव्य चेतना — डॉ० कृष्ण भावुक — २५.००

इस पुस्तक में अज्ञेयजी की प्रायः समग्र काव्य सम्पदा का मूल्यांकन प्रवाहपूर्ण शैली में किया गया है। अज्ञेयजी के काव्य की तुलना, अंग्रेजी, बंगला, मराठी, उर्दू आदि भाषाओं के काव्य से की गई है।

★गोदान : पुनर्मूल्यांकन — डॉ० राजपाल शर्मा — १५.००

प्रेमचन्द के व्यक्तित्व, उनकी साहित्यिक मान्यताओं तथा उनके प्रकाश में उनकी अमर कृति गोदान की उपलब्धियों और सीमा का विवेचन विश्लेषण किया गया है।

★भाषा विज्ञान — प्रो० देवदत्त कौशिक — १२.००

कठिन विषय को छात्रों के लिए सभी महत्त्वपूर्ण अंग-उपांगों सहित प्रस्तुत किया है।

★आधुनिक कथा साहित्य : मान और मूल्य — प्रो० राजेश शर्मा — १२.००

प्रस्तुत सर्जना में उपन्यास और कहानी साहित्य की विधाओं का समग्र मूल्यांकन तथा स्तम्भ रचनाकारों की विशिष्ट समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

★हिन्दी में शब्दालंकार विवेचन — डॉ० देशराजसिंह भाटी — २०.००

इसमें शब्दालंकार के स्वरूप, विकास आदि के विवेचन के साथ-साथ शब्दालंकारों के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और मौलिक विवेचन है।

★हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास — डॉ० सुरेश सिनहा — ३०.००

कहानी साहित्य की प्रवृत्तियों एवं कृतियों का शोधपूर्ण विवेचन किया गया है।

★राहुल सांकृत्यायन का कथा साहित्य — डॉ० प्रभाशंकर मिश्र — २५.००

राहुलजी के उपन्यासों एवं कहानी-कला पर विशेष शोधपूर्ण सामग्री दी है।

★प्रयोगवाद और अज्ञेय — प्रो० शैल सिनहा — १५.००

अज्ञेय की कविताओं में कथ्य और कथन के बीच जो एक बौद्धिक तनाव एवं इतिहास-बोध मिलता है, उसे शास्त्रीयता से हटकर नये सन्दर्भों में स्पष्ट किया गया है।

★भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच — डॉ० रामसागर त्रिपाठी — १२.००

नाट्यशास्त्र से सम्बद्ध २६ निबन्धों का संग्रह है, इसमें आधुनिक रंगमंच तथा लोक नाट्य आदि पर सामग्री दी है।

अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारों की राजनीति एवं दिशाहीन शिक्षा—एक विश्लेषण

आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली

दण्डविहीन राजनीति एवं धर्मविहीन शिक्षा समाज और व्यक्ति को अनुशासनहीन तथा अशान्त बना देती है। शिक्षा तथा राजनीति दोनों ही समाज की पुनर्रचना के प्रबल अभिकरण हैं किन्तु तभी, जब शिक्षा राजनीति निरपेक्ष हो और राजनीति शिक्षित व्यक्ति सापेक्ष हो। बहुमत के आधार पर भेड़चाल की राजनीति दिशाहीन व विवेकहीन राजनीति होती है। जिस देश में दस मूर्ख नौ विद्वानों को रास्ता बताने लगें, उस राष्ट्र में अविवेक और उच्छृङ्खलता का बोलबाला होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस विषय में कोई विप्रतिपत्ति नहीं हो सकती कि प्रजातांत्रिक शासन-पद्धति एवं जीवन-प्रणाली व्यक्ति और समाज के अभीप्सित लक्ष्य को प्राप्त करने में सर्वाधिक सहायक हैं। प्रजातन्त्र की सफलता का रहस्य जन-जीवन की सुशिक्षा तथा तज्जन्य विवेकज्ञान एवं स्वशासन में है। शिक्षा की उर्वर भूमि में ही प्रजातन्त्र की जड़ें गहरी जम सकती हैं। शिक्षा के मधुर फलों के रस से पोषित राजनीति समाज का हित साधन कर सकती है।

समस्त तन्त्र तथा प्रबन्ध का केन्द्र-विन्दु मनुष्य एवं मानवता है। चाहे राजनीति हो, चाहे शिक्षा-व्यवस्था हो, चाहे अर्थनीति हो, मनुष्य के संदर्भ के बिना निरर्थक हैं। सभी प्रकार की सामाजिक संरचना तथा अनेकविध प्रक्रियाओं का अभीष्ट मानव के अन्दर निहित चरम सत्य की विवृत्ति करना है। अथवा यों कहना चाहिए कि मनुष्य के चरम विकास के लिए अनुकूल देश-काल प्रदान करना है। मानव शोषण-विहीन समाज में रहकर निर्वाध रूप से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करके अकुतोभय होकर अपनी शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक प्रगति कर सके। इस हेतु उसे बाह्य एवं आन्तरिक साधनों की आवश्यकता है। राजनीति समाज को—मनुष्य के सामाजिक परिवेश को ऐसा रूप प्रदान करती है जहाँ कर्त्तव्य-पालन तथा पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धों के निर्वाह द्वारा मनुष्य, मनुष्य की तरह रहकर अपनी अन्तर्निहित शक्तियों की चरम परिणति प्राप्त कर सकता है। शिक्षा व्यक्ति को ज्ञान और शान्ति देकर उसके अन्तर्बाह्य सम्बन्धों के निर्वाह की क्षमता प्रदान कर मानव को आत्मतृप्त, स्वावलम्बी, आत्मानुशासित तथा कर्त्तव्य-पथ का पथिक बनाती है। संक्षेप में, इन सीमाओं में आबद्ध राजनीति एवं शिक्षा द्वारा ही 'स्वराज्य', 'सुराज्य', 'स्वतन्त्रता' तथा समाजवादी शोषकविहीन समानता एवं न्याययुक्त समाज का पुनर्निर्माण सम्भव है। शिक्षा और राजनीति मानव के अन्तर्बाह्य कवच हैं जिनके द्वारा मानवता की बर्बरता, स्वार्थ लोलुपता, अराजकता से रक्षा होती है।

क्या वर्तमान में राजनीति और शिक्षा से उन उद्देश्यों की पूर्ति हो रही है जिनके लिये भारतीय संविधान में हमने शपथ ली थी? इसका उत्तर देश के कोने-कोने से तथा जन-जन के मानस से मिल रहा है। हड़ताल, हत्याएँ, भ्रष्टाचार, औषधियों तक में मिलावट, घाटे की अर्थ-व्यवस्था, मुद्रास्फीति, पुलिस की गोलियों से निरीह प्राणियों का बध, नित्य नये मनमोहक नारे देकर जनता को उल्लू बनाना और अपना उल्लू सीधा करना, कुर्सी हथियाने या कुर्सी से चिपके रहने की अहर्निश-अटकल, स्वार्थान्धता की पराकाष्ठा, 'आया राम और गया राम' का राजनीति के मंच पर नाटक, चुनावों में करोड़ों रुपए खर्च कर मदिरापान कराके वोट लेना तथा चुन जाने पर काला धन जमा करते की तिकड़म—यही है न आज की राजनीति की भव्य दशा! व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति पर अविश्वास बढ़ रहा है। चतुर्दिक् भय का वातावरण है। कल क्या होगा, कहना मुश्किल है। असन्तोष की ज्वाला से देश में लङ्कादहन हो रहा है। नारे कब तक देश को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनाश के गर्त में गिरने से बचा सकेंगे ? राजनेताओं का स्वार्थ तथा दुलत्तीमार राजनीति देशवासियों को क्या 'मनुष्य' बने रहने का वातावरण प्रदान कर सकती है ? एक पार्टी में दाल न गलने पर अपनी नयी पार्टी बना कर अपनी-अपनी ढपली बजाने वालों से देश-हित की क्या आशा की जा सकती है ? जहाँ व्यक्ति में कुण्ठाएँ हों वहाँ बैकुण्ठ (स्वर्ग) कैसे बन सकता है ? समानता तथा न्याय एवं स्वतन्त्रता की बात मृग-मरीचिका मात्र है। मंत्रीगण तथा जनसाधारण के बीच में जीवन-स्तर की कितनी चौड़ी खाई है ? क्या यह समानता है ? दुर्भाग्य से इस पवित्र देश का न्याय भी राजनीति के हाथों कुर्सी के लिए बिक चुका है।

ऐसी भयावह स्थिति में शिक्षा से प्रकाश की किरण मिलने की आशा होना स्वाभाविक है। दुर्भाग्य से हमारी शिक्षा-पद्धति आज भी इतनी मँहगी है कि जनसाधारण की पहुँच से बाहर है। साधारण परिवार के व्यक्ति को इस कमरतोड़ मँहगाई में दो जून रोटी जुटाना कठिन है। ऐसी स्थिति में कागज और पुस्तकें खरीदना उसके लिए असम्भव होता जा रहा है। पता नहीं, हमारे राजनेताओं को भस्मासुर रोग हो गया है या उनकी क्षुधा कागज को भी खाने लगी है। शिक्षा खर्चीली होने के साथ-साथ दिशाहीन तथा अव्यावहारिक है जिससे धोबी का कुत्ता न घर का रह पाता है न घाट का। शिक्षा व्यक्ति और समाज-सापेक्ष न होने का ही यह दुष्परिणाम है कि आज का युवक बेरोज़गारी का शिकार होकर सड़क पर मारा-मारा फिरता है। समाज की आवश्यकताओं और शिक्षा-नियोजन में यदि तालमेल होता तो शायद देश में 'शिक्षित बेकार' का शब्द सर्वत्र सुनाई न देता। अभाव, कुण्ठा और अज्ञान से संत्रस्त नवयुवक लखनऊ तथा इलाहाबाद जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों को लजाकर मानो आत्महत्या पर उतर पड़ा है। शिक्षा न उन्हें ज्ञान दे पा रही है, न शान्ति और न समाज के साथ एकात्मता की अनुभूति करा पा रही है। शिक्षक से लेकर कुलपति तथा प्रमाणपत्रों तक को पैरों तले कुचल कर आज की शिक्षा में ढला नवयुवक देश के विचारकों को चुनौती दे रहा है। दीक्षान्त समारोहों में वह माँग करता है—'डिग्री नहीं रोजी-रोटी चाहिए'। क्या ऐसे नागरिकों से देश समुन्नत हो सकेगा ? छात्रों का आक्रोश निर्मूल नहीं है। गुणात्मकता की अपेक्षा संख्यात्मक प्रसार देश के साथ विश्वासघात है। जब भाई-भतीजावाद तथा अमर्यादित उपायों से ही सफलता मिलना समाज-धर्म बन गया हो तो अनुशासित रहने एवं अध्ययन-परायण होने से क्या लाभ ? जिस समाज में योग्यता को पद-दलित कर 'सुरक्षित स्थानों' की राजनीति से दलितों के उद्धार का कार्य हो रहा हो वहाँ कर्मठता तथा ईमानदारी कैसे रह सकती है ? जिस देश में लक्ष्मी वाहन पुत्रों का सम्मान हो वहाँ से विद्वान् प्रव्रजन कर विदेश क्यों नहीं जाना चाहेंगे।

अभी तक शिक्षा का कोई राष्ट्रीय लक्ष्य निर्धारित नहीं हो सका। रूस और अमेरिका तथा इंगलैण्ड की शिक्षा-प्रणाली के अन्धानुकरण में ही देश के शिक्षाविद् इतिकर्त्तव्यता का अनुभव करते हैं। नर्सरी शिक्षा की कोई नीति और व्यवस्था नहीं है। प्राइमरी शिक्षा में दुहरी नीति चल रही है। जनसाधारण के लिये गांधी छाप बेसिक शिक्षा का आदर्श दिखाकर बड़े-बड़े गांधीवादी अपने बच्चों को कान्वेण्ट और पब्लिक स्कूलों में पढ़ाते हैं। माध्यमिक स्तर तथा उच्चमाध्यमिक स्तर के सम्बन्ध में कभी ३/२/१ तो कभी ३/३/२ तथा कभी ३/२/२ का फार्मूला लागू होता है। शिक्षा को व्यवसायोन्मुख बनाने की दृष्टि से पिछले दशक में बहूद्देश्यीय विद्यालयों की स्थापना हुई थी तथा उनका श्रेणी निर्धारण हुआ था। आश्चर्य की बात यह है कि उस योजना को कार्यान्वित करने के लिए उस समय प्रशिक्षित अध्यापक नहीं थे। फिर भी योजना लागू कर दी गई। कुछ समय बाद रीजनल कॉलेजों की स्थापना कर बहूद्देश्यीय विद्यालयों के लिए अध्यापक तैयार किये गये। अध्यापक तैयार होने पर वह योजना ठप्प हो गई और बहूद्देश्यीय विद्यालय फिर पुराने ढर्रे पर ला दिये गये क्योंकि योजना असफल रही। इसी प्रकार विश्वविद्यालयीय शिक्षा में स्तर की असमानता, योग्य अध्यापकों का अभाव, छात्र तथा अध्यापकों में सौहार्दता की कमी तथा निजी विद्यालयों के रूप में विशुद्ध दुकानदारी का दृश्य दिखाई पड़ता है। विश्वविद्यालयों का बहुसंख्यक 'दुकानों' पर कोई अंकुश नहीं है जिससे ऐसा लगने लगा है कि इन दुकानों में शिक्षित नवयुवक आज से दस साल बाद प्रार्थनापत्र तथा चिट्ठी लिखने की योग्यता रख पावेंगे—इसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्देह है। इन सब अव्यवस्थाओं को देखते हुए अनेक शिक्षा-आयोग गठित किये गये और उन पर पर्याप्त धन खर्च हुआ। किन्तु परिणाम, खोदा पहाड़ निकला चूहा। आयोगों की कितनी संस्तुतियाँ लागू की गईं? अपनी कुर्सी की रक्षा से समय मिले तब तो शिक्षा के कार्य को सुनियोजित ढंग से चलाया जाय। इसी प्रकार राष्ट्र-भाषा तथा शिक्षण माध्यम की भाषा का प्रश्न द्वि-सूत्रीय-त्रिसूत्रीय आदि राजनीतिज्ञों के स्वार्थजाल में उलझा हुआ है।

देश में व्याप्त अस्थिरता के वातावरण के लिये जहाँ कुछ दैवीय प्रकोप उत्तरदायी हैं वहाँ राजनीतिज्ञों की अदूरदर्शिता भी कम जिम्मेदार नहीं है। विचार-पूर्वक देखा जाय तो सारी बुराइयों की जड़ आज से सत्ताईस साल पहले के निर्णय हैं। देश को शतप्रतिशत शिक्षा प्राप्त होने के बाद स्वतंत्रता मिलती तो प्रजातंत्र अधिक सफल होता। दुर्भाग्य से २६ वर्षों के बाद भी हमारे शासक शतप्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सके। बढ़ती हुई साक्षर अज्ञानता का परिणाम यह हुआ कि राजनीति लोगों का पेशा बन गया है। पेशेवर राजनीतिज्ञ स्वार्थ-साधन से अतिरिक्त क्या कर सकेंगे? इतना ही नहीं, अब तो वंशानुक्रमागत राजनेताओं की परम्परा का विस्तार होने लगा है। राजनीतिज्ञों ने विद्यालयों और विश्वविद्यालयों को सक्रिय राजनीति का गढ़ बनाकर शिक्षा-प्रणाली को दूषित बना दिया है। भारत-सरकार ने धर्म-निरपेक्ष शिक्षा से अविवेकी या यूँ कहिये—'Situational Morality' तथा 'Do the evil but don't be caught' के ज्ञान की प्रखरता से युक्त नवयुवकों को जन्म दिया है जिसका प्रत्यक्ष आये-दिन उत्पातों तथा अनुत्तरदायित्वपूर्ण कृत्यों के रूप में होता रहता है, उसकी अपेक्षा यदि शिक्षा-व्यवस्था राजनीति निरपेक्ष हो सके तो देश का महान कल्याण होगा। किन्तु उससे नारों की राजनीति तथा अव-सरवादी लोगों की वंश-परम्परा को खतरा पैदा हो सकता है। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के छात्र-संघों तथा अध्यापक-परिषदों को नेताओं के हाथ की कठपुतली बनने से रोका जाय। सरकार को अपने मन से यह भ्रम दूर कर देना चाहिए कि शिक्षा अनुत्पादक मुद्दा (Non-Productive Aspect) है अतः उसकी उपेक्षा न कर सर्वाधिक प्राथमिकता देनी चाहिए। देश का भाग्य नवयुवकों के भाग्य से जुड़ा हुआ है। आत्म-ज्ञान के अभाव में मनुष्य शिक्षित पशुमात्र बन सकता है। उसमें समाज के साथ एकात्मकता तथा कर्त्तव्य-निष्ठा की अनुभूति धर्म तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष के बिना कोरी बातों से नहीं हो सकती अतः जहाँ एक ओर शिक्षा व्यवसायोन्मुख हो वहाँ दूसरी ओर मनुष्य को सही अर्थों में सामाजिक प्राणी बनाने के लिये शिक्षा-प्रणाली को आध्यात्मिकता संपृक्त बनाना आवश्यक होगा। शिक्षा संकायों की नियुक्तियों तथा प्रोन्नतियों का मानदण्ड योग्यता ही हो, भाई-भतीजावाद या जाति-वाद नहीं तभी समाजवादी समाज का स्वप्न साकार हो सकेगा तथा शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का आवश्यक अंग बन सकेगी। शिक्षा की उपलब्धियों का राजनीति संवर्द्धन करे। राजनीति और शिक्षा की एक ही दिशा हो—मानव की सुख-शान्ति और समृद्धि।

शिक्षा के साथ-साथ देश की राजनीति के स्तर में भी गिरावट परिलक्षित हो रही है। विचारकों को चिंता होने लगी है कि देश में प्रजातंत्र समाप्त न हो जाय। संविधान में इतने अधिक संशोधन अन्य किसी देश में नहीं हुए। सर्वप्रथम 'आये राम और गये राम' पर संवैधानिक रोक लगानी होगी। दूसरे, चुनावों में सभी दलों को समान धनराशि तथा समान प्रचार-साधनों की सामूहिक कोष से व्यवस्था करनी चाहिए जिससे काला-बाजारी तथा कुर्सी पकड़ चोरी बन्द हो, तभी कोई दल देश को भ्रष्टाचार विहीन स्वच्छ प्रशासन दे सकेगा। तीसरे, अल्पमत और बहुमत तथा 'सुरक्षित' एवं विशे-षाधिकार जैसे अर्थहीन विशेषणों को जितनी जल्दी समाप्त कर दिया जाय उतना ही अच्छा है। आगे बढ़ने का आधार कार्यदक्षता और योग्यता हों। अभिजा-त्यता या अनुसूचितता को उत्कर्ष का आधार न बनाया जाय। पेशेवर राजनीतिज्ञों से समाज जितनी जल्दी नजात पाये उतना ही श्रेयस्कर होगा। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सरकार बनाने का अधिकार अल्पमत या बहुमत के आधार पर न होकर मिले हुए वोटों की प्रतिशतता के आधार पर हो जिस दल को जितने प्रतिशत वोट मिले हों उसका उतने प्रतिशत ही सरकार में प्रतिनिधित्व हो। तभी देश में भेड़ चाल की राजनीति के स्थान पर कुशल, कर्त्तव्यपरायण तथा उत्पादक शिक्षित राजनीतिज्ञ हो सकते हैं। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे नवीनतम प्रकाशन

Municipal Administration in India	Dr. A. Avasthi	40.00
Administrative Reforms Comm.	Dr. Maheshwari	45.00
Study of Public Administration in India	Dr. Maheshwari	25.00
Panchayati Raj. Administration in Rajasthan	Dr. Iqbal Narain	25.00
Public Administration	Avasthi & Maheshwari	16.50
पाश्चात्य राजनीतिक विचार	पी० शरण	11.00
India's Empire of Mind	S. B. Mookherji	15.00
Rajasthan Studies	Dr. G. N. Sharma	20.00
अकबर महान्	बी० एन० लूनिया	20.00
भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास	,,	10.00
प्राचीन भारतीय संस्कृति	,,	16.00
इति० और राजनीतिशास्त्र के निबन्ध	एल. पी. शर्मा	5.00
इंगलैण्ड का इतिहास	,,	11.00
आधुनिक भारत	,,	12.50
भारत में मुगल साम्राज्य	,,	11.00
भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास	एस. आर. शर्मा	11.00
भारत में मुगल साम्राज्य	,,	17.00
आधुनिक योरोप	बी. आई. पाल	7.00
आधुनिक योरोप १	बी. एन. मेहता	8.50
आधुनिक योरोप २	,,	9.50
खलजी वंश का इतिहास	डॉ. लाल	8.00
प्राकृतिक भूवृत्त	सैलिसबरी	30.00
सोवियत रूस का भूगोल	श्रीवास्तव एवं शर्मा	15.00
मानव भूगोल	मेहरोत्रा एवं सक्सेना	10.00
मानचित्र चित्रण एवं प्रयो. भूगोल	सक्सेना	14.00
Principles of Economics	Dr. Seth	24.00
अर्थशास्त्र के सिद्धान्त	,, ,,	24.50

An Introduction to Keynesian Economics (1974 Edition)	Dr. M. L. Seth	14.00
Elementary Math for Use in Eco.	Mehta & Madnani	10.00
अल्प-विकसित अर्थ व्यवस्था की समस्याएँ	डॉ० नाग	18.00
मौद्रिक अर्थशास्त्र	डॉ. टी. टी. सेठी	16.00
मुद्रा एवं बैंकिंग-राजवित्त सहित	,,	19.00
भारत में आर्थिक नियोजन	डॉ. भण्डारी एवं जौहरी	21.00
भारतीय अर्थशास्त्र	नाथूरामका एवं देराश्री	16.00
अनुसन्धान परिचय	राय एवं भटनागर	12.50
सामान्य मनोविज्ञान	डॉ. जे. डी. शर्मा	14.00
सामान्य-मनोविज्ञान परिचय	शर्मा एवं वाधवा	9.00
मनोविज्ञान का इतिहास	डॉ. रामनाथ शर्मा	8.00
प्रयोगात्मक मनोविज्ञान	अग्रवाल एवं भटनागर	8.00
Education in Rajasthan Trends & Task	Dr. C. S. Bhatt	15.00
Methods of Teaching English in India	K. L. Sharma	10.00
Essential Problems of Indian Education	Dr. Lulla & Murty	12.50
शैक्षिक प्रशासन एवं विद्यालय संगठन	राय	5.00
शिक्षा सिद्धान्त	क्षत्रिया एवं अरोरा	9.00
शिक्षा में मापन और मूल्यांकन	गुप्ता एवं भट्ट	8.50
भारतीय शिक्षा की समस्याएँ	पाण्डेय, आर्य एवं सिंह	15.00
देश विदेश में शिक्षा	,,	6.00
अच्छी पाठ योजना	बी. एन. शर्मा	5.00
हिन्दी शिक्षण	,,	8.00
शिक्षा मनोविज्ञान	शर्मा एवं राय	16.00
मातृकला एवं शिशु पालन	सुखिया	5.00
भारतीय दर्शन	डॉ. वी. पी. वर्मा	10.00
पाश्चात्य दर्शन का आधुनिक युग	डॉ. तिवारी	7.00
सामाजिक व्यवस्था	गुप्ता एवं जैटली	25.00

लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, हास्पिटल रोड, आगरा–३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंजिल की खोज में बहकते कदम

श्री सुरेश भटनागर
प्राध्यापक, शिक्षा-विभाग, डी० ए० वी० कालेज, देहरादून

नेपोलियन बोनापार्ट ने कहा था—"ईश्वर पर विश्वास रखो परन्तु अपने बारूद को सूखा रखो, क्योंकि गीले बारूद को ईश्वर उपयोगी नहीं बना सकता।" आज के बदलते समाज, समाज की परिवर्तनशील शक्तियों पर पूर्णरूपेण नेपोलियन की बात लागू होती है। आज की शिक्षा है बारूद और आज की राजनीति है ईश्वर। आज शिक्षा का बारूद इतना गीला हो गया है कि समय के साथ उसे बदला नहीं जा सकता। आज की राजनीति ईश्वर स्वरूप होते हुए भी उसे सुखा नहीं सकती। इसी गीले बारूद के कारण आज का शिक्षक, आज का शिक्षार्थी, आज के समाज को वांछित दिशा प्रदान करने में असमर्थ है। आज की भ्रष्ट और त्रस्त राजनीति ने जीवन-मूल्यों को बदल दिया है, मानव-मूल्यों की परिभाषा बदल गयी है; राष्ट्रीय मूल्यों को स्वार्थ के दानव ने लील लिया है।

किसी भी राष्ट्र का जीवन उसकी शिक्षा-प्रणाली द्वारा अनुप्राणित होकर जीवन प्राप्त करता है। प्राणवन्त जीवन का मूलाधार प्राणवान शिक्षा-प्रणाली है जो समाज तथा राष्ट्र के जीवन को गति देती है और समाज तथा राष्ट्र कें चरित्र का निर्माण करती है। शिक्षा-प्रणाली का आधार होते हैं—राष्ट्र के उद्देश्य; जिनकी पूर्ति के लिये राज्य की शासन-व्यवस्था की ईमानदारी, क्रियाशीलता, सक्षमता उत्तरदायी है। ये सभी तथ्य शिक्षा-प्रणाली के माध्यम से राष्ट्र की जीवन-प्रक्रिया के रथ को आगे बढ़ाते हैं।

समय ! कितना बदलाव ! कितना भटकाव—ये तथ्य हैं किसी भी राष्ट्र के जीवन को समुन्नत करने के; राष्ट्र और व्यक्ति एक-दूसरे की पूरक इकाइयां हैं और इनमें असंतुलन होने से व्यक्ति और राष्ट्र, दोनों ही धराशायी हो जाते हैं। समय के साथ संतुलन अनिवार्य है, समायोजन अपरिहार्य है, समय के बदलाव से भटकाव नहीं होना चाहिए।

स्वतंत्र भारत का शैक्षिक इतिहास इस बात का प्रमाण है कि समय के बदलने से भटकाव पैदा हुआ है। अनिश्चय की स्थिति में राष्ट्र का जीवन एक चौराहे पर जा खड़ा हुआ है, तब से लेकर आज तक उसी चौराहे पर मंजिल की खोज में खड़ा है हतप्रभ ! निश्चेष्ट !! निष्प्राण !!!

हमारे संविधान ने शिक्षा को राष्ट्र का नहीं, राज्य का विषय ठहराया, यह एक ऐसी विडम्बना थी जिसका खामियाजा नई पीढ़ी को भुगतना पड़ रहा है। सामान्य एवं उच्च शिक्षा में अप्रत्यक्ष दायित्वों को अपने ऊपर ओढ़ना ठीक वैसा ही है जैसे परिस्थितियों से पलायन करना। संविधान की धारा ४५ की घोषणा अब मात्र घोषणा ही सिद्ध हो रही है। लक्ष्य पूर्ति का प्रश्न अब कहाँ उठता है? इसी प्रकार संविधान की दूसरी सूची, सातवीं अनुसूची के ग्यारहवें अंकन में शिक्षा को (विश्वविद्यालय सहित) राज्य का विषय माना गया है।

शिक्षा की राजनीति—यों शिक्षा की राजनीति का आधार हमारा स्वनिर्मित स्वारोपित संविधान है जिसने राष्ट्रीय चरित्र की उपेक्षा की है और इसी के सहारे तथाकथित राजनीतिज्ञों ने राष्ट्र के भविष्य के साथ खिलवाड़ किया है। इन राजनीतिज्ञों ने भौतिक विकास पर अपनी समस्त शक्तियों का आरोपण कर दिया परन्तु मूल में ये मट्ठा देते रहे। मूल में मट्ठा देने का परिणाम स्पष्ट है—बांधों में दरारें पड़ीं, बिजली का जेनरेटर खामोश रहा, रेल का पहिया जाम हो गया, सड़कें पाताल में उतरने लगीं और आकाश-यान धराचारी हो गये। ऐसा क्यों? इसलिये कि शिक्षा का आधार खोखला रहा है। समूचे राष्ट्र के निर्माण के लिये नींव का नक्शा बनाने की दूरदर्शिता हमारे राजनेताओं में नहीं रही।

प्रत्येक राज्य (स्टेट) की शिक्षा-व्यवस्था, शिक्षा-प्रक्रिया इतनी भिन्न रही है कि राष्ट्रीय एवं भावात्मक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकता के बजाय विलगता आती रही। तामिलनाडु में हिन्दी विरोधी आन्दोलन में भाग लेने वालों को विशेष पेंशन देना इसी राष्ट्रीय विघटन का परिचायक है। आज एक प्रदेश के व्यक्ति को दूसरे प्रदेश में सेवा या व्यापार करने में कठिनाई अनुभव होती है। क्षेत्रीय असंतुलन (रीजनल इम्बैलेन्स) ने यह सिद्ध कर दिया है कि संविधान में शिक्षा को राज्य का विषय घोषित करना राष्ट्रीय जीवन में 'स्लो प्वाइजनिंग' करना रहा है।

शैक्षिक राजनीति : राजनीतिक अलगाव—शिक्षा-प्रणाली तथा राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियों, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक वैविध्य ने शैक्षिक राजनीति को अलगाव की राजनीति के रूप में विकसित किया है। आज उसी आधारभूत अलगाव के कारण मनुष्य के दिमाग में असंतोष भर गया है। बेचैनी से वह परेशान है। क्या ही अच्छा होता कि समूचे राष्ट्र में शिक्षा की एक ही धारा प्रवाहित होती। इससे राष्ट्र एवं समाज में चेतना का विकास होता। संकीर्ण राजनीतिक स्वार्थों ने राष्ट्र की इस आवश्यकता पर ध्यान देना आवश्यक नहीं समझा। परिणाम सामने है। अशांत मन जब विद्रोह का स्वर फूंकता है तो उसे 'होश और जोश में संतुलन रखने' की सलाह दी जाती है और यह उन राजनेताओं पर लागू नहीं होती।

शिक्षा को आज राजनीतिक क्षेत्र में वोट खींचने का साधन मान लिया गया है। इसके शैक्षिक वर्ग राजनीतिक अलगाव में फंस गया है। वह उलझ गया है। क्यों नहीं इस ओर ध्यान दिया जाता?

सभी राजनीतिक दल आज शिक्षा में परिवर्तन के नारे आवाज की बुलन्दी से लगा रहे हैं। नारे लगाने वालों के ये दल राष्ट्र चेतना से शून्य हैं। इनमें सत्तारूढ़ दल भी सम्मिलित है। इसने हाल ही के चुनाव में छात्र-नेताओं को जो गलत, अदूरदर्शी आश्वासन दिये, वे उन्हीं के गले की फांस बन गये।

अध्यापक : निरीहता का प्रतीक—सम्पूर्ण शैक्षिक राजनीति में अध्यापक की स्थिति दयनीय तो है ही पर शोचनीय भी है। ब्यूरोक्रेट, पॉलीक्रेट और छात्रों के मध्य संतुलन बनाये रखने वाली कड़ी को निकाल दिया गया है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एक नये विश्वविद्यालय ने छात्र-आन्दोलन के कारण स्थगित परीक्षाओं के पुनर्निर्धारण के लिए उन अध्यापकों से परामर्श करना भी उचित नहीं समझा, अन्ततः जिन्हें परीक्षाओं का आयोजन करना है।

विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में अलगाव की स्थिति ने सामाजिक अन्तर (सोशल डिफरेन्स) को और भी बढ़ाया है। इससे किसी भी प्रकार संतुलन बनाये रखना संभव नहीं रहा है। समान योग्यता के लिए समान वेतन, समान कार्य के लिए समान वेतन जैसे आदर्श धरे रह गए हैं। सरकार द्वारा घोषित नवीन वेतनमानों में यही धारणा व्याप्त है। कोठारी कमीशन ने इसी तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा है—"यह हमारा दुर्भाग्य है कि कुल मिलाकर हमारी स्कूल-प्रणाली में राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय चेतना की भावना विकसित करने की कोई ठोस परम्परा नहीं है।" राष्ट्रीय चेतना को विकसित करने एवं सांस्कृतिक अवबोध एवं मूल्यांकन हेतु दृढ़ एवं प्रेरणापूर्ण निष्ठा की आवश्यकता है।

राजनीति की शिक्षा ! अनौपचारिक किन्तु सशक्त—अध्यापकों का काम अब कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्नों तथा उनके उत्तरों को बताकर पाठ्यक्रम (कोर्स) समाप्त करना मात्र रह गया है। वह एक नौकर है अदना सा, जिसे एक ओर अपने आकाओं के कोप का भाजन होना पड़ता है तो दूसरी ओर अपने छात्रों का। सामाजिक चरित्र के विघटन का उदाहरण देने वाली अनेक घटनाएँ नित्य ही प्रकाश में आती रहती हैं। आज राजनीतिक दलों ने छात्रसंघों को विध्वंसात्मक शक्तियों के रूप में गठित किया है। क्या युवक कांग्रेस, क्या विद्यार्थी परिषद्, क्या युवजन सभा, क्या युवक क्रांति दल, क्या स्टूडेण्ट फेडरेशन, क्या हिन्दू युवक सभा, सभी राजनीतिक दल छात्र-दलों के बिल्ले लगाकर विद्यामन्दिरों में राजनीतिक दंगल कराते रहते हैं। इनको सम्बन्धित राजनीतिक दलों से पोषण मिलता है। दिल्ली विश्वविद्यालयों के छात्रसंघ के चुनावों में केन्द्रीय स्तर के मन्त्री, एम० पी० तथा अन्य राजनीतिक दल पूर्ण राजनीतिक निष्ठा के साथ प्रतिष्ठा के प्रश्न को हल करना चाहते हैं, करते हैं। युवा-शक्ति का इससे अधिक दुरुपयोग और क्या होगा?

उत्तर प्रदेश के नव-निर्वाचित मुख्यमन्त्री ने चुनाव से पूर्व जोश में कहीं पर छात्र-नेताओं को यह आश्वासन दे दिया था—'छात्रों को परीक्षा के बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोमोशन दे दिया जायेगा। इसका परिणाम है—उत्तर प्रदेश के अधिकांश विश्वविद्यालयों की परीक्षायें जून तथा जुलाई में हो रही हैं। इससे छात्र किस राजनीतिक पाठ को सीख रहे हैं, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

आज के इस माहौल का तकाजा है—हम छात्रों को राजनीति में न घसीटें, उनकी सर्जनात्मक शक्तियों का उपयोग राष्ट्र चेतना के निर्माण हेतु करें, परन्तु यह प्रश्न अभी तक अनुत्तर है, इसके लिए राजनेताओं को नकल करने का मसाला अभी तक नहीं मिला है।

राष्ट्रीय शैक्षिक राजनीति में शिक्षामन्त्री का पद कैबिनेट स्तर का नहीं होता। शिक्षा, जो राष्ट्र-निर्माण का मूलाधार है, उसके नियोजनकर्त्ता को उसका वांछित पद क्यों नहीं दिया जाता, यह तथ्य इस बात को बतलाता है कि हमारे प्रशासक, हमारे विधायक, हमारे राष्ट्र के साथ धोखा करते रहे हैं। राज्यों के शिक्षा-मन्त्रियों की स्थिति तो और भी बदतर है। समाज-सेवियों व उद्योगपतियों द्वारा संचालित विद्यालयों एवं शिक्षा-संस्थाओं में उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती जैसी है। प्रबन्धकों की चाँदी की फसल कटती है। शिक्षा के क्षेत्र में भ्रष्टाचार आज की शैक्षिक राजनीति की देन है।

अतः यदि हमें राष्ट्र चेतना के सन्दर्भ में सोचना है तो यह जरूरी है कि हम संविधान को बदलें। संविधान की वर्तमान शैक्षिक धाराओं के होते हुए हम किसी भी प्रकार की स्वस्थ शिक्षा-व्यवस्था की कल्पना नहीं कर सकते। अतः हमारा ध्येय होना चाहिए—एक राष्ट्र, एक विधान, एक शिक्षा-प्रणाली; इसमें निजी उपक्रम के लिए अब कोई गुंजायश नहीं होनी चाहिए। तभी हम मंजिल तक पहुँच सकते हैं, अन्यथा भटकते ही रहे हैं, भटकते ही रहेंगे। ●

[पृष्ठ ४८ का शेषांश]

शिक्षण-संस्थाओं का वातावरण दूषित होता है और व्यर्थ की मारधाड़ भी होती है। अभी हाल ही में विश्वविद्यालय के कार्यकलापों में छात्रों के प्रतिनिधित्व की बात उठाई जाती रही है। यह भावना भी राजनीति से प्रेरित है क्योंकि इसके द्वारा होशरहित विद्यार्थियों के जोश का नाजायज फायदा उठाने की बात सोची जा रही है। इससे राजनीतिज्ञ ही अपना उल्लू सीधा करेंगे। जिन विद्यार्थियों को आज विश्वविद्यालय के प्रशासन में हाथ बँटाने को प्रोत्साहित किया जाता है वे ही कल परीक्षा बोर्ड व प्रश्न-चयन बोर्ड में अपना स्थान माँगने लगेंगे। इससे भ्रष्टाचार फैलेगा कि सदाचार! अभी तो हमारा नैतिक स्तर बहुत नीचे है।

शिक्षा एक पवित्र वस्तु है और शिक्षण-संस्थाएँ मंदिर तुल्य हैं। उनके वातावरण को दूषित करना वांछनीय नहीं है। छात्रों में बढ़ते असन्तोष का कारण राजनीतिक दखलन्दाजी ही है। मैं यह नहीं कहता कि इसमें सारा दोष विद्यार्थियों का ही है। शिक्षक तथा प्रशासक भी राजनीतिज्ञों से प्रेरणा लेकर मनमानी करते हैं। जिस शिक्षक या प्रशासक पर जितने अधिक राजनीतिज्ञों का हाथ रहता है, वे उतनी ही मनमानी करते हैं। किसी खास दल से अनुप्राणित कुलपति, प्राचार्य या प्रधानाध्यापक अपने मत को विद्यार्थियों पर लादकर असन्तोष की भावना की वृद्धि ही करते हैं। पंडित मदनमोहन मालवीय के योगदान से फलने-फूलने वाला काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आज कुमार्ग दर्शन के कारण किस स्थिति में पहुँच गया है। क्या यह दुर्दशा दलगत राजनीति के प्रवेश के कारण नहीं हुई है। यदि राजनेता सेवा एवं सुधार की भावना को लेकर शिक्षण-संस्था में प्रवेश करें तो कल्याण ही कल्याण है क्योंकि आखिर वे भी तो हाड़ माँस के ही पुतले हैं परन्तु जब उनका उद्देश्य शिक्षण-संस्थाओं को अपना अखाड़ा बनाने तथा विद्यार्थियों को अपना दलाल बनाने का हो जाता है तो सब किये-कराये पर पानी फिर जाता है। इसलिए जहाँ व्यक्ति के रूप में उनका योगदान शिक्षा-नीति-निर्धारण, संचालनादि में लाभकारी है, वहीं दल के रूप में अनिष्टकारी। मेरी क्षुद्र मति के अनुसार शिक्षा को दलगत राजनीति से बचाने के लिए जनमानस को शिक्षित करने की जरूरत है तभी शिक्षा से असन्तोष का वातावरण समाप्त होगा और स्वस्थ दिशा का निर्माण होगा। शिक्षा जो पहले धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की साधिका थी आज बाधिका बन रही है। राजनेता यदि अपने प्रशासनिक अनुभव से शिक्षण-संस्थाओं को लाभ पहुँचाएँ तो 'सोने में सुहागा' की कहावत चरितार्थ होगी अन्यथा तो सुधार की कोई गुंजाइश नहीं। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी चिर प्रतीक्षित पुस्तक का नवीन संस्करण

पूर्णतः संशोधित एवं परिमार्जित सातवाँ संस्करण

प्रस्तुत पुस्तक विभिन्न विश्वविद्यालयों की बी० एड० परीक्षा के नवीन पाठ्यक्रमानुसार प्रश्नोत्तर शैली में तैयार की गई है।

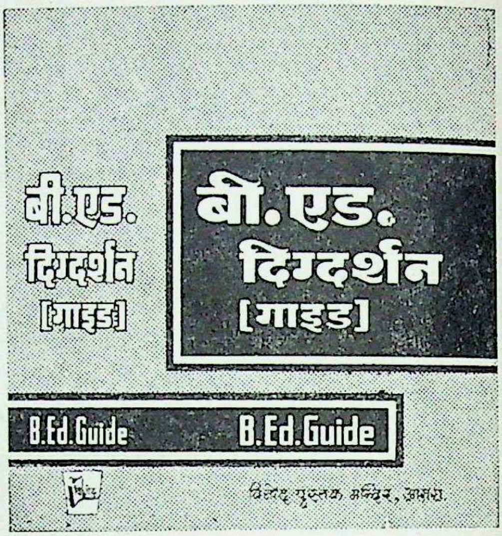

विवेचित विषय—

- शिक्षा सिद्धान्त
- शिक्षा मनोविज्ञान
- भारतीय शिक्षा का इतिहास और समस्याएँ
- पाश्चात्य शिक्षा का इतिहास
- विद्यालय प्रशासन, संगठन और स्वास्थ्य विज्ञान
- शिक्षण कला

प्रमुख विशेषताएँ

- प्रस्तुत संस्करण को पूर्णतः संशोधित, परिमार्जित एवं अधुनातन सामग्री से सुसज्जित किया गया है।
- यह पुस्तक अन्य प्रकाशित अथवा प्रचलित पुस्तकों की भाँति विषय को जटिल एवं दुरूह नहीं बनाती है।
- इसमें विषयों का विस्तार एवं आकार विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार दिया गया है। जटिल एवं सूक्ष्म विषयों का प्रतिपादन, सरल, स्पष्ट और वैज्ञानिक ढंग से सरल भाषा में किया गया है।
- पाश्चात्य आंग्ल तथा अमरीकी शिक्षा की विशेषताओं पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है।
- शिक्षा प्रशासन तथा विद्यालय संगठन का उल्लेख करने के साथ-साथ विभिन्न प्रदेशों के (उत्तर प्रदेश, राजस्थान, तथा मध्यप्रदेश) शिक्षा प्रशासन की भी व्याख्या की गई है।
- पुस्तक के अन्त में विभिन्न विश्वविद्यालयों का बी० एड० का पाठ्यक्रम भी दिया गया है।

सम्पादक—
भाई योगेन्द्रजीत
दिनेशचन्द्र भारद्वाज
विनोद कुमार अग्रवाल

सजिल्द संस्करण

मूल्य २८.००

विनोद पुस्तक मन्दिर
डा. रांगेय राघव मार्ग, आगरा-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा पर राजनीति का प्रभाव

मानस केसरी शिरोमणि सिंह कुशवाह
मडल—विदिशा (म० प्र०)

'साहित्य-परिचय' के "शिक्षा और राजनीति" विशेषाङ्क के संदर्भ में हम भले ही शिक्षा को राजनीति के साथ संयुक्त करने का प्रयास करें, किन्तु यह बीसवीं शताब्दी के अतिम दशाब्दियों का एक कठोर यथार्थ है कि राजनीति न केवल शिक्षा वरन् जीवन के प्रत्येक अंग से स्वभावतः ही जुड़ गई है। जब राजनीति ने जीवन के विविध पहलुओं से सम्पर्क स्थापित किया तो कदाचित् इतना हो-हल्ला नहीं मचा किन्तु जब राजनीति ने दो कदम आगे बढ़कर शिक्षा से आँखें चार कीं तब एकदम जैसे सारे संसार में वा-वेला-सा मच गया। माध्यमिक विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय तक राजनीति के क्रीड़ास्थल बन गये। यह सब हमारे देश में ही हुआ हो ऐसी बात नहीं, कमोवेश संसार के सभी देशों में शिक्षा राजनीति से निर्लिप्त नहीं रह पाई, और कहीं-कहीं तो शिक्षा राजनीति के हाथों बुरी तरह पिट भी गई है।

स्वतन्त्रता से पूर्व देश के बड़े-बड़े नेताओं के अनुरोध पर छात्रों ने शालाओं एवं महाविद्यालयों को खाली कर दिया और वे सड़कों पर स्वतन्त्रता की ध्वजा फहराते हुए निकल पड़े। किन्तु उस समय इन छात्रों के समक्ष एक महान् लक्ष्य था— देश को विदेशी सत्ता से मुक्त कराने का। अतः तात्कालिक छात्र-आन्दोलन का प्रभाव विदेशी सत्ता की जड़ें खोखली करने में ही देखा गया। भारतीय जनजीवन प्रायः इनसे अछूता ही रहा।

दिग्गज नेताओं ने निःसंकोच होकर देश की इस युवा शक्ति का मनचाहा उपयोग किया। ऐसा करते हुए न तो छात्रों, न ही अभिभावकों तथा नेताओं के मन में किसी प्रकार की झिझक उत्पन्न हुई, क्योंकि यह वस्तुतः एक महान् अनुष्ठान था। यह एक अमोघ साधना थी जो भारत-माता की परतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए अपरिहार्य थी।

किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारे नेताओं के लक्ष्य एकाएक बदल गए। छात्रों का वह अनुष्ठान एवं उनकी वह अमोघ साधना अब कम-से-कम सत्तारूढ़ नेताओं के लिए तो व्यर्थ का उन्माद प्रतीत होने लगी। यही कारण था कि पिछले कुछ वर्षों से विशेष छात्रों का राजनीति में प्रवेश निषिद्ध किया जाने लगा। इसके कदाचित् मुख्यतः दो कारण रहे—पहला तो यह कि स्वतन्त्रता के पश्चात् सत्तारूढ़ दल देश के विकास-कार्यों में इतना तल्लीन हो गया कि उसे छात्रों के दिशा-बोध जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर ध्यान देने का समय ही नहीं मिला, या उसने यह अधिक आवश्यक नहीं समझा। दूसरा कारण मेरी दृष्टि में कदाचित् यह है कि छात्रों के ओज को रचनात्मक दिशा कैसे प्रदान की जावे, इस ज्वलंत समस्या का निदान संतोषप्रद ढंग से नहीं हो सका। यही कारण है कि स्वातन्त्र्योत्तर भारत में युवा छात्रों की जो भूमिका रही है, उसे अधिक सराहनीय दृष्टि से नहीं देखा गया। इस तरह सोचने पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति तो कुछ संतोषजनक प्रतीत होती है किन्तु महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों की ओर दृष्टिपात करने पर हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का खोखलापन साफ जाहिर हो जाता है।

गत कुछ वर्षों में केन्द्रीय शासन के कुछ तथाकथित शिक्षाविदों ने जिस प्रकार शिक्षामंत्री के पद से असफल होकर पलायन किया है, उससे भारतीय जनमानस में शिक्षा को लेकर निराशा ही अधिक फैली है। आज स्थिति इतनी दयनीय है कि हमारे शिक्षा-मंत्रालय में कैबीनेट स्तर का शिक्षामंत्री भी फिलहाल नियुक्त नहीं हो पाया है। इसी प्रकार मध्य प्रदेश शासन ने गत एक वर्ष में शिक्षा सचिव के पद पर लगभग चार बार नियुक्तियाँ की है और वह किसी से भी पूर्णतः संतुष्ट

[शेष पृष्ठ ९३ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे शिक्षा एवं मनोविज्ञान के श्रेष्ठ प्रकाशन

Comparative Education	S. P. Chaube	22.50
Education in U. S. A.	,,	10.00
Modern Educational Psychology	,,	18.00
Some Foundations & Guidelines on Modern Education	,,	12.50
Recent Educational Philosophies In India	,,	10.00
Some Great Western Educators	S. P. Chaube	7.50
History of Indian Education	P. L. Rawat	12.50
Educational and Secondary School Administration	Gaind and Sharma	12.00
Educational Theories and Modern Trends	Gaid and Sharma	12.00
Teaching English as a Second Language	Gaind and Sharma	8.00
Principles of Education	R. S. Pandey	8.00
Programme Planning and Administration in Extension	O. P. Dahama	4.00
Extension Education and Training Extension Workers and Teachers	O. P. Dahama	3.50
Community Development	,,	3.00
Educational Psychology as Applied to Extention and Community Development	O. P. Dhama	3.00
Teaching Agriculture in India	A. U. Patel and R. P. Singh	12.00
The Structural Approach to the Teachiug of English	Srivastava	6.50
नवीन शिक्षा-शास्त्र	सरयूप्रसाद चौबे	२०.००
भारतीय शिक्षा के कुछ पक्ष	सरयूप्रसाद चौबे	३.५०
अध्यापन प्रणालियां प्रदर्शिका और विधान	,,	७.५०
विद्यालय संगठन तथा स्वास्थ्य शिक्षा	,,	५.००
विद्यालय संगठन, स्वास्थ्य शिक्षा तथा सामुदायिक संगठन	,,	६.००
भारतीय और पाश्चात्य शिक्षाशास्त्री	,,	५.००
शिक्षा मनोविज्ञान के तत्व	सरयू प्रसाद चौबे	३.००
शिक्षा के मूल तत्त्व	सरयू प्रसाद चौबे	२.५०
भारतीय शिक्षा का इतिहास	प्यारेलाल रावत	१४.००
भारतीय शिक्षा का इतिहास तथा आधुनिक शिक्षा शास्त्री	सहगल एवं निगम	८.००
आधुनिक शिक्षा शास्त्री	मनमोहन सहगल	५.००
शैक्षिक एवं माध्यमिक शिक्षालय व्यवस्था	डी. एन. गैंड एवं आर. पी. शर्मा	१०.००
शिक्षा दर्शन तथा आधुनिक प्रवृत्तियाँ	,,	१०.००
शैक्षिक सांख्यिकी	डी. एस. रावत	८.००
हिन्दी शिक्षण	रजनीकांत लहरी	[प्रेस में]
नवीन शिक्षा सिद्धान्त	रामशकल पाण्डेय	६.००
वैज्ञानिक उद्यान शास्त्र	एस. डी. श्रीवास्तव	५.५०
बी. टी. सी. प्रदर्शिका (पाठ्य पुस्तक रूप में)	सरयू प्रसाद चौबे	१५.००
मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय	रामशकल पाण्डेय	६.००
भूगोल अध्यापन	मदनलाल जैन	५.००
शिक्षा और शिक्षण सिद्धान्त	,,	३.५०
पाठशाला प्रबन्ध	,,	३.५०
सरल शिक्षा मनोविज्ञान	मदनलाल जैन	३.००
भारत में शिक्षा-इतिहास, समस्याएँ एवं प्रयोग (प्रश्नोत्तर शैली में)	दिनेशचन्द्र भारद्वाज	१०.५०
शिक्षा मनोविज्ञान (प्रश्नोत्तर में)	,,	८.५०
शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त (प्रश्नोत्तर में)	,,	७.००
विद्यालय प्रशासन, संगठन तथा स्वास्थ्य शिक्षा (प्रश्नोत्तर शैली में)	डी. सी. शर्मा	१०.००

रामप्रसाद एण्ड सन्स

हास्पिटल रोड, आगरा-३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजवाद एवं शिक्षा

डॉ० सूर्यनाथ सिंह
रीडर, शिक्षा विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–५

समाजवाद की प्रकृति साम्यवाद तथा लोकतन्त्र से भिन्न होती है। साम्यवाद वैयक्तिक स्वाधीनता की अपेक्षा सामाजिक नियन्त्रण एवं समानता तथा लोकतंत्र व्यक्ति-स्वातन्त्र्य एवं विविधता पर बल देता है। समाजवाद इन्हीं दो अतिवादों में संतुलन स्थापित करता है। वह दलीय तानाशाही तथा आर्थिक शोषण का विरोधी है। उसमें विचार-स्वातन्त्र्य एवं अभावों से मुक्ति में प्राथमिकता का द्वन्द्व नहीं उठता। इसकी स्थापना तो सरल है किन्तु स्थायी बनाये रखना कठिन होता है। अतः ऐसे राज्यों में, जिनमें भारत भी है, शिक्षा को एक नवीन आयोजना करनी पड़ेगी जिससे नागरिक इस जीवन-प्रणाली को अंगीकृत कर सकें। प्रस्तुत निबन्ध में इसी योजना की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

समाजवाद मनुष्य एव उसकी सामाजिक स्थिति को किसी दैवी व्यवस्था द्वारा विनिर्मित न मानकर सामाजिक एवं आर्थिक कारकों से नियंत्रित मानता है। सामाजिक विकास के अध्ययन तथा व्याख्या की उसकी एक प्रणाली है जिसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहते हैं। इसी के अनुसार इतिहास की व्याख्या की जाती है। भारत में इस प्रकार के चिन्तन का सर्वथा अभाव रहा हो ऐसी बात नहीं है; किन्तु यह भी सत्य है कि इस दर्शन के सामाजिक पक्ष पर यहाँ पर्याप्त बल नहीं दिया गया। हमने अपने दर्शनों की आदर्शवादी और व्यक्तिवादी व्याख्या ही अधिक की है। दर्शन तो परिस्थितिजन्य है। देश-काल उसे प्रभावित करता है। फलतः हमें अपने प्राचीन दशन की नवीन व्याख्या कर उसे समयोचित बनाना चाहिए, जिससे वह जीवन को गति एवं प्रेरणा दे सके। लोकायत, बौद्ध, न्याय एवं वैशेषिक दर्शनों में द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विचारधारा के बीज निहित हैं। हमें उनकी केवल नवीन व्याख्या करनी है। समय आ गया है जब हमें इस कार्य को हाथ में लेना चाहिए। अब हमारी शिक्षा-संस्थाओं को अपने दर्शन एवं जीवन-प्रणाली की ऐसी व्याख्या करनी पड़ेगी जिससे प्रगति को प्रेरणा मिले। इससे हमारे छात्र सामाजिक विकास की वास्तविक प्रविधि से परिचित हो सकेंगे। उन्हें दैवी व्यवस्था के स्थान पर मानवीय व्यवस्था के महत्त्व का ज्ञान होगा।

समाजवादी व्यवस्था में श्रम का वास्तविक मूल्यांकन होता है। उसे केवल वस्तुओं तथा सेवाओं के क्रय करने का साधन ही नहीं समझा जाता। एक सामाजिक शक्ति के रूप में उसकी भूमिका का आदर किया जाता है। पूँजीवाद श्रम की इसी नियामक तथा सर्जक शक्ति का अवमूल्यन कर उसे क्रय-विक्रय की वस्तु बनाकर सत्ता से पृथक् कर देता है। इससे समाज में श्रम का स्तर गिर जाता है। वह अवकाश प्राप्त वर्ग को महत्त्व देता है। इस दृष्टि से तो भारत की स्थिति और भी बुरी है। हिन्दू समाज में श्रमिक, शूद्र तथा अस्पृश्य समझा जाता है। अन्य धर्मावलम्बी भी उसे सम्मान नहीं देते। जब तक यह दृष्टिकोण रहेगा तब तक राष्ट्र के कोटि-कोटि श्रमिक द्वितीय श्रेणी के नागरिक बने रहेंगे। उन्हें सामाजिक सम्मान प्राप्त नहीं होगा। हमें अपनी शिक्षा-योजना द्वारा यह स्थिति बदलनी होगी। अतः आवश्यक है कि हमारी शिक्षा-संस्थाएँ सामाजिक एवं उत्पादक श्रम का केन्द्र बनें। प्रत्येक स्तर पर शिक्षा एवं श्रम का अन्तर्गठन हो। वर्ग एवं वर्ण के स्थान पर समान सामूहिक श्रम की व्यवस्था हो। उसके वैयक्तिक मूल्यांकन के स्थान पर सामूहिक मूल्यांकन की प्रथा प्रारम्भ हो। इससे वह वैयक्तिक स्वार्थपरता का साधन नहीं बनेगा। छात्र श्रम का सामूहिक हित में प्रयोग करेंगे।

श्रम-निष्ठ समाज बनाने के लिए शारीरिक तथा बौद्धिक श्रम का अन्तर समाप्त कर दोनों के अन्तर्गठन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने की आवश्यकता है। पूंजीवादी व्यवस्था में श्रमिकों को औद्योगिक प्रविधि तथा उत्पादन-कला का ज्ञान कराया जाता है किन्तु उसमें बौद्धिक तत्त्व का अभाव रहता है। इससे श्रमिक को अपने सामाजिक महत्त्व का ज्ञान नहीं हो पाता। ऐसा समाज श्रम का महत्त्व उसकी सामाजिक उपयोगिता तथा सृजनशीलता से न करके उसमें प्रयुक्त बौद्धिक तत्त्व से करता है। फलतः शारीरिक तथा बौद्धिक श्रम जो एक-दूसरे के पूरक हैं, प्रतिद्वन्द्वी बन जाते हैं। इस संघर्ष की चरम परिणति पूंजीपतियों एवं बुद्धिजीवियों के गठबन्धन में होती है। बुद्धिजीवी प्रतिगामी एवं प्रतिक्रियावादी बन कर पूंजीपतियों के संकेत पर श्रमिक का शोषण करने लगता है। वह ऐसा दर्शन बनाता है जिससे श्रमिक स्वयमेव अपने को निम्नकोटि का प्राणी समझने लगता है। भारत में तो यह स्थिति गम्भीर रूप धारण कर गई है। हमारा बुद्धिजीवी वर्ग अपने को श्रमजीवी समझने में लज्जा का अनुभव कर रहा है। वह अपने को शासक वर्ग का अंग समझता है। समाजवाद की स्थापना के लिए इसका अन्त आवश्यक है। अतः हमें पाठ्यक्रम में ऐसी व्यवस्था करनी होगी जिससे श्रमजीवियों की शिक्षा में बौद्धिक तत्त्व तथा बुद्धिजीवियों की शिक्षा में श्रम तत्त्व का समावेश हो जिससे दोनों उसकी सामाजिक एवं सृजनात्मक शक्ति से परिचित हो सकें।

पूंजीवादी समाज में शिक्षा लाभ का साधन होती है। पूंजीपति उसमें भी पूंजी का विनियोग कर उसमें भी एकाधिकार स्थापित करना चाहता है। शिक्षा व्यक्तिगत उद्योग बन जाती है। जिस प्रकार धन के बल पर पूंजीपति अन्य सुविधाएँ प्राप्त करता है उसी प्रकार वह अच्छी शिक्षा भी क्रय कर लेता है। समाज की दो समानान्तर अर्थव्यवस्थाएँ समानान्तर शिक्षा-व्यवस्था चला देती हैं। पूंजीपति अपने निहित स्वार्थ की पूर्ति के लिये राष्ट्रीय शिक्षा-धारा से पृथक् अपनी शिक्षा की व्यवस्था करता है, जिसका मुख्य उद्देश्य पूंजीवाद को सुदृढ़ करना होता है। हमारे यहाँ टाटा, बिड़ला और भगतराम आदि के उद्योग ही नहीं हैं वरन् उनकी शिक्षा-संस्थाए भी हैं। समाजवाद की स्थापना के लिये शिक्षा को व्यक्तिगत उद्योग बनने से रोकना होगा। जब तक शिक्षा पर पूंजीवादी प्रभुत्व रहेगा तब तक पूंजीवादी मनोवृत्ति पनपती रहेगी। जब पूंजीपतियों को अपनी रक्षा के लिये सेना और पुलिस की पृथक् व्यवस्था करने का अधिकार नहीं है तो उन्हें धन के बल पर अच्छी शिक्षा प्राप्त करने का भी अधिकार नहीं मिलना चाहिए। अतः आवश्यकता इस बात की है कि एक राष्ट्र में एक ही प्रकार की शिक्षा-प्रणाली चले। राष्ट्र की सामान्य शिक्षा-धारा से पृथक् अपनी शिक्षा की विशेष व्यवस्था करने का किसी को अधिकार न हो। शिक्षा में वैयक्तिक प्रयास बन्द कर सभी शिक्षा-संस्थाओं को राष्ट्रीय शिक्षा-धारा के अन्तर्गत लेना चाहिए। इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि शैक्षिक स्तर गिरने न पाए।

सामन्तवादी एवं पूंजीवादी समाज में शिक्षा वर्ग हितों का पोषण करने के कारण अनेक अनावश्यक विवाद उत्पन्न करती है। मानविकी एवं प्रौद्योगिकी, उदार एवं व्यावसायिक तथा वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक शिक्षा जो परस्पर एक-दूसरे की पूरक हैं, विरोधी समझी जाती हैं। इनमें कौन आवश्यक तथा श्रेष्ठ हैं इस पर विचारगोष्ठियाँ होती हैं। किन्तु निर्णय नहीं लिये जाते क्योंकि ये निर्णय किसी-न-किसी निहित स्वार्थ के विरुद्ध ही जाते हैं। सत्ताधारी वर्ग यह भूल जाता है कि सामाजिक समरसता के लिये सभी आवश्यक हैं। उसकी बुद्धि में यह बात नहीं आती कि वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक शिक्षा का भी सांस्कृतिक महत्त्व है या व्यावसायिक शिक्षा भी दृष्टिकोण को उदार बनाती है। यह सामान्य वर्ग के लिये ऐसी शिक्षा-योजना बनाता है जिसका शैक्षिक महत्त्व कुछ भी नहीं होता। उसे केवल साक्षर बनाया जाता है जिससे वह उत्पादन-प्रक्रिया का सक्रिय और कुशल यंत्र बना रहे। फलतः किसान-मजदूर शिक्षित तो बन जाते हैं किन्तु सामाजिक जीवन में अपनी भूमिका के महत्त्व का अनुमान नहीं कर पाते। उन्हें केवल अपनी आजीविका से ही काम रहता है। यदि समाज के बहुसंख्यक वर्ग की यही उदासीन स्थिति रही तो समाजवाद की स्थापना नहीं हो सकती। यदि हो भी जाए तो वह सुदृढ़ तथा स्थायी नहीं होगा। अतः आवश्यक है कि सामान्य शिक्षा-संस्थाओं में ऐसी व्यवस्था की जाय कि शिक्षा उपयोगी होने के साथ-साथ ज्ञान-वर्धन भी करे; वह उत्पादक भी बने तथा उसका सांस्कृतिक स्तर भी ऊँचा हो जिससे वह समाज के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येक नागरिक को उसकी गरिमामयी भूमिका का बोध करा सके।

समाजवाद सामाजिक समृद्धि का दर्शन है। वह धन या दरिद्रता के समान वितरण का प्रयास नहीं है। यही कारण है कि समाजवादी राज्यों में शिक्षा को उत्पादक बनाने की चेष्टा की जाती है। कृषि तथा उद्योगों की शिक्षा का विज्ञान से संयोजन किया जाता है। इससे उत्पादन की वृद्धि होती है और जीवन-स्तर का भी उन्नयन होता है। किन्तु यही इसका अन्तिम उद्देश्य नहीं है। उत्पादक एवं रचनात्मक शिक्षा को सामाजिक विकास के दर्शन से भी सम्बद्ध किया जाता है। विद्यार्थी समाज तथा उत्पादक प्रविधि के सम्बन्धों को भी समझने लगते हैं। उन्हें यह विश्वास हो जाता है कि उत्पादक के जिन साधनों का वे प्रयोग करते हैं वे उनकी सामाजिक स्थिति, चेतना तथा नैतिकता को भी प्रभावित करते हैं। भारतीय शिक्षा इस दिशा में नितान्त असफल रही है। हम अपने विद्यार्थियों को केवल उत्पादन कला तथा प्रविधि का ही ज्ञान कराते हैं, उससे सम्बन्धित सामाजिक प्रविधि तथा कौशल का नहीं। प्राविधिक तथा तकनीकी ज्ञान को ही हमने मुख्य लक्ष्य समझ लिया है। ऐसी शिक्षा छात्रों में व्यापक सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना नहीं भर पाती अपितु उसे समाज से पृथक् कर देती है। वह अपने को परिवेश से विलग एक पृथक् प्राणी समझने लगता है और फिर समाज पर अमरबेल के समान छा जाता है। इससे समाज की जीव शक्ति कुण्ठित होती है किन्तु लाभ कुछ भी नहीं पहुँचता।

समाजवाद केवल आर्थिक पुनर्निर्माण की योजना मात्र ही न होकर एक सांस्कृतिक क्रान्ति भी है। इसका मुख्य उद्देश्य वर्गवादी शोषणपरक संस्कृति के स्थान पर, जो केवल निहित स्वार्थों का ही हित साधन करती है, सामान्य तथा सजीव सांस्कृतिक प्रणाली की पुनर्स्थापना करना है जो सर्वसाधारण के जीवन का उन्नयन कर उसे विकास की गति, दिशा तथा प्रेरणा दे सके। हमारे सम्मुख तो आज भयंकर सांस्कृतिक संकट उपस्थित है। हमारी संस्कृति का प्रेरणा-स्रोत या तो हमारा अपना अतीत है या पश्चिमी राष्ट्रों का वर्तमान। यही दोनों हमारे प्रसंग समूह हैं। इससे हममें पीछे देखने तथा परमुखापेक्षी बनने की प्रवृत्ति आयी है और मानसिक दासता भी उत्पन्न हुई है। हमने अपने वर्तमान को समझने की कम चेष्टा की है। इतिहास की जिन परिस्थितियों ने हमें यहाँ खड़ा कर दिया है, उसका महत्त्व आकलन करने में हम असमर्थ हैं। जो लोग केवल अतीत को ही अपना आदर्श बनाये हैं वे यह भूल जाते हैं कि अब वह युग वापस नहीं आयेगा। इतिहास-चक्र आगे बढ़ गया है। वे अभी उसी संस्कृति जीवन को वापस लाने की चेष्टा कर रहे हैं, जिसमें जातिवाद, अस्पृश्यता तथा दरिद्रता को जीवनादर्श माना गया है। जो लोग पश्चिमी राष्ट्रों की ओर देखकर उनका अंधानुकरण करना चाहते हैं वे सोचते हैं कि संस्कृति का भी रूसी तथा अमेरिकन गेहूँ की भाँति आयात किया जा सकता है। पर यह एक निष्फल चेष्टा है। भारत की समाजवादी संस्कृति यहीं की उपज होगी। उसका निर्माण भी यहीं की ऐतिहासिक परिस्थितियों द्वारा होगा। अतीतोन्मुख तथा परमुखापेक्षी बनने की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए विचार करने की आवश्यकता है। हमें अपनी जीवन-प्रणाली की नयी परिस्थिति की संगत व्याख्या करनी होगी जिससे धर्म-निरपेक्ष, मानवतावादी तथा समतामूलक संस्कृति का विकास हो सके। भारतीय संस्कृति में ऐसे अनेक तत्त्व विद्यमान हैं जिनके आधार पर ऐसा सफलतापूर्वक किया भी जा सकता है। यह काम केवल हमारी शिक्षा-संस्थाएँ ही सम्पन्न कर सकती हैं। उन्हें यह दायित्व स्वीकार करना होगा।

समाजवादी समाज की स्थापना में विज्ञान महत्वपूर्ण भूमिका का सम्पादन करता है। वैज्ञानिक शिक्षा समाजवादी शिक्षा-योजना का अपरिहार्य अंग होती है, किन्तु इधर भी हमने सक्रिय प्रयास नहीं किया है। हम अपने विद्यालयों में वैज्ञानिक तथ्य तो पढ़ाते हैं किन्तु वैज्ञानिक चिन्तन तथा दृष्टिकोण का विकास नहीं कर पाते। अतः हमारी वैज्ञानिक शिक्षा हमारी सांस्कृतिक एवं नैतिक चेतना को प्रभावित नहीं कर पाती। वह पूर्वाग्रह, पक्षपात, अन्धविश्वास तथा मानसिक दासता को दूर नहीं कर पा रही है। विज्ञान की शिक्षा का मूल उद्देश्य आशावाद, सहयोग तथा बौद्धिक ईमानदारी उत्पन्न करना होता है। वह मनुष्य को प्रकृति पर विजय प्राप्त कराती है, कार्य-कारणों की व्याख्या कर घटनाओं को समझने की प्रेरणा देती है। इससे मनुष्य को अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्जक शक्ति का ज्ञान होता है जिससे लोकहित साधन होता है। किन्तु इस ओर हम ध्यान नहीं दे रहे हैं। स्वतन्त्रता के २७ वर्षों के बाद भी हम विज्ञान एवं नयी सामाजिक व्यवस्था का संयोजन नहीं कर पाये हैं। समाजवाद एक वैज्ञानिक सामाजिक व्यवस्था है, उसका वैज्ञानिक दृष्टिकोण से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब तक इस दृष्टिकोण का विकास नहीं होगा तब तक समाजवाद की स्थापना नहीं हो पायेगी। यदि हो भी जायेगी तो वह अचिर और अस्थायी होगा।

समाजवादी दर्शन का लक्ष्य समतामूलक समाज की स्थापना है। इसलिए समाजवादी राज्यों में शैक्षिक अवसरों की समानता पर बल दिया जाता है। यह समानता केवल सामान्य शिक्षा-प्रणाली की स्थापना करने, एक ही प्रकार का पाठ्यक्रम पढ़ाने तथा एक ही शिक्षण-विधि अपनाने से नहीं प्राप्त होती। ये इसके आवश्यक साधन हैं, लक्ष्य नहीं। शैक्षिक समानता तो सबको केवल साक्षर मात्र बना देने से भी आ जायेगी या शिक्षा का स्तर इतना गिरा देने से भी आयेगी कि शिक्षित तथा अशिक्षित व्यक्ति के बीच बौद्धिक अन्तर ही न रह जाय। किन्तु ऐसा करने से सामाजिक जड़ता उत्पन्न होगी। हमें स्मरण रखना चाहिए कि शैक्षिक अवसरों की समानता का प्रश्न आनुपातिक सुविधा प्रदान करने का प्रश्न है। इसके लिए सांस्कृतिक, आर्थिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को अधिक सहायता करनी पड़ेगी। भारतीय समाज में ऐसे लोगों की बहुलता है जो शताब्दियों से इन अवरोधों का सामना कर रहे हैं। जब तक इनको इतनी अतिरिक्त सुविधा नहीं मिलेगी कि इन अवरोधों की क्षतिपूर्ति हो सके तब तक उन्हें शैक्षिक समानता का अवसर नहीं प्राप्त होगा। शैक्षिक समानता का प्रश्न आर्थिक एवं सामाजिक समानता से जुड़ा है। जब तक समाज से आर्थिक एवं सामाजिक भेद समाप्त नहीं होगा तब तक वास्तविक रूप से शैक्षिक अवसरों की समानता जनसाधारण को सुलभ नहीं हो सकेगी।

समाजवादी समाज धर्मनिरपेक्ष होता है। किन्तु धर्मनिरपेक्षता की भावना भी अनेक अर्थों में ग्रहण की जाती है। सर्व-धर्म-समन्वय, धार्मिक तटस्थता, धार्मिक समानता, मानववाद तथा अधार्मिक एवं धर्म विरोधी दृष्टिकोण सभी इसके स्वरूप हैं। भारत में इसका अर्थ सर्व-धर्म-समन्वय तथा धार्मिक तटस्थता से लिया जा रहा है। जनता में यह प्रचार किया जाता है कि सभी धर्मों के मूलभूत सिद्धान्तों में समानता है। राजकीय स्तर पर सरकार भी धार्मिक मामलों में तटस्थ रहती है। सबको धर्माचरण की स्वाधीनता है। हम यह भूल जाते हैं कि धर्मों का केवल वैयक्तिक विचारों से ही नहीं वरन् सामाजिक जीवन, नैतिकता तथा व्यवहार से भी सम्बन्ध है। भारत के धर्मों में केवल मूलभूत दार्शनिक प्रश्नों पर ही मतभेद नहीं है वरन् वे विभिन्न प्रकार की आचरण संहिता, नैतिक मर्यादा तथा सामाजिक व्यवस्था का प्रतिपादन भी करते हैं। इनमें से कुछ का सम्बन्ध समाजवादी व्यवस्था से लेशमात्र भी नहीं है। ऐसी स्थिति में धर्मनिरपेक्षता का जो स्वरूप राष्ट्र में ग्रहण किया जा रहा है, वह केवल प्राचीन जर्जर एवं जड़ व्यवस्था को ही सुदृढ़ करेगा। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा-संस्थाएँ धर्म के उन पक्षों की शल्य-चिकित्सा करें जो सामाजिक विकास की प्रक्रिया को अवरुद्ध कर रहे हैं। अतः अनेक बातों में हमें धर्म-विरोधी रुख भी अपनाना होगा। धार्मिक संस्थाओं द्वारा संचालित शिक्षा-संस्थाएँ बन्द करनी होंगी। प्रातःकालीन प्रार्थनाएँ, समावर्तन समारोहों पर अपनाई जाने वाली प्रथाएँ तथा उद्घाटनों पर मन्त्र-पाठ बन्द कराने होंगे। पाठ्यक्रम में परिवर्तन करना होगा अन्यथा हमारी शिक्षा-संस्थाओं में प्रविष्ट विष समाजवाद की हत्या कर डालेगा।

समाजवाद की स्थापना के लिए हमें अपने जीवन-दर्शन तथा उसकी असंगत मूल्य प्रणाली का, जिसका नयी व्यवस्था से कोई मेल नहीं है, परित्याग करना पड़ेगा। हमारे राष्ट्र की बहुसंख्यक जनता भाग्यवादी है। उसका विश्वास है कि उद्देश्य-सिद्धि कर्म से नहीं वरन् भाग्य से होती है। हम सोचते हैं कि मानवीय श्रम व्यर्थ है; सब कुछ हरि-इच्छा से होता है। हमारी आस्था है कि इस जन्म की दीन-हीन अवस्था का कारण पूर्व जन्म के कर्म हैं। हम इस संसार को असार तथा माया मानकर उसे सुन्दर बनाने की चेष्टा नहीं करते, और न उसमें रुचि ही लेते हैं। हमारा विश्वास है कि भगवान दीनबन्धु हैं और उसकी कृपा केवल अकिंचन पर ही होती है। जब तक ये धारणाएँ चेतन या अचेतन रूप से जनमानस में विद्यमान रहेंगी तब तक हम न तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी दुर्दशा को दूर करने का सक्रिय प्रयास ही करेंगे और न हममें उत्तरदायित्व की भावना का ही विकास होगा। अतः आवश्यक है कि सामाजिक प्रगति के ये अवरोधक मूल्य बदले जायँ। प्राचीन मूल्यों की या तो नयी व्याख्या की जाय या जीवन के लिए नए मूल्यों का निर्माण किया जाय जिससे नयी व्यवस्था सुदृढ़ हो। फ्रांसीसी जनक्रान्ति की असफलता का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी था कि क्रान्तिकारियों ने जिन मूल्यों का प्रचार किया उन्हें जनमानस ने स्वीकार ही नहीं किया था।

शिक्षा दर्शन राजनीतिक दर्शन से सदा सम्बन्धित रहा है। नागरिकों का प्रशिक्षण राजनीतिक दृष्टिकोण से ही किया जाता है। वे किसी-न-किसी राजनीतिक व्यवस्था से अनुकूलन कर उसे सुदृढ़ भी बनाते हैं। समाजवाद की स्थापना के लिये शिक्षा को राजनीतिक अस्त्र तथा साधन बनाना पड़ेगा। शिक्षा केवल सामाजिक संरक्षण का ही कार्य नहीं करती, उससे सामाजिक परिवर्तन भी होता है। इधर कुछ दिनों से प्रतिक्रियावादियों ने यह नारा लगाना प्रारम्भ कर दिया है कि शिक्षा को राजनीति से दूर रखा जाए। वे चाहते हैं कि राष्ट्र की युवाशक्ति यथास्थितिवादी एवं दिशामूढ़ हो जाय, सामाजिक विकास की दिशा अवरुद्ध कर दी जाय और समयचक्र को पीछे घुमा दिया जाय। वस्तुतः अपने आप में यह योजना स्वयं एक राजनीति है, जिसका उद्देश्य युवाशक्ति को प्रतिगामी तथा पथभ्रष्ट करना है। हमें इससे सावधान रहना है। ये लोग फ़ासिस्ट प्रवृत्ति के हैं जो अधिनायकवाद की स्थापना करना चाहते हैं। अब समय आ गया है जब हमें शिक्षा-संस्थाओं में प्रत्येक स्तर पर समाजवाद के सिद्धान्तों का अध्ययन और अध्यापन ही नहीं वरन् प्रचार भी करना होगा। इसके लिए आवश्यक नहीं कि पाठ्यक्रम में एक विषय और बढ़ा दिया जाय। हमें अपने अध्ययन-अध्यापन का वर्तमान दृष्टिकोण तथा प्रणाली बदलनी होगी। हमें बौद्धिक तटस्थता तथा यथास्थितिवाद का प्रतिपादन करना बन्द कर समाजवाद के भाष्यकार के रूप में सामने आना होगा, जिससे शिक्षा एवं समाजवाद का सक्रिय सयोजन हो सके। इससे हमारी शिक्षा-संस्थाओं से जो छात्र निकलेंगे, वे समाजवादी राष्ट्र के जागरूक प्रहरी बनेंगे।

समाजवाद की स्थापना के लिये हमें शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था तथा उसके दैनिक कार्यक्रम में भी पर्याप्त परिवर्तन करने होंगे। वैयक्तिक कार्यों के स्थान पर सामूहिक कार्यक्रम को वरीयता देनी होगी। पाठ्यक्रम से अनेक असंगत बातों को निकालकर उनके स्थान पर नयी व्यवस्था से सम्बन्धित पाठ्यवस्तुएँ रखनी होंगी। नयी पाठ्यपुस्तकें तैयार करनी पड़ेंगी, नवीन शिक्षण-पद्धतियों का विकास करना होगा। अपने इतिहास की नवीन व्याख्या करनी पड़ेंगी। विद्यालयों के प्रशासन में छात्रों को सहयोगी बनाना होगा। समस्त कार्यक्रम का पुनर्युक्तीकरण करना होगा। शिक्षा-संस्थाओं को बहुत अंश तक 'फार्म स्कूल' तथा 'फैक्ट्री स्कूल' बनाना पड़ेगा। विद्यालयों को सांस्कृतिक केन्द्रों के रूप में बदलना पड़ेगा। प्रत्येक स्तर पर शिक्षा को समाज से सयोजित करना पड़ेगा। यदि हम ऐसा कर सकेंगे तो समाजवाद की स्थापना में यह सबसे अधिक मौलिक तथा तात्विक प्रयास होगा।

समाजवाद दर्शन है, धर्मकाण्ड या अन्धविश्वास नहीं। वह एक विकासमान व्यवस्था है, सामाजिक जड़वाद नहीं। उस पर देश-काल का प्रभाव पड़ता है। सांस्कृतिक कारकों का उससे सम्बन्ध है। समाजवादी व्यवस्था बाहर से आयात नहीं की जा सकती। इसके लिये हमें यहीं पृष्ठभूमि विकसित करनी पड़ेगी। किसी का अन्धानुकरण काम नहीं देगा। हिंसा भी उसका अनिवार्य साधन नहीं है। किन्तु उसकी स्थापना केवल थोथी नारेबाजी से नहीं होगी। उसके लिये अनुशासित आचरण, समाजवादी नैतिकता के पालन, आर्थिक समृद्धि तथा कठोर परिश्रम की आवश्यकता है। केवल समतामूलक विधेयकों को पारित कर देने, उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने, तथा बैंकों को सरकारी नियंत्रण मे लेने से समाजवाद नहीं आ जाता। राजनीतिक अवसरवाद, हिप्पीवाद तथा मध्यमवर्गीय दुस्साहसवाद से इसकी स्थापना नही होगी। इसके लिये जीवन-दर्शन तथा सामाजिक परिवेश में परिवर्तन की आवश्यकता है। यह शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। यदि समय रहते शिक्षा-व्यवस्था में परिवर्तन न किया गया तो समाजवाद केवल पाखण्डियों तथा प्रबन्धकों की राजनीतिक ठगी का साधन बन जायेगा जिसकी चरम परिणति तानाशाही की स्थापना में होगी। भारत में यह स्थिति धीरे-धीरे आ रही है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे अभिनव प्रकाशन

उपन्यास

● बेगम हजरत महल	श्री इकबाल वहादुर देवसरे	२०.००
● मसिरेखा	श्री जरासंध	१७.००
● बड़के भैया	डा० लक्ष्मीनारायण लाल	५.००
● अपना अपना राक्षस	डा० लक्ष्मीनारायण लाल	५.००
● तंतुजाल	डा० रघुवंश	१६.००
● दर्द के पैबंद	डा० प्रभाकर माचवे	१२.००

ग्रन्थावली

● बंकिम ग्रन्थावली भाग १, २, ३	सं० ओंकार शरद्	१२५.००

पुस्तकालय विज्ञान

● पुस्तकालय वर्गीकरण सिद्धान्त और प्रयोग	श्री द्वारिका प्रसाद शास्त्री	१६.००
● पुस्तकालय विज्ञान परिचय	श्री द्वारिका प्रसाद शास्त्री	२०.००

शोध प्रबन्ध और शोध कृतियाँ

● मीरां की भक्ति और उनकी काव्य साधना का अनुशीलन	डा० भगवानदास तिवारी	३५.००
● मीरां की प्रामाणिक पदावली	डा० भगवानदास तिवारी	२५.००
● महाकवि तुलसीदास और युग संदर्भ	डा० भगीरथ मिश्र	१५.००
● आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच	डा० लक्ष्मीनारायण लाल	१५.००
● आधुनिक काव्य कला और दर्शन	डा० राममूर्ति त्रिपाठी	१८.००
● सूर सागर सार (सटीक)	सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा	२५.००
● भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	१५.००
● हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास	डा० लक्ष्मीनारायण लाल	२२.००

नाटक

● खट्टे मीठे एकांकी	डा० रामकुमार वर्मा	६.००

हमारे जून मास के प्रकाशन

उपन्यास

● जाने आलम	श्री इकवाल वहादुर देवसरे	२५.००

कविता

● परिक्रमा	श्रीमती महादेवी वर्मा	१०.००

काव्य-शास्त्र

● भारतीय काव्यशास्त्र नयी व्याख्या	डा० राममूर्ति त्रिपाठी	१४.००

कहानी

● डाकू आये थे	डा० लक्ष्मीनारायण लाल	६.००

प्रकाशक

साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड, इलाहाबाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीतिक चिन्तन के सामाजिक आयाम और शिक्षा

श्री राजेन्द्र कुमार
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, सी० एम० पी० डिग्री कालेज, इलाहाबाद

आधुनिक सभ्यता-जनित जटिलताओं के बीच विश्व का व्यक्तित्व विभाजन की जिस प्रक्रिया में से गुजर रहा है, उसमें राजनीति की भूमिका विचारणीय है। विश्व का व्यवहार आज अलग-अलग स्तरों पर अलग-अलग रूपों में परिचालित होता है। यही नहीं, कभी-कभी तो एक ही स्तर पर यह व्यवहार इतना विरोधाभासपूर्ण होता है कि उसकी अन्विति का कोई सूत्र शीघ्र हाथ नहीं लगता। यद्यपि, 'विरोधाभास' न तो राजनीति का पर्याय है और न उसका लक्षण ही; तथापि कहना पड़ता है कि हमारे समय की राजनीति 'विरोधाभास' को अपना उपलक्षण-सा घोषित करती हुई प्रतीत होती है। यह 'विरोधाभास' आज राजनीति के 'कैप्सूल' में, आधुनिक शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों को 'पोषक' बताकर वितरित किया जा रहा है जिससे शिक्षा की सम्पूर्णता और स्वायत्तता खण्डित हो रही है। प्रकारान्तर से, यही विश्व-समाज के अस्तित्व के लिए एक बहुत बड़ा प्रश्न चिह्न भी है।

विश्व-समाज से हमारा तात्पर्य विभिन्न समाजों की समष्टि नहीं है। सामान्य कथन के अनुसार समाज की इकाई 'व्यक्ति' है। विश्व-समाज की इकाई 'व्यक्ति' नहीं, 'मानव' है। व्यक्तिगत रूप में हम कुछ भी हों, किसी भी मत-मतान्तर से सम्बद्ध हों अथवा किन्हीं भी भौगोलिक परिसीमाओं से आबद्ध हों किन्तु यदि हमारी संवेदना किसी संकीर्णता की परिधि से सम्बद्ध अथवा आबद्ध नहीं है और हमारी नैतिकता विश्वजनीन है तो हम निश्चय ही अपने को 'विश्व-समाज' का एक अंग मान सकते हैं। इसलिए आधुनिक शिक्षा की आधुनिकता तभी सिद्ध हो सकती है जब वह अपने इस दायित्व को स्वीकारने में पूर्ण सक्षम हो, अर्थात् जब वह, हमारे 'व्यक्ति' को उपर्युक्त 'विश्व-समाज' की इकाई—'मानव' में रूपान्तरित करने में सफल हो सके।

प्लेटो ने कहा था—'यह दृश्य-संसार एक कारागार है'। इस कारागार से हमारी मुक्ति का श्रेय निस्सन्देह शिक्षा की ओर स्वयं को निरन्तर बढ़ाये रखने के प्रयासों को है और विशेष रूप से उस विज्ञान-चेतना को है, जो हमारी आधुनिक शिक्षा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। कठिनाई यहाँ यह उपस्थित होती है कि हम अपनी चेतना को इस मुक्ति के लिए संघर्ष के रूप में न देखकर सत्ता (राज्य-सत्ता अथवा वर्ग-सत्ता) की शक्ति के विस्तार के रूप में देखने लगते हैं। इस स्थिति में राजनीति का चाप शिक्षा-जगत् को इस तरह अपने प्रभाव में समेटता है कि 'विश्व-समाज' की परिकल्पना सत्ता-लोलुपता के यथार्थ में बदल जाती है और यह 'दृश्य-संसार', जिसे प्लेटो ने एक 'कारागार' कहा था, अनेक 'कारागारों' में बँट जाता है। इन छोटे-छोटे कारागारों में कैद मानवीय मूल्य छटपटाते हैं और हम अपनी राजनीतिक दीर्घाओं में बैठे एक तटस्थ प्रेक्षक की भाँति इस छटपटाहट का क्रूर आनन्द लेते रहते हैं।

जब हमारी राजनीति-सम्पृक्ति का कोई स्पष्ट रचनात्मक आधार नहीं होता, तो सिद्धान्त और व्यवहार में संतुलन का कोई सेतु निर्मित करना असंभव-प्राय होता है। राजनीति को, रचनात्मक आधार प्राप्त करके ही शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश पाने का अधिकार माँगना चाहिए अन्यथा शिक्षा यदि राजनीति के लिए निषिद्ध क्षेत्र ही बना रह सके तो श्रेयस्कर होगा। असल में सबसे बड़ा खतरा उनसे है जो राजनीति को सुविधा का सौदा बना रहे हैं। अपने स्वार्थ के लिए शिकार की घात में बैठे लोगों के लिए राजनीति महज एक आड़ है। कितने ही शिक्षा-संस्थानों की रूहों को लहूलुहान करने और आदर्शों को ध्वस्त करने वाले दृश्य एवं अदृश्य हाथ इस 'आड़' के पीछे के इशारों से ही संचालित होते हैं।

[शेष पृष्ठ ७५ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

शोध प्रबन्ध : आलोचना

भारतीय काव्यशास्त्र	डॉ० सत्यदेव चौधरी	६०.००
भारतीय नीति-काव्य परम्परा और रहीम	डॉ० वालकृष्ण 'अकिंचन'	५०.००
भारतीय चलचित्र (१९१३-१९७२)	डॉ० महेन्द्र मित्तल	७०.००
हिन्दी उपन्यास : परम्परा और प्रयोग	डॉ० सुभद्रा सक्सैना	५०.००
रहीम का नीति-काव्य	डॉ० वालकृष्ण 'अकिंचन'	३०.००
अलंकार, रीति और वक्रोक्ति	डॉ० सत्यदेव चौधरी	२०.००
रस-सिद्धान्त की प्रमुख समस्याएँ	डॉ० सत्यदेव चौधरी	२०.००
शब्दशक्ति और ध्वनि-सिद्धान्त	डॉ० सत्यदेव चौधरी	१०.००
काव्य का स्वरूप	डॉ० सत्यदेव चौधरी	१२.५०
प्रेमचन्द-साहित्य में ग्राम्य-जीवन	डॉ० सुभद्रा सक्सैना	१२.५०
रामचन्द्रिका की अन्तर्कथाएँ	सरोज गुप्त	८.००
गबन : आलोचनात्मक अध्ययन	डॉ० रामप्रकाश	३.५०
नहुष : आलोचनात्मक अध्ययन	डॉ० रामप्रकाश	३.५०

महाकाव्य : काव्य

शिवचरित (महाकाव्य)	प्रो० निरंजनसिंह 'योगमणि'	५०.००
होगा कब नामकरण ?	डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र	६.००
व्यक्ति और अभिव्यक्ति	डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र	५.००
नौजवान देश के (राष्ट्रीय गीत)	श्रीमती सरला भटनागर	६.००

उपन्यास

कल्पना	रतन सैनी	१२.००
माँ खेतों में बसती है	र० व० दिघे, रूपा० शान्तिस्वरूप गुप्त	१०.००

पुरातत्त्व

संग्रहालय अनुशीलन (सचित्र)	डॉ० राय चौधरी, नीलिमाराय ओ० पी० अग्रवाल, शचिनराय; भूमिका—डॉ० ग्रेस मोर्ले	२५.००

अलंकार प्रकाशन

६६६ झील, दिल्ली—११००५१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा का राजनैतिक प्रयोजन बनाम बदलती व्यवस्था का संकेत

डा० राजमल बोरा
६, आनन्द नगर, टाउन हॉल, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

आज शिक्षा-सस्थाओं में उत्पन्न राजनैतिक हलचलों से जो समस्याएँ सामने आ रही हैं, उनसे शिक्षा-संस्थाओं के संचालक—राज्य सरकार और केन्द्रीय सरकार स्थितियों का सामना करने में अपने को कुछ सीमा तक असमर्थ अनुभव कर रही हैं। लगता है शिक्षा का प्रयोजन अब कुछ और रूप ले रहा है। इन स्थितियों का सर्वेक्षण होना चाहिए और इन कारणों की मीमांसा भी आवश्यक है। किसी समस्या का अध्ययन जब तक पूर्ण परिप्रेक्ष्य में नहीं किया जाता तब तक उसके निदान के सम्बन्ध में कहना कठिन है। क्योंकि समस्या का निदान, समस्या की स्थितियों से परिचित होने पर ही बतलाया जा सकता है। शिक्षा के प्रयोजन में अब राजनीति का प्रवेश हो गया है। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत लेख में शिक्षा का राजनैतिक प्रयोजन क्या है और इस प्रयोजन के कारण आज का मनुष्य जिन कठिनाइयों से घिर गया है, इसका विश्लेषण किया जा रहा है।

[२]

शिक्षा के अनेक प्रयोजन हैं। विषय का ज्ञान, उत्तम व्यक्ति बनना, व्यक्तित्व का विकास या सुसंस्कृत बनना, आदर्श नागरिक बनना, इसी तरह और अनेक प्रयोजन हैं। इन सब प्रयोजनों पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जा सकता है। कहने वाला यह भी कह सकता है कि इन प्रयोजनों में विसंगति नहीं है। जो आदर्श व्यक्ति होगा, वह आदर्श नागरिक भी हो सकता है। किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं है। इस विस्तार में यहाँ नहीं जाना है। हम देखते हैं कि शिक्षा-संस्थाओं पर आज सरकार का नियंत्रण है और इस दृष्टि से सरकारी नीति का पालन शिक्षा-संस्थाओं को करना पड़ता है। शिक्षा के सम्बन्ध में जो योजनाएँ बनती हैं, वे योजनाएँ सरकार के द्वारा स्वीकृत होती हैं और उस योजना के लिये वित्तीय सहायता सरकार से मिलती है। लोकतंत्र की व्यवस्था होने के कारण शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सब को है और सरकार का दायित्व है कि देश के नागरिकों की शिक्षा की वह समुचित व्यवस्था करे अर्थात् शिक्षा-संस्थाओं के संचालन में सरकार अप्रत्यक्ष रूप से विराजमान है। इस नाते शिक्षा का प्रयोजन अनेक प्रयोजनों के साथ-साथ राजनैतिक प्रयोजन भी होता जा रहा है। इस प्रयोजन का ज्ञान होने वाली घटनाओं के कारणों की मीमांसा करने पर ज्ञात हो सकता है। राजनैतिक प्रयोजन तत्काल लक्षित नहीं होता; यहाँ तक कि होता कुछ है और उसकी व्याख्याएँ कुछ और की जाने लगती हैं और जब ऐसा होता है, तो कहा जाता है कि ये सब राजनीति है।

[३]

हम विशेष विस्तार में न जाते हुए स्थूल रूप में ही राजनैतिक प्रयोजन को देख सकते हैं। आज लोकतन्त्र की सरकार है। लोकतन्त्र की यह व्यवस्था शिक्षा-संस्थाओं में भी स्थान ग्रहण कर रही है। इस व्यवस्था के कारण अधिकार-बोध की भावना का विकास हुआ है। तदनुसार दायित्व-बोध भी बढ़ता जाए अर्थात् अधिकार और दायित्व का सन्तुलन बना रहे तो व्यवस्था में गड़बड़ी नहीं आयेगी किन्तु ऐसा नहीं हो रहा है। स्वयं लोकतन्त्र जिस रूप में प्रचलित है, उस पर ही यदि इस सन्दर्भ में विचार करें तो समस्या का वास्तविक रूप समझ में आ सकता है। बात यह है कि शिक्षा की अनिवार्यता को सरकार अनुभव कर रही है और जनता भी अब यह समझ गई है कि शिक्षा प्राप्त करना आज अनिवार्य है। इस अनुभव के कारण देश-भर में शिक्षा के विकास की ओर ध्यान दिया जा रहा है। जनता भी इसमें सरकार का सहयोग दे रही है। शिक्षा के सम्बन्ध में, यह होने वाली क्रान्ति, देशव्यापी है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब कुछ व्यक्ति के धरातल पर नहीं, समूह के धरातल पर हो रहा है। जनसमुदाय यह अनुभव करता है कि शिक्षा प्राप्त करने से उसे नौकरी मिलेगी, समाज में ऊँचा स्थान मिलेगा। यही नहीं, उसकी सुविधाओं में भी वृद्धि होगी। पद-धन-मान-मर्यादा आदि में उसको अपेक्षाकृत उचित स्थान प्राप्त होगा। शिक्षा के अभाव में समाज में व्यक्ति अन्य बातों के होते हुए भी उपेक्षित रह जायेगा। यदि यह धारणा शिक्षा के प्रति, जिसे शिक्षा का प्रयोजन भी कहा जा सकता है, जनसमुदाय के मन में इस समय है और सरकार यदि शिक्षा प्राप्त करने के बाद ये सब सुविधाएँ (अपेक्षा के अनुसार) शिक्षितों को प्रदान करती है तो जनसमुदाय की इन धारणाओं की पुष्टि होती है। जब ऐसा नहीं होता तो असन्तोष का निर्माण होता है। इस असन्तोष का प्रभाव व्यवस्था पर पड़ता है। संक्षेप में शिक्षा का प्रयोजन शिक्षा, शिक्षा के लिए न रहकर, शिक्षा के कारण प्राप्त होने वाली सुविधाओं की ओर अधिक है, ऐसा अब प्रतीत होने लगा है। जब शिक्षा का प्रयोजन अपने आप में शुद्ध शिक्षा के रूप में प्रथम रहे और उससे प्राप्त होने वाले अन्य प्रयोजन गौण रहे या यों कहें कि यदि शिक्षा अपने आप शिक्षा के शुद्ध प्रयोजन के स्तर को बनाये रखने में प्रयत्नशील रहे तो अन्य प्रयोजनों की उपलब्धि अपने आप हस्तामलक हो ही जायेगी और फिर चिन्ता की बात नहीं होगी। सच्चाई यह है कि शिक्षा का प्रयोजन शिक्षा से हटकर, शिक्षा से प्राप्त होने वाली सुविधाओं की ओर अधिक है। और जब ये सुविधाएँ बिना शिक्षा प्राप्त किये भी उपलब्ध हो सकती हैं तो उस स्थिति में शिक्षा का प्रयोजन शिक्षा प्राप्त करना, लक्ष्य की प्राप्ति न रहकर खाना-पूरी करने वाली स्थिति हो जाती है। प्रसंग को विस्तार न देते हुए कहना यह है कि इस प्रकार की स्थिति का निर्माण होने पर यदि यह कहा जाने लगे कि शिक्षा के प्रयोजन में अनेक प्रयोजनों के साथ राजनैतिक प्रयोजन का भी समावेश हो गया है, तो इसे अन्यथा नहीं कहा जा सकता।

[४]

शिक्षा प्राप्त करने वाला युवावर्ग शक्तिशाली है—इस शक्ति से सब परिचित हैं। इस वर्ग के माध्यम से बड़े-बड़े काम सम्भव हैं। इस बात को कहने की आवश्यकता नहीं। युवावर्ग की भावनाओं को उभारना सरल है किन्तु उसको शान्त करना कठिन है। सच्चाई यह है कि इस वर्ग पर न माता-पिता का नियंत्रण है और न अध्यापकों का। इसका कारण आज की शिक्षा-व्यवस्था ही ऐसी है, यह कहना चाहिए। इसमें युवावर्ग का भी दोष नहीं है। स्थितियाँ ही ऐसी निर्मित हो गई हैं। माता-पिता का प्रयोजन शिक्षा में अधिक कार्य करता है या सरकार का प्रयोजन अधिक कार्य करता है, इस पर विवाद हो सकता है। किन्तु यह बात स्पष्ट है कि हम चाहते कुछ हैं और स्थितियाँ हमें कुछ और बना देती हैं। इस शिक्षा-व्यवस्था के कारण पारिवारिक विघटन भी हो रहा है। यहाँ शिक्षा-व्यवस्था का सामाजिक विश्लेषण प्रस्तुत नहीं करना है। प्रस्तुत विषय की ओर आते हुए यह कहना है कि युवावर्ग के सामने शिक्षा का प्रयोजन उचित नियन्त्रण तथा उचित व्यवस्था के अभाव में शिक्षा के मूल प्रयोजन से च्युत होने की स्थिति का निर्माण कर सकता है। कार्य से पूर्व ही परिणाम की कल्पना करने वाले कार्य को कार्य की दृष्टि से नहीं देखते। इस स्थिति में अन्य कारणों से यदि बाधा उपस्थित होने लगती है तो बाधा दूर करने के प्रयत्न में आन्दोलन होता है। यह शृंखला एक बार चल पड़ती है तो उसको नियंत्रित करना कठिन हो जाता है। इसमें युवावर्ग का दोष उतना नहीं है जितना तत्-तत् स्थितियों के निर्माण में अन्य वर्गों का है, जो इस माध्यम से अन्य प्रयोजनों की पूर्ति चाहते हैं। संक्षेप में शिक्षा-संस्थाओं को अन्य प्रयोजनों की पूर्ति का साधन बना दिया जाता है, तो फिर शिक्षा के अतिरिक्त अन्य प्रयोजन (जो शिक्षा से सीधा सम्बन्ध न रखते हों) राजनैतिक प्रयोजन हो जाते हैं।

[५]

इस पर भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा इसलिए भी हो रहा है कि समाज में जिस व्यवस्था को स्थापित करने का आज प्रयास हो रहा है, वह व्यवस्था लोकतंत्र की है। शिक्षा लोकाभिमुख हो गई है और इस कारण परम्परा से अधिकारों का उपभोग करने वाले वर्ग को कठिनाई का अनुभव हो रहा है। समाज में नई शिक्षा-व्यवस्था ने युवावर्ग के मन में पारिवारिक पारम्परिक मूल्यों को समाप्त कर दिया

[शेष पृष्ठ ७६ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरना हम भी आदमी थे, काम के !

श्री श्यामसरन 'विक्रम'
९/७२ पोकरपाड़ा, मोती कटरा, आगरा–३

[बात करना एक छात्र का, एक रिपोर्टर से]

"बस, कुछ न पूछिये ।"

"क्यों !"

"क्या कहें—राजनीति ने निकम्मा कर दिया।
वरना हम भी आदमी थे काम के ।।

"आज से तो कहीं अच्छे थे हम, तीन बरस पहले। तब तक कालेज की हवा नहीं लगी थी। हाई स्कूल से फोर स्टार हीरो बन कर याने चार विषयों में ससम्मान अंक प्राप्त करके निकले थे। बड़े अरमानों से कालेज में दाखिला लिया था। और फिर, हमारा स्कूल भी तो नगीना था; उन फटीचर स्कूलों से एकदम अलग। न ऊधो का लेन, न माधो का देन। घर से स्कूल और स्कूल से घर। राजनीति जैसी खुराफातों की फ़ुरसत ही किसे थी ?

"अब तुमने छेड़ा ही है तो कुछ परतें खोलता चलूँ—ये राजनीति के अखाड़े, जो आजकल के कालेज हैं न [राजनीति कम, रणनीति अधिक] ये बस, मच्छीबाजार हैं। किसी जमाने में सोनमोहर जैसे तपोनिष्ठ, अध्ययन के ओज से दीप्त, स्नातक और परास्नातक जो यहाँ से निकलते थे तो उनके ज्ञान-सौरभ से समाज और राष्ट्र महक-महक उठता था। और आज तो तौबा; इन मच्छीबाजारों की गन्दगी से अड़ोस-पड़ोस त्रस्त और अस्त-व्यस्त रहते हैं। कभी इन कालेजों के नाम हमारी प्रतिष्ठा बढ़ाते थे; आज इनके नाम से अपना परिचय देने में हमें जी चुराना पड़ता है। तुम्हें अचरज होगा कि इसमें मेरे अग्रज अभ्यासार्थी, ऐसे महारथी भी हैं जो 'कालेज-लाइफ' की जन्नत से चिपके रहने के लिए फेल होने की जुगाड़ में लगे रहते हैं। कहीं वदकिस्मती से बी० ए०, बी० कॉम०, बी० एस-सी० थर्ड डिवीजन पास भी हो गये तो—मंज़िल जो आयी, तो मंज़िल बढ़ा दी—की तरह विधि-कक्षा में ही प्रवेश ले लिया, कि दो-तीन साल नेतागीरी में और जो कट जायँ तो गनीमत।

"मैं तो इस कालेज में आकर पछताया। आज भी याद आते हैं मेरे वे स्कूल—मिशनरी, सेन्ट्रल और पब्लिक स्कूल आदि, जहाँ राजनीति की मन्थरा घुसने ही नहीं दी जाती और कहीं किसी चोर-दरवाजे से घुस भी आती है तो टांग तोड़ कर घूरे पर फेंक दी जाती है। तुम देखते ही होगे कि आन्दोलन के नाम पर जब-जब गुमराही आह्वान छात्रों का किया गया और तदनुसार जब-जहाँ छात्रों की अनुशासनहीन टोलियों ने विध्वस का सहारा लिया तब और तहाँ मिशनरी, सेन्ट्रल व पब्लिक स्कूल के छात्र सर्वथा अप्रभावित रहे। मेरे साथियों ने गुमराह करने वाले रहबर (?) नेताओं की उस चाल को समझा ही नहीं जिसकी ओट में वे हर तरह की गन्दी-सन्दी राजनीति में छात्रों को घसीटते हैं, मानो वही उनका धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र हो और कक्षा रूपी कर्मक्षेत्र से कुछ भी मतलब न हो।

"आज ऊपर से नीचे तक सभी इस तथ्य को भूले हुए हैं कि आजादी के परवाने, हमारे बलिदानी भारत-भाग्यविधाताओं ने यदि राजनीति को रणनीति का रूप देकर छात्रों का आह्वान किया था तो केवल विदेशी शासन को उखाड़-फेंकने के लिए। इधर आज के ये हमारे साथी हैं जो उसी अस्त्र को अपनी ही सरकार के सिर पर दे मारने में शान समझते हैं। मैं पूछता हूँ, लोकशासन तो अपना ही शासन है न ? फिर अपने ही शासन के विरुद्ध ये हिंसात्मक आन्दोलन क्यों....और जब हम ही हिंसा से शुरूआत करते हैं तब प्रतिहिंसा के प्रतिफल के प्रति हाय-हाय क्यों ? हमारी आत्मघाती प्रवृत्तियों का वही तो पुरस्कार है।

"हम छात्र तो काची माटी हैं। जिन संस्कारों की छाप छात्रावस्था में पड़ जाती है, वे ही स्थायी जीवन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कार बन जाते हैं। लोग भले ही कहें कि माता-पिता का रक्त व्यक्तित्व बनाता है; मैं उसे द्वितीय स्थान देता हूं। प्रथम स्थान पर संगत-संस्कार ही आते हैं जो व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। मुझे अपने साथियों पर तरस आता है, और अब तो तरस की भी सीमा पार हो चुकी, इस हद तक कि अपना नाम भी उनके साथ जुड़ाने में लज्जा आती है। खुद को तो पढ़ने से गरज होती नहीं, जो बेचारे पढ़ने के सच्चे अभ्यासार्थी हैं, उनके लिए भी कक्षा में बैठना-पढ़ना हराम कर देते हैं। सत्रारम्भ से सत्रान्त तक ये ही तौर-तरीके सोचे जाते हैं कि किन उचित-अनुचित बहानों से हड़तालें करायी जाती रहें। जब बगैर पढ़े ही कक्षोन्नति हो जाने के हथकण्डे उनकी जेब में रहते हैं तब पढ़ने का सिर-दर्द क्यों मोल लें? ये ही उन भेड़-बकरियों की भांति हैं जो किसी भी काम की योग्यता से जान-बूझकर वंचित रहते हुए शिक्षित बेकारों की फौज को साल-दर-साल बढ़ाते जाते हैं। ये ही अधिक शोर मचाते हैं कि बेकारी के लिए सरकार उत्तरदायी है और फिर....? फिर वही ध्वंस-विध्वंस। मेरा निश्चित मत है कि सुनियोजित योग्य शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को काम की कमी नहीं और शिक्षित बेकारों का ये हजूम ही देश के लिए खतरा है खतरा—किसी भी काम आने की योग्यता से सर्वथा वंचित

"बहुत धन्यवाद दोस्त, कि तुमने दिल की दो बात कह देने का मौका दिया। ये तो हुई हम छात्रों के दृष्टिकोण की। अब तुम कदाचित् यह भी जानना चाहोगे कि राजनीति और शिक्षा की एक-दूसरे में ये घुसपैठ एक प्राध्यापक की दृष्टि से क्या-क्या गुल खिलाती है। तो, इसके लिये हमारे वार्डन—प्रो० शुक्ला साहब से मुलाकात कीजिएगा, लेकिन हां, मेरा नाम न लीजिएगा।"

× × ×

[दास्ताने दर्द-ए-दिल, एक प्रोफ़ेसर की]

"आप····?"

"जी, मैं प्रो० शुक्ला—घिसा-पिटा 'शुक्ला' ही कह लीजिए। प्रोफेसर तो पहले कभी था। अब तो—

राजनीति ने निकम्मा कर दिया।
वरना हम भी आदमी थे काम के॥

"क्यों साहब, ऐसी क्या बात है?"

"जी, बात केवल 'ऐसी नहीं', 'ऐसी-वैसी' भी है। एक जमाना था, जब शिक्षा-विधायक राजनीति के पचड़े में नहीं पड़ते थे। दीर्घ दृष्टि से पाठ्यक्रम जो एक बार बना दिया, सो बना दिया। उन्हीं जमी-जमायी लीकों पर अच्छी तैयारी के साथ पढ़ाया जाता था। उस युग में पढ़ना-पढ़ाना एक आनन्द का विषय था। आज तो यह हाल कि स्वतन्त्रता का भारत-पूत सत्ताइस वर्ष का जवान हो चुका फिर भी शिक्षा-विधायकों को तजरुबे करने से फ़ुरसत ही नहीं। आवश्यक-अनावश्यक धुन आयी तो आज कहीं हायर सेकण्डरी कर दिया, कहीं त्रिवर्षीय बी० ए०, तो कल सब बकवास! वही ठीक था जो पहले था!! पाठ्यक्रम बनते पीछे हैं, पाठ्य-पुस्तकें छपती पहले हैं। जिस मिनिस्टर के चहेते प्रकाशक का भला करना हो, उससे सौदा पटाकर उसकी किताब के हिसाब से पाठ्यक्रम में उठा-पटक कर दी जाती है। पढ़ने-पढ़ाने वाले जायँ जहन्नुम में। अपनी कुरसी सलामत, अपना धन्धा बरकरार।

"इससे बढ़कर एक नया खतरा और सुन लीजिए। बिफरी हुई भैंस की तरह यह राजनीति जो छात्रों में कूद पड़ी है, इसने रहा-सहा भी मटियामेट कर देने की मानो कसम खा रही है। छात्रों को अब तो विद्यालय-विश्वविद्यालय-प्रशासन में प्रतिनिधित्व चाहिए; मानो प्रशासन न हुआ, मामा जी की महफिल हो गयी। जो अभी शिक्षण के दौरान में हैं, जो अधकचरे, अर्द्ध परिपक्व हैं, वे प्रशासन में क्या कलाबाजियां दिखायेंगे, उनका पूर्वाभास ही त्रासदायक है। आज का हर छात्र नेता है। कुलपति, मिनिस्टर या राज्यपाल तक को तो कुछ समझता नहीं, बेचारे अध्यापक की हस्ती ही क्या है? कक्षाएँ चलेंगी तो छात्रों के निर्देशन में; परीक्षाएँ चलेंगी तो छात्रों की लगामबन्दी में! अध्यापन तो आज बस, बेगार बनकर रह गया है। किसी को छींक आयी तो हड़ताल; किसी का 'मूड-आफ' तो हड़ताल; एक गुट कहेगा—परीक्षा-तिथियां बढ़ानी चाहिए; दूसरा गुट कहेगा—परीक्षाएँ निर्विलम्ब होनी चाहिए। पूरे साल गिनती के सौ दिन पढ़ने-पढ़ाने का भी बैंक बैलेन्स नहीं रहने देते, तिस पर कहते हैं कोर्स पूरा नहीं हुआ; परीक्षा नहीं देंगे····और अब परीक्षा स्वयं भी तो एक बहुत बड़ा मजाक बन कर रह गयी है। मेरे ख्याल से परीक्षाएँ बिल्कुल हटा देने से भी कुछ फर्क नहीं पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधरे हुए देशों में तो इस तमाशे को समाप्त ही कर दिया गया है; परन्तु एक बहुत बड़े फर्क़ की आधार-शिला पर। हमारे यहाँ उनका अंधानुकरण करने से तो और भी अंधेरा हो जायेगा। वहाँ का फर्क़ यह है कि परीक्षा-प्रणाली समाप्त कर देने के पीछे छात्रों की अन्यथा सुयोग्य तैयारियों का बड़ा हाथ है जिन्हें शिक्षा-काल में केवल पढ़ने से ही काम रहता है। हमारे यहाँ तो जब तक हमारी शिक्षा-गुड़िया राजनीति के हाथों का खिलौना बनी हुई है, तब तक विदेशों की वे शिक्षा-परक खूबियाँ हमारे लिये दिवास्वप्न ही बनी रहेंगी। मुझे इन्तजार है किसी जादुई छड़ी के स्पर्श का, जो इस सूरते-हाल को बदल दे; वरना मरीज के इलाज की क्या बात, कब्र खोदने की तैयारी करनी चाहिए।"

× × ×

[अभिभावक का सपना]

"सुनिए, मुझे भी कुछ कहना है। मैं हूँ अभिभावकों की बदनसीब जमात का एक अदना इन्सान।"

"नहीं, नहीं, आप तो हमारे पूज्य हैं। फर्माइए।"

"क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता।
मगर चुप भी रहा नहीं जाता।।"

"हम भी तो छात्र रह चुके हैं। पढ़ाई के विषय में हम अपने अभिभावकों के लिए कभी सिरदर्द नहीं बने। हमारे युग में राजनीति केवल उन्हीं के लिए थी जो पाठ्यक्रम के विषय के रूप में लेते थे। शेष अन्य को अपनी पढ़ाई से फ़ुरसत ही कब थी? कहते तो यह हैं कि राजनीति में शिक्षा घुसी जा रही है परन्तु कटु सत्य यह भी है कि राजनीति को शिक्षा में घसीट लाया जा रहा है और जब दो दीवाने मिल बैठते हैं तब तुम जानते ही हो, क्या खूब बन आती है।

हम ही जानते हैं कि किस तरह अपना खून-पसीना एक कर हम बच्चों की पढ़ाई का पौधा सींचते हैं। आशा लगाये रहते हैं फूलों की, दामन से उलझते हैं शूल ही शूल। हम इतने स्वार्थी भी नहीं कि यह अपेक्षा रखें कि बच्चे अधकचरे पढ़कर हमें शीघ्र ही कमा कर सहारा देने लग जायें। हमारा सर्वोपरि स्वार्थ यही देखने का रह जाता है कि वे सुशिक्षित और सुयोग्य होकर राष्ट्र के उपयोगी अंग बनें। मेरा दुर्भाग्य कि मैं कह नहीं सकता, मेरा ये सपना मेरे किंचित शेष रहे जीवन में पूरा हो भी सकेगा या नहीं। जिस ढंग से स्वातन्त्र्योत्तर काल के सत्ताइस वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में—अंधेर नगरी अनबूझ राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा—चला है उससे तो मालूम होता है कि—वह सपना ही क्या, जो सच हो गया!"

× × ×

[रिपोर्टर की डायरी से अन्तिम पंक्ति, उसके निजी अभिमत की जो हाथ लगी है, वो शायद आप भी पढ़ना चाहेंगे तो ये रही—'राजनीति ने निकम्मा कर दिया वरना ये भी आदमी थे काम के।'—लेखक] ●

[पृष्ठ ६९ का शेषांश]

स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए अब यह बात होठों पर आने लगी है कि यदि राजनीति अपने आप को 'युग-प्रवाह की सहायक' सिद्ध करना चाहती है तो उसे अपनी दिशा और अपने कूल निर्धारित करने ही होंगे। वस्तुतः प्रगति और स्वातन्त्र्य ही ऐसे दो कूल हैं जिनके बीच राजनीति का प्रवाह अपनी सार्थकता पा सकता है। आज उन्मुक्त अन्तरिक्ष नये क्षितिजों की ओर अग्रसर होने का हमें आमन्त्रण दे रहा है। निस्सन्देह यह आमन्त्रण हमारे लिए एक चुनौती है कि हम अपनी संकीर्ण परिधियों को तोड़कर बाहर पहुँचें। अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा पर बराबर दृष्टि रखते हुए अपनी प्रगति को हम नये आयाम दे सकें, हमारे राजनीतिक चिन्तन की मूल दृष्टि यही होनी चाहिए। अपनी स्वतन्त्रता को दाँव पर लगाने वाली राजनीति जनमानस को अधिक दिन तक भ्रम में नहीं रख सकती। व्यापक जन-जागृति का लक्षण है कि राज्य के अधिनायकवाद की प्रवृत्ति को अथवा राज्य को निरंकुशता की सीमा तक सर्वशक्तिमान बनाये जाने की चेष्टा को (चाहे वह कम्युनिस्ट हो अथवा फ़ासिस्ट या समाजवादी) प्रारम्भ में ही नष्ट कर दिया जाय। प्रत्येक व्यक्ति इस बात के लिए कटिबद्ध हो जाय कि उसे अपनी समस्याओं का हल अपने सामाजिक और राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में स्वयं ही खोजना है। व्यक्ति को इस रूप में तैयार करने का काम शिक्षा का है। चालबाजियों और फरेब को अपने पेट में पालने वाली राजनीति शिक्षा की सहचरी न बन सके—आज की यह एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। शिक्षा—हमारे व्यक्तित्व की जननी, फरेबी राजनीति से बाधित होकर हमें कोई विशिष्ट उपलब्धि नहीं दे पा रही है। शिक्षाशास्त्रियों का कर्त्तव्य है कि इस तरह की बाधा से शिक्षा-क्षेत्र को बचाने का उपाय सोचें और ऐसे रचनात्मक आधारों की तलाश करें जो शिक्षा और सच्चाई की राजनीति—दोनों में उभयनिष्ठ सार्थकता स्थापित कर सकें। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण भारत में हमारी शाखा
विद्या मन्दिर, बेंगलूर-२ के
प्रकाशन

अपराजित (उप०)	डा. इन्दिरेश	६.५०
प्रतिमान (कहानी संग्रह)	डा. मंजरी खन्ना	३.००
उर्दू साहित्य का सुबोध इतिहास	डा. कमल	७.००
कन्नड साहित्य का सुबोध इतिहास	प्रो. काशीनाथ हल्ली खेडे	२०.००

हमारे १९७३-७४ के प्रकाशन

जय कृष्णा जय कन्याकुमारी	तेजनारायण टंडन	७.००

डा० दुर्गाशंकर मिश्र द्वारा लिखित

गिरिजा कुमार माथुर और उनका काव्य	१५.००
अज्ञेय का काव्य एक विश्लेषण	१०.००
निराला का काव्य : एक विश्लेषण	६.००
अज्ञेय का उपन्यास-साहित्य लगभग	४५.००
पुण्य स्मृतियाँ (डा. प्रेमनारायण टंडन)	२०.००

एक अध्ययन माला

राजेन्द्र यादव और सारा आकाश	५.००
अज्ञेय और नदी के द्वीप	७.००
आधे अधूरे : एक अध्ययन	३.००
कवि निराला और अपरा	१०.००
छायावाद के प्रतिनिधि कवि	४.००
सात रंग एकांकी (लक्ष्मीनारायण लाल)	३.००
मंगला (शेवडे)	१.५०
मानसरोवर : एक अध्ययन	४.५०
कवि दिनकर और हुँकार	४.५०
मैथिलीशरण गुप्त और भारत भारती	४.५०
कवि दिनकर और कुरुक्षेत्र	४.५०
प्रसाद और जनमेजय का नागयज्ञ	३.५०
प्रसाद और आकाश दीप	२.५०

प्राप्ति स्थान

हिन्दी साहित्य भण्डार
पो० सराय माली खाँ, लखनऊ-३

विद्या मन्दिर (हिन्दी बुक सेंण्टर)
५८८ एवेन्यु रोड, बेंगलूर-२

[पृष्ठ ७२ का शेषांश]

है। इसमें परिवर्तन सहज होता जा रहा है। इसके सर्वेक्षण की आवश्यकता है। परिवार के बाद समाज आता है और इसका दायरा निश्चित ही बड़ा है। परिवार में व्यक्ति अकेला लड़ता है और या तो परिवर्तन होता है या अलगाव। पारिवारिक विघटन को सहज रूप में नहीं लेना चाहिए। समाज की यह लघुतम इकाई है और इसके आधार पर ही समाज की रूपरेखा बनती है और इससे ही समाज शक्तिशाली होता है। इस वर्ग द्वारा यदि समाज का विद्रोह होता है, तो इसे परिवर्तन की सूचना के रूप में ही लेना चाहिए। शिक्षा-संस्थाएँ यदि सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों से प्रभावित होती हैं और तदनुसार यदि युवा-आक्रोश फूट पड़ता है, तो इसे भी केवल परिवर्तन की सूचना के रूप में लेकर उसके कारणों की खोज करने की आवश्यकता है। लोकतन्त्र में शासकीय व्यवस्था को सन्तुलित बनाए रखने के लिए विरोधी दल की आवश्यकता है। यद्यपि शिक्षा-संस्थाओं से इनका सीधा सम्बन्ध नहीं है, तथापि इनका प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप में शिक्षा-संस्थाओं पर पड़ता रहता है। बात इतनी ही है कि आवेग के कारण धन-हानि और जन-हानि न हो। इसका सम्बन्ध अनुशासन से है और इसमें सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ता है। हम विश्वास करते हैं या कम से कम ऐसी आवश्यकता का अनुभव करते हैं कि लाकतंत्र के लाभ, हानि की अपेक्षा अधिक है। शिक्षा यदि अपने मूल प्रयोजन में लोकाभिमुख हो जाएगी तो धीरे-धीरे इस सब में परिमार्जन होगा। स्वतन्त्रता के २७ वर्ष समाप्त होने आ रहे हैं और इस बीच जिस गति से देश का विकास हुआ है, उसमें शिक्षा-व्यवस्था का योगदान निश्चित ही स्वीकार करना पड़ेगा। लोकतन्त्र की व्यवस्था के कारण शिक्षा लोकाभिमुख हो रही है और इसका परिणाम यह भी हो रहा है कि व्यक्ति की अपेक्षा समूह के हित को अधिक स्थान देने की नीति अपनाई जा रही है। इससे व्यक्ति-हित की हानि हो रही है। शिक्षा अब मूल रूप में व्यक्तित्व का विकास या सुसंस्कृत व्यक्ति के निर्माण के प्रयोजन से (सामूहिक हित की भावना के कारण) कुछ हटकर, कुछ और, प्रयोजन की पूर्ति में भी कार्य कर रही है। यह, कुछ और, प्रयोजन ही, राजनैतिक प्रयोजन है, जिसे कहने की आवश्यकता नहीं है। इससे समाज में व्यवस्था बदलने वाली है, इस बात का संकेत मिलता है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा और राजनीति : मनोवैज्ञानिक पहलू

डा० पी० ए० राजु
हिन्दी विभाग, आन्ध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्टनम

भारत के लिए शिक्षा और राजनीति कोई नये क्षेत्र नहीं हैं। प्राचीन काल में कई श्रेष्ठ शिक्षा-केन्द्र फूले-फले थे; कतिपय मर्मज्ञ राजनीतिज्ञ भी हुए थे। परन्तु अधुनातन युग के समान दोनों क्षेत्रों के मध्य तब कोई संघर्ष अथवा आपसी तनाव नहीं था अपितु वे एक-दूसरे के पूरक सिद्ध होते थे। शिक्षा का प्रधान लक्ष्य व्यक्ति का सम्यक् आन्तरिक विकास तथा आध्यात्मिक जिज्ञासा की परितृप्ति करना होता था तो राजनीति भौतिक आवश्यकताओं से व्यक्ति अथवा समाज को मुक्त रखने की चेष्टा में लगी रहती थी। परिणाम यह होता था कि भारत में ज्ञान की स्वच्छ धारा बहती थी; शान्ति की बशी बजती थी।

वर्तमान राजनीति, लक्ष्य की दृष्टि से, कुर्सीपरस्त हो गयी है तो शिक्षा पेशा-प्रधान। दीर्घावधि की पराधीनता के कारण भारत का उपर्युक्त दोनों क्षेत्रों में, जो नैतिक पतन हुआ उसी का कुप्रभाव है कि दोनों के आदर्शों में आज अधिक परिवर्तन आ गया है।

भारत-स्वातन्त्र्य-संग्राम के दौरान राजनैतिक क्षेत्र में जो मनीषी, त्यागी, राजनीतिज्ञ पदार्पण कर चुके थे, वे सब शिक्षा की दृष्टि से भी उद्भट पंडित एवं मर्मज्ञ थे। उनके विशिष्ट व्यक्तित्व तथा आचरण का प्रभाव तत्कालीन युवा पीढ़ी पर जादू की-सी छाप छोड़ चुका था। क्योंकि उनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर युवा पीढ़ी को दृष्टिगोचर ही नहीं हुआ। इसीलिए अपने नेताओं के प्रति उस पीढ़ी के हृदय में विश्वास ही नहीं प्रत्युत् अटूट श्रद्धा-भावना भी तरंगित होती थी। सारांश यह है कि स्वातन्त्र्य-सग्राम के दिनों में भी आज की-सी विषम स्थिति शिक्षा और राजनीति के बीच में नहीं थी। परन्तु आज के विद्यार्थी में बड़ों के प्रति वैसा विश्वास, वैसी श्रद्धा नजर नहीं आती। इसका मनोवैज्ञानिक कारण उपर्युक्त पृष्ठभूमि पर ध्यान देने से स्पष्ट हो ही जायेगा।

इसके अतिरिक्त शिक्षा के क्षेत्र में अब विश्वासों का संकट उत्पन्न होने लगा है। आज के विद्यार्थी पर यह रहस्य भी खुलने लगा है कि वह जिस शिक्षा का अर्जन कर रहा है, उससे वह न घर का रहेगा और न घाट का। इतना ही नहीं, इधर शिक्षा-शास्त्री एवं उधर शासक भी यह घोषित कर रहे हैं कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण है। फिर उसी शिक्षा का शिकार वे युवा पीढ़ी को बना रहे हैं तो युवा पीढ़ी विवश होकर या तो उस शिक्षा-प्रणाली के विरुद्ध विद्रोह करेगी या शिक्षालयों को दूसरे प्रकार के केन्द्र बना देगी।

शिक्षा-व्यवस्था की रीढ़—अध्यापक भी इस विकट एवं संकट के क्षणों में मूक और तटस्थ ही रह जाते हैं। वर्तमान युग में शिक्षा के क्षेत्र में जितने भी सुधार, जोड़-तोड़ सम्पन्न हुए हैं, उनमें से दो-एक को अपवाद मानकर शेष सब राजनैतिक नेताओं के द्वारा ही हुए हैं, न कि शिक्षा-शास्त्रियों के द्वारा। परिणाम यह निकला है कि शिक्षा तथा राजनीति के बीच में दृढ़ समन्वय अथवा सम्पर्क स्थापित करने वाले अध्यापक कई सन्दर्भों में मूक रहने के लिए विवश किये जाते हैं। इस विसंगति को हटाने में अध्यापक भी शिक्षा और तत्सम्बन्धी नीति के प्रति प्रतिबद्ध किये जायें तथा इसके लिए आवश्यक साधन, शक्ति, सम्पत्ति आदि उपलब्ध किये जायें तब ही राजनीति के अनावश्यक हस्तक्षेप से शिक्षा-क्षेत्र बच पायेगा, और शिक्षा और राजनीति के बीच का संघर्ष भी समाप्त हो जायेगा। राजनीति के प्रति युवा पीढ़ी की अनास्था अध्यापक के प्रति आस्था का रूप धारण कर लेगी। इस प्रकार धीरे-धीरे युवा पीढ़ी तथा शिक्षक—दोनों के मानसिक धरातल पर उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य-भावना के बीज अंकुरित होने लगेंगे। तब शिक्षा-क्षेत्र से राजनीति की जड़ें तो कोसों दूर रहेंगी परन्तु फल-फूल तो उसके आंगन में नित्य ही झरते रहेंगे। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत पुस्तक का लेखन—बी० एड० परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों के परिवर्तित स्वरूप को निरन्तर ध्यान में रखकर किया गया है। इसीलिए, भारतीय शिक्षा की समस्याओं के सम्बन्ध में विभिन्न समितियों एवं आयोगों, विशेषत: कोठारी कमीशन के विचारों को संकलित करके यथास्थान प्रस्तुत किया गया है। साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में किये जाने वाले विभिन्न परीक्षणों एवं सर्वेक्षणों पर आधारित आंकड़ों एवं तथ्यों को भी उपस्थित किया गया है।

भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ

पी० डी० पाठक

सजिल्द संस्करण
मूल्य : पन्द्रह रुपये

विनोद पुस्तक मन्दिर
डा. रांगेय राघव मार्ग, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा और विभिन्न राजनीतिक दल

श्री डोरीलाल अग्रवाल
सम्पादक—'अमर उजाला', आगरा

शिक्षा की विभिन्न पद्धतियाँ भारत, चीन, ग्रीक और रोम की संस्कृतियों से विकसित हुईं। आज का भारत शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है लेकिन ईसा से भी एक हजार वर्ष पूर्व भारत साहित्य, संस्कृति और शिक्षा का विकसित केन्द्र था। हमारी अध्यात्म-विद्या एवं गणित उस काल में ही उन्नत थे और साथ ही विद्या की अनेक अन्य शाखाएँ विकसित हो रही थीं। हमारे गुरुजन ६० से भी अधिक कलाओं में शिक्षा प्रदान करते थे और जनसंख्या का लगभग ६० प्रतिशत भाग शिक्षित था। चीन में ईसा से २००० वर्ष पूर्व लिखित साहित्य और विद्या-मन्दिर मौजूद थे। पश्चिमी देशों की शिक्षा का स्रोत ईसा पूर्व की चौथी और पाँचवीं शताब्दी की प्राचीन ग्रीक की देन है। प्राचीन रोम में ईसा पूर्व के २०० वर्षों में शिक्षा-प्रसार अतीव उत्साह के साथ हुआ।

शिक्षा का उद्देश्य प्राचीन सभ्यता के देशों में देश और काल की परिस्थिति के अनुकूल रहा। भारत में यह उद्देश्य कदाचित् धार्मिक अनुशासन और शुद्ध जीवन व्यतीत करते हुए मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होना था। जबकि ग्रीक में इसका उद्देश्य नगर राज्यों को बाह्य आक्रमणों से बचाने हेतु कुशल योद्धा तैयार करना था। चीन में प्राचीन काल में शिक्षा के उद्देश्य के प्रति अधिक दिव्य दृष्टि अपनाई गई, वहाँ भारत की भाँति शिक्षा को धार्मिक अनुशासन और अध्यात्म-विद्या तक केन्द्रित न रख कर जीवन की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समस्याओं के समाधान का माध्यम रखा गया। आधुनिक युग में भी शिक्षा का यही उद्देश्य है। इसी उद्देश्य को सामने रख कर अमरीका विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली एवं सम्पन्न देश बन गया। यूरोप में विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा अपनी चरम उन्नति पर पहुँची। समाजवादी देशों के अग्रज सोवियत संघ ने भी क्रान्ति के बाद कमोबेश यही उद्देश्य अपनाया। स्वाधीनता के पश्चात् भारत में भी शिक्षा का उद्देश्य यही है और समस्त विकासशील एवं नव-स्वतन्त्र देशों के लिए भी शिक्षा का यही उद्देश्य हो सकता है।

लेकिन पराधीनता-काल में भारत शिक्षा के क्षेत्र में इतना अधिक पिछड़ गया कि अभी तो पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य भी वह अर्जित नहीं कर पाया और न कोई ऐसी नीति अपनाई जा सकी जो देश की विशाल जनसंख्या की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं को सही रूप में हल करने का पथ प्रशस्त कर सके। ईसा पूर्व काल में भारत शिक्षा के क्षेत्र में इतना भाग्यशाली था कि जनसंख्या के ६० प्रतिशत तक लोग शिक्षित थे। उस समय बिना किसी भेद-भाव के सभी को विद्यार्जन का अवसर प्राप्त था। बाद में जब जातिवाद एवं अन्य गलत बातें पनपीं और विद्यार्जन एवं विद्यादान पर ब्राह्मण-समुदाय का एकाधिकार हो गया तो न केवल वैदिक साहित्य के वरन् युद्ध-विद्या और वाणिज्य आदि के विषय जो इसके बाहर के थे, उनके भी अध्यापक ब्राह्मण ही बन बैठे। सवर्णेतर जातियों एवं शूद्रों के लिए शिक्षा ग्रहण करना वर्जित कर दिया गया। परिणामस्वरूप गिरावट यहाँ तक हुई कि द्वितीय विश्व-महायुद्ध से पूर्व भारत की केवल १० प्रतिशत जनसंख्या साक्षर रह गई।

मध्यकाल में विदेशी आक्रामक आते रहे और अपना खेल खेलते रहे। उनकी कोई दिलचस्पी भारतीय जनता को गुणी बनाने में नहीं थी जबकि प्राचीन शिक्षा-पद्धति और जातीय विद्वेष के आधार पर खड़ी की गई दीवारें भारतीयों को दास बनाये रखने में उनके मनोरथ को पूरा करने में पूर्ण सहायक थीं। अंग्रेजों के आधिपत्य-काल का ही उदाहरण लें। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में शिक्षा-प्रसार की ओर स्वतः ही कोई ध्यान नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया। १८१३ में ब्रिटिश संसद ने उसको निर्देश दिया कि वह हर वर्ष कुछ रुपया हिन्दुस्तानियों की शिक्षा के लिए रखे। लेकिन इस पर भी ध्यान नहीं दिया गया। दस वर्ष बाद बंगाल और मद्रास के लिए एक-एक शिक्षा समिति का गठन हुआ। इसके बाद फिर मामला ठप्प हो गया क्योंकि विवाद इस मुद्दे पर उठ खड़ा हुआ कि प्राच्य-शिक्षा दी जाय अथवा पश्चिमी ढंग की शिक्षा। १८३५ में मेकॉले ने निर्णय दिया कि भारत में पश्चिमी ढंग की शिक्षा दी जाय और शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा हो। १८५६ में भारत का प्रशासन ब्रिटिश ताज के अधीन आया और उसने शिक्षा का विषय प्रान्तीय सरकारों को हस्तांतरित कर दिया। अंग्रेजी राज्य में पश्चिमी ढग की शिक्षा और वह भी कुछ उच्च वर्ग को देने का उद्देश्य भारत में ब्रिटिश प्रशासन के लिए 'बाबू' तैयार करना था। यह बात अलग है कि अपनी प्रतिभा और देशभक्ति से, अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा प्राप्त अनेक भारतीयों ने ही भारतीय राष्ट्रवाद का जागरण किया।

दुर्भाग्य की बात है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के २७ वर्षों के बाद भी शिक्षा-क्षेत्र में सही नीतियों और रवैयों का निर्धारण अभी तक नहीं हो पाया। अंग्रेजों ने शिक्षा को प्रान्तीय विषय बना दिया था और यह शिक्षा के प्रति उनके उपेक्षा-भाव का परिणाम था। भारतीय शासकों का भी यही रवैया है। शिक्षा आज राज्यों का विषय है। परिणाम यह है कि समूचे देश की शिक्षा-पद्धति में कोई एकरूपता नहीं है। विश्वविद्यालय स्वायत्तशासी हैं। एक ही राज्य में कई-कई विश्वविद्यालय हैं और उनके पृथक् पाठ्यक्रम और पृथक् परीक्षा-पद्धतियाँ हैं। समूचे शिक्षा-क्षत्र में घोर अराजकता व्याप्त है। समस्याओं को हल करने की विफलता को छिपाने अथवा समस्याओं को टालने के लिए अंग्रेजों से कमेटी और आयोग बिठाने की जो सीख हमने सीखी, उसको स्वतन्त्र भारत के शासकों ने शिक्षा-क्षेत्र में अभी तक अपनाया हुआ है। अनेक आयोग बने; प्रतिवेदन के पोथे प्रस्तुत हुए. उन पर अमल आज तक नहीं हुआ। कोठारी आयोग की सिफारिशों पर आधारित शिक्षा-नीति १९६८ में तैयार की गई जिसके खास मुद्दे ये हैं : (१) १४ वर्ष तक के बालक-बालिकाओं को मुफ्त शिक्षा, (२) शिक्षकों की हैसियत के अनुसार, उनके वेतन और शिक्षा में सुधार, (३) क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के लिए त्रिभाषा फार्मूला, (४) विज्ञान एवं शोध की शिक्षा, (५) कृषि एवं उद्योग के विकास के लिए शिक्षा, (६) कम कीमत की पाठ्य-पुस्तकों की किस्म और उत्पादन में सुधार, और (७) राष्ट्रीय राजस्व का ६ प्रतिशत शिक्षा पर व्यय। इस नीति के अधीन शिक्षा बढ़ रही है लेकिन उपलब्ध युवाशक्ति एव शिक्षा के माध्यम से उसकी उपयोगिता पर हम दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि घोर अराजकता पैदा कर दी गई है। नीति पर भी पूरा अमल नहीं है। त्रिभाषा फार्मूला देश के अधिकांश भागों में लागू नहीं हो पा रहा। पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य भी अभी तक अर्जित नहीं हुआ—१९७१ की जनगणना के अनुसार ५ पीछे २ व्यक्ति अभी निरक्षर अथवा अंगूठा-छाप हैं। विशाल ग्रामीण अंचल के स्कूलों में बैठने को टाट-पट्टी तक नहीं और न अच्छे शिक्षक। शहरी सरकारी एवं म्युनिस्पिल स्कूलों की दशा भी अच्छी नहीं है। स्कूली कक्षाओं में पाठ्य-पुस्तकों और नोट्स का इतना अधिक बोझ लाद दिया गया है कि उन सबको पढ़ना बालक की शक्ति से परे है। प्रचार निःशुल्क शिक्षा का है लेकिन स्कूली शिक्षा पर ही इतना अधिक व्यय होता है कि हरेक के लिए प्राइमरी स्तर पर भी अपने बालकों को पढ़ाना संभव नहीं। माध्यमिक एवं विश्वविद्यालयीय स्तर पर लाखों छात्र-छात्राएँ निष्प्रयोजन समय काटने के लिए अथवा फर्जी डिग्री हासिल करने के लिए पढ़ रहे हैं। हमारा नियोजन ऐसा है कि पढ़ाई के पश्चात् उनमें से अधिकांश के लिए न कृषि में काम उपलब्ध है, न उद्योग में। सरकारी नौकरियाँ निस्संदेह सीमित ही हो सकती हैं। देश में मोटे आँकड़ों के अनुसार दो करोड़ बेरोजगार लोगों में से शिक्षित बेरोजगारों की वर्तमान संख्या ४० लाख से अधिक है और इसमें प्रतिदिन वृद्धि हो रही है।

कोई नहीं जानता कि भविष्य में क्या होगा। हमारे युवक-युवतियों के न तो समुचित मानसिक विकास का कोई सिलसिला है और न शिक्षा और उसके साथ नियोजन को उपयोगी बनाया जा रहा है। सर्वाधिक दुर्भाग्य की बात है कि हमारे तरुणों की कोमल भावनाओं से राजनैतिक दलों ने अपने स्वार्थों का खेल

[शेष पृष्ठ ९० पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनतन्त्रात्मक व्यवस्था में शैक्षिक आदर्श

डॉ० सरयू प्रसाद चौबे
शिक्षा विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

जनतन्त्र एक ऐसी व्यापक व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति से सम्बन्धित सांस्कृतिक राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक आदि सभी क्षेत्र समाविष्ट हो जाते हैं। परन्तु खेद है कि प्रधानत: मनुष्य ने इसे अभी तक राजनीतिक क्षेत्र में ही स्वीकार किया है। फलतः जनतन्त्रात्मक व्यवस्था को स्वीकार कर लेने पर भी असहनशीलता, वर्गवाद, धार्मिक विरोध, शोषण तथा जातिगत विद्वेष आदि अवगुण अब भी समाज में विद्यमान हैं और हम उनको दूर करने में असफल हो रहे हैं। अत: यह आवश्यक है कि हमारे जीवन के व्यक्तिगत तथा सामूहिक क्षेत्र में जनतन्त्रात्मक विचारों का समावेश हो और समाज का प्रत्येक व्यक्ति तदनुकूल आचरण करे तभी हम इस पृथ्वी पर रामराज्य की स्थापना कर सकते हैं।

जनतन्त्र की व्यावहारिकता

समता, अधिकारों की सुरक्षा, बन्धुत्व की भावना तथा स्वतन्त्रता का जनतन्त्र में विशेष महत्त्व है। इन महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के होते हुए भी जनतन्त्र के प्रति कभी-कभी लोगों में सन्देह उत्पन्न हो जाता है। ऐसा तब होता है जब हम जनतन्त्र को केवल राजनैतिक क्षेत्र तक ही सीमित रखते हैं। जनतन्त्र के प्रति संदेह को दूर करने के लिए हमें उसे धार्मिक आधार देना होगा तब जनता उसे सहर्ष स्वीकार करेगी। यदि हम अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जनतन्त्र की सत्ता व्यापक रूप में स्वीकार कर लें तो निश्चय ही धीरे-धीरे पूरा समाज जनतन्त्र के प्रति आस्था रखने लगेगा।

जनतन्त्रात्मक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी उन्नति करने का सुअवसर प्राप्त होता है। अतः प्रत्येक अपनी क्षमता के अनुसार जीवन के किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ सकता है। यही कारण है कि जनतन्त्रात्मक व्यवस्था में शासित और शासक में बहुत अन्तर नहीं होता। जनतन्त्र एक जीवन-दर्शन है। इसमें मानव समाज के अनन्त अनुभव अन्तर्निहित हैं। जनतन्त्र के कुछ मूल आदर्श इस प्रकार हैं :—

(१) **व्यक्तित्व की सुरक्षा तथा आदर**—जनतन्त्रात्मक व्यवस्था में व्यक्ति को संसार में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अत: प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का आदर करना आवश्यक समझा जाता है।

(२) **स्वतन्त्रता**—जनतन्त्र में प्रत्येक को अपने विचार प्रकट करने तथा निष्पक्ष आलोचना करने का अधिकार होता है।

(३) **मत-प्रकाशन का अधिकार**—राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मान्यताओं के निर्माण में जनतन्त्र में व्यक्ति को स्वतन्त्र रखा जाता है। अत: इन सबके सम्बन्ध में वह अपने मत प्रकाशित करने में किसी अवरोध का अनुभव नहीं करता।

(४) **मानव-शक्ति पर विश्वास**—जनतन्त्र, मानव की शक्ति पर अटूट विश्वास रखता है। अतः उसकी समस्त शक्तियों को सुविकसित करने के लिए आवश्यक अवसर देने का प्रयत्न किया जाता है।

(५) **स्वतन्त्रता तथा समानता की भावना**—जनतन्त्रात्मक व्यवस्था में प्रत्येक को स्वतन्त्र तथा समान अधिकार दिया जाता है।

(६) **शांति का आदर**—जनतन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति को विकास करने के लिए पूर्ण अवसर दिया जाता है। इस कारण शांति को महत्त्वपूर्ण स्थान मिल जाता है। अत: प्रत्येक से अपेक्षा होती है कि वह युद्ध और कलह के मार्ग को छोड़कर शांतिपूर्वक परस्पर विचार-विनिमय द्वारा समस्याओं का समाधान खोजे।

(७) **अल्पसंख्यकों की सुरक्षा**—जनतन्त्रात्मक व्यवस्था में अल्पसंख्यकों के हित पर पूरा ध्यान दिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे ये महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

(जो आपके पुस्तकालय की शोभा हैं)

आलोचना

- भारतीय महाकाव्यों की परम्परा में कामायनी — डा० विद्या टोपा — ४५.००
- छायावाद — डा० उदयभानु सिंह — १५.००
- भारतीय काव्यशास्त्र — ,, — १२.००
- भाषाविज्ञान के सिद्धान्त — डा० रामेश्वर दयाल अग्रवाल — ७.५०
- महाकवि विद्यापति — डा० कृष्णनन्दन 'पीयूष' — २०.००
- प्रेमचन्द — डा० प्रताप नारायण टंडन — ९.००
- नंददास — रमेश कुमार खट्टर — २५.००
- समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र सृष्टि — जयदेव तनेजा — २५.००
- जायसी की प्रेम साधना — डा० आर० सी० विल्लौरे — ४५.००

उपन्यास

- एक असंभव मृत्यु — प्रदीप पंत — १०.००
- एक अदद औरत — डा० मस्तराम कपूर — ५.००
- गुड़ियों का खेल — समरेश वसु — ६.००
- उत्तरंग — ,, — १२.००
- फेराव — ,, — ७.५०
- कोयले का टुकड़ा — डा० वरदराजन — ६.००
- जय बाँगला — सुरेन्द्रनाथ — ७.५०
- अहल्या — इन्दुभूषण — १०.००
- पहचानी हुई शक्लें — श्रीराम शर्मा राम — १०.००
- आकृतियाँ और दायरे — ब्रह्मदेव — ६.५०
- सन्धुनद का प्रहरी — प्रमथनाथ विशी — ६.००

विविध

- समाज मनोविज्ञान — कृष्णदत्त द्विवेदी — ९.००
- छात्र आन्दोलन समस्या और समाधान — राजेन्द्र मोहन भटनागर — २०.००
- आधुनिक हिन्दी निबन्ध — ,, — ५.००
- सरल हिन्दी व्याकरण तथा रचना — ,, — ५.००

बाल एवं किशोर साहित्य

(सजिल्द एवं सचित्र)

कहानियाँ

- भारतीय वीरांगनाओं की कहानियाँ — विनोद वाला शर्मा — ३.५०
- भारतीय वैज्ञानिकों की कहानियाँ — श्यामलाल 'मधुप' — ३.५०
- राष्ट्रीय एकता की प्रेरक कहानियाँ — श्री व्यथित हृदय — ३.५०
- आदर्श जीवन की आदर्श गाथाएँ — श्री व्यथित हृदय — ३.५०
- सांस्कृतिक गाथाएँ — रामकृष्ण शर्मा — ३.००
- नानी कहे कहानी — वलवीर त्यागी — ३.५०
- चरित्र निर्माण की कहानियाँ — श्री व्यथित हृदय — ४.००
- भारतीय किशोरों की कहानियाँ — श्यामलाल 'मधुप' — ४.००

उपन्यास

- एकलव्य — रामकृष्ण शर्मा — ३.५०
- लव-कुश — ,, — ३.५०
- अभिमन्यु — श्री प्रदीप — ३.००
- ध्रुव — वलवीर त्यागी — ३.००
- श्रवणकुमार — महेश भारद्वाज — ४.००
- राजा राममोहन राय — नन्दिता — ४.००

सामयिक प्रकाशन

३५४३ जटवाड़ा, दरियागंज, दिल्ली–६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८) **बन्धुत्व की भावना**—परस्पर बन्धु भाव का आचरण जनतन्त्र की रीढ़ समझी जाती है। यह भाव विश्व-बन्धुत्व की भावना को भी जाग्रत करता है।

(९) **सहयोग तथा सामूहिक हित की भावना**—जनतन्त्र के लिए आवश्यक है कि सहयोग तथा सामूहिक हित की भावना का विकास किया जाय, क्योंकि इसके बिना हम समाज को समृद्ध नहीं बना सकते।

उपर्युक्त आदर्शों के कार्यान्वयन हेतु हमें व्यक्ति की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना होगा, क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिससे व्यक्ति में आवश्यक गुणों का विकास करना सम्भव है। कहना न होगा कि जनतन्त्र की सफलता के लिए अच्छी शिक्षा की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है।

जनतन्त्रात्मक व्यवस्था में शिक्षा

योग्य नागरिकों पर ही जनतन्त्र की सफलता निर्भर होगी। अतः व्यक्ति को समुचित शिक्षा देकर उसमें इस प्रकार विवेक और बुद्धि जागृत करनी होगी कि वह व्यक्तिगत हित, सामाजिक हित, स्वाधीनता तथा राज्य के प्रति अपने कर्तव्य आदि विषयों को समझ सके। जनतन्त्र के आदर्शों को हृदयंगम करने के बाद उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उतारने पर ही जनतन्त्र की सार्थकता निर्भर होगी। वही जनतन्त्र सफल समझा जायेगा जहाँ व्यक्ति और समाज एक-दूसरे का पूरक माना जाता है। व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित के प्रति हमारे उत्तरदायित्व को समझाने में शिक्षा ही सफल हो सकती है। शिक्षा से ही व्यक्ति की भावनाओं को इस प्रकार परिष्कृत किया जा सकता है कि जनतन्त्रात्मक आदर्शों से उसका सारा व्यक्तित्व ही ओत-प्रोत हो जाए। ऐसी शिक्षा-व्यवस्था उत्पन्न करना जनतन्त्र की सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

जनतन्त्रात्मक शिक्षा के आदर्श

योग्य नागरिक उत्पन्न करना ही जनतन्त्रात्मक शिक्षा का आदर्श है। व्यक्तिगत और सामाजिक हित में समन्वय स्थापित करना अच्छे नागरिक के लिए ही सम्भव हो सकता है। जनतन्त्र तभी सफल हो सकता है जबकि प्रत्येक नागरिक समता, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा सहयोग और सहनशीलता के गुणों से युक्त होकर समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करता रहे। इन गुणों का प्राप्त करना ही शिक्षा का परम उद्देश्य होना चाहिए। व्यक्ति समाज में रहता है और समाज से ही उससे आवश्यक शक्तियाँ और सहायताएँ प्राप्त होती रहती हैं। अतः शिक्षा का यह भी लक्ष्य हो जाता है कि अच्छा समाज किस प्रकार बनाया जाए। अच्छे नागरिकों से ही अच्छा समाज बन सकता है। अतः पुनः दोहराना आवश्यक हो जाता है कि सारा उत्तर-दायित्व अच्छे व्यक्तित्व के निर्माण पर ही निर्भर है। शिक्षा से व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक विकास इस प्रकार करना है कि वह समाज में रहते हुए अपना जीवन इस प्रकार व्यतीत करे कि समाज के सुख-दुःख से सदैव अपना आत्मसात् करता रहे। तभी सामाजिक जीवन ऐसा बन सकता है कि उसमें व्यक्ति का हित सदैव सुरक्षित रहेगा। इसलिए हमारी शिक्षा-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि उससे व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास भी हो और साथ ही साथ सामाजिक हित रक्षित रहे।

जनतन्त्रात्मक व्यवस्था में शिक्षा के उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के सन्दर्भ में समाज का गुरुतर उत्तर-दायित्व है। समाज को व्यक्ति के लिए ऐसा वातावरण उपलब्ध करना है कि व्यक्ति का सर्वाङ्गीण विकास अविरल गति से चलता रहे और साथ ही व्यक्ति भी समाज के प्रति सदैव कर्तव्यनिष्ठ बना रहे। स्पष्ट है कि जनतन्त्रात्मक शिक्षा की व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति के विकास और सामाजिक हित में कहीं विरोध न होकर दोनों में सन्तुलन होगा।

उपर्युक्त शैक्षिक आदर्शों के सन्दर्भ में यह संकेत करना आवश्यक है कि बालकों के लिए हमें ऐसा पाठ्य-क्रम बनाना चाहिए जिसमें जीवन के विविध अनुभव सम्मिलित हों। पाठ्यक्रम में क्रियाशीलता और विभिन्न विषयों के परस्पर-सम्बन्ध पर विशेष बल देना होगा। इसके फलस्वरूप जनतन्त्रीय शिक्षण-पद्धति भी एक मनोवैज्ञानिक आधार लेकर व्यक्ति की योग्यता एवं विचारधारा को उपयुक्त दिशा में समुचित रूप से परिष्कृत करेगी। देश का प्रत्येक व्यक्ति चरित्रवान्, अनुभवी, स्वतन्त्र विचारक, समाज हितैषी, कर्मठ, उदार और प्रगतिशील हो—यही हमारी जनतन्त्रात्मक शिक्षा-व्यवस्था का मूलमन्त्र होगा।

हमारी जनतन्त्रात्मक व्यवस्था में शिक्षा के स्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निर्धारण किसी एक व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियों द्वारा नहीं होगा। इस सन्दर्भ में हम सहयोग पर विशेष ध्यान देंगे। अतः जनतन्त्रात्मक शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षक, विद्यार्थी, जनता तथा शासक सभी का सहयोग आवश्यक होगा। इस व्यवस्था में शिक्षक का उत्तरदायित्व बालकों की रुचि एवं योग्यता तथा समाज हित को ध्यान में रखकर पाठ्य-वस्तु का चयन करना होगा। पाठ्य-वस्तु का चयन इस प्रकार करना होगा कि बालकों का सर्वाङ्गीण विकास हो सके और उनमें विश्व-बन्धुत्व की सक्रिय भावना कूट-कूट कर भर जाए। इस सन्दर्भ में विद्यार्थी का भी यह कर्तव्य होगा कि शिक्षक के इस लक्ष्य की प्राप्ति में अपनी रुचि एवं योग्यता के आधार पर पूर्ण सहयोग दे। जनता का भी दायित्व शिक्षक के साथ पूर्ण सहयोग का होना आवश्यक है। शासक को चाहिए कि आवश्यक आर्थिक सहायता प्रदान करते हुए शिक्षक को समाज में उचित सम्मान दे और किसी भी शिक्षा-संस्था को वर्ग या जातिवाद के आधार पर शोषण-वृत्ति न अपनाने दे।

विद्यालय के संगठन में विद्यार्थी और शिक्षकों को समुचित स्वतन्त्रता प्रदान करनी होगी। स्पष्ट है कि इस स्वतन्त्रता में उच्छृंखलता को स्थान नहीं देना है। स्वतन्त्रता की सीमा व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण विकास से सदैव बँधी रहेगी जिससे सभ्यता और संस्कृति की सदैव अभिवृद्धि होती रहे। हमने अपने देश में अपनी जनतन्त्रात्मक व्यवस्था को दृढ़ बनाने का व्रत लिया है। अतः उचित होगा कि हमारे देश का प्रत्येक नागरिक रूढ़िवाद तथा संकीर्ण विचारधारा को छोड़कर भाईचारे तथा विश्व-बन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत होकर अपने जीवनक्रम को चलाये। अभी हमारे देश की शिक्षा जनतन्त्रात्मक शिक्षा के आदर्शों से बहुत दूर है। यही कारण है कि हमारे जीवन के विविध क्षेत्रों में; जैसे—सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक आदि में जनतन्त्रात्मक आदर्श जड़ नहीं पकड़ पाये हैं। हमारे जीवन के विविध क्षेत्रों में जनतन्त्रात्मक आदर्शों का ही रग रहे, इसलिए आवश्यक है कि उक्त शैक्षिक आदर्शों के अनुसार देश की शिक्षा ढाली जाय। ●

हमारे श्रेष्ठ प्रकाशन

डा. एम. एल. गुप्त : आधुनिक भाषा-विज्ञान	25.00
डा. छविनाथ त्रिपाठी : मध्यकालीन कवियों के काव्य सिद्धान्त	30.00
डा. एम. पी. भारद्वाज : मध्यकालीन रोमांस	30.00
डा. बी. एल. शेट्टी : सूरसागर में प्रतीक योजना	25.00
डा. एस. के गोस्वामी : नागपुरी शिष्ट साहित्य	25.00
डा. रामगोपाल शर्मा : स्वाधीनता-कालीन हिन्दी साहित्य के जीवन-मूल्य	15.00
डा. हरिचरण शर्मा : नयी कविता : नये धरातल	30.00
प्रो. शम्भूसिंह मनोहर : मीरां पदावली	25.00
डा. नेमीचन्द जैन : बिहारी सतसई	35.00
प्रो. शुक्ला एवं शर्मा : घनानन्द कवित्त	25.00
प्रो. सत्येन्द्र : प्रेमचन्द और गबन	25.00
डा. राजकुमार पाण्डेय : साहित्यिक निबन्ध	30.00
डा. नेमीचन्द जैन : प्रसाद और चन्द्रगुप्त	15.00
डा. नेमीचन्द जैन : बेलि क्रिसन रुक्मिणी-री	30.00
प्रो. राजकुमार शर्मा : गुप्त और उनका साकेत	40.00
प्रो. राजकुमार शर्मा : प्रसाद और कामायनी	15.00
प्रो. राजकुमार शर्मा : निराला और तुलसीदास	15.00
प्रो. राजकुमार शर्मा : पन्त और उनका आधुनिक कवि	20.00
प्रो. राजकुमार शर्मा : जायसी और पद्मावत	15.00
डा. कृष्णविहारी सहल एवं सत्येन्द्र पारीक : तुलसीदास : रामचरित मानस	25.00
डा. उदयवीर शर्मा : पालि दर्शन	20.00
प्रो. राजकुमार : उपाध्याय और प्रियप्रवास	25.00
डा. गुरदीपसिंह खुल्लर : ऐतिहासिक उपन्यास और ऐतिहासिक रोमांस	30.00

Please Contact

Research Publications in Social Sciences

Publishers, Booksellers & Library Suppliers

2/44 Ansari Road, Daryaganj
DELHI-6 Phone 275125

Tripolia Bazar
JAIPUR-2 (Raj.) Phone 75827

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजातन्त्र, राजनीति एवं शिक्षा

श्री सत्य प्रकाश पचौली
शिक्षा महाविद्यालय, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म० प्र०)

शिक्षा की संकल्पना हर युग में बदलती रही है। शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है तथा समाज और राज्य से उसका सदा निकट का सम्बन्ध रहा है। जैसा समाज होगा तथा जैसी राज्य की व्यवस्था होगी या नीतियां होंगी, वैसी ही शिक्षा होगी। यह कहा जा सकता है कि राज्य की नीतियों का प्रभाव शिक्षा पर उसी समय से पड़ना आरम्भ हो चुका था जब से राज्य की उत्पत्ति हुई। प्राचीन भारत में गुरुकुल प्रणाली के समय अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा पर राज्य का प्रभाव रहता था। शिक्षा केवल उन्हीं को प्रदान की जाती थी जो राजकार्य चलाने में सक्षम थे। पाठ्यक्रम में भी राजनीतियों, युद्ध नीतियों को विशेष रूप से स्थान दिया जाता है। सैनिक शिक्षा अनिवार्य थी। इसके विपरीत जनसाधारण को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। प्राचीन भारत के प्रसिद्ध विचारक आचार्य मनु ने भी अपनी वर्ण-व्यवस्था के अनुसार केवल ब्राह्मणों एवं राजवंश के क्षत्रियों को ही शिक्षा के योग्य बतलाया है अर्थात् केवल उन्हीं को शिक्षित किया जाना चाहिए। तत्कालीन राज्यों की नीतियां भी शिक्षा के प्रति आचार्य मनु के विचारों के अनुसार ही थी। दूसरी और मौर्य साम्राज्य के समय के राजनीति निर्धारक आचार्य कौटिल्य (चाणक्य) ने प्रजा को शिक्षित करने के कार्य को राज्य या राज्य के परम कर्तव्यों में माना है। इस बात से यह आभास मिलता है कि चाणक्य, राज्य के प्रति प्रजा की भक्ति को बनाये रखने के लिए शिक्षा को भी एक साधन के रूप में प्रयोग करने का पक्षपाती था। मध्यकालीन भारत में भी शालाओं में छात्रों को राजा के गुणगान करने के लिए प्रेरित किया जाता था। बदले में राज्य की ओर से इन शालाओं को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी।

यूरोप में प्राचीन समय से ही शिक्षा के उद्देश्य राज्य की नीतियों के अनुसार निर्धारित होते रहे हैं। यूरोप के प्राचीन नगर राज्यों—स्पार्टा तथा एथेन्स में शिक्षा पर राज्य के नियंत्रण स्पष्ट दिखलाई देते हैं। स्पार्टा की शिक्षा तो पूर्णत: राज्य-नियंत्रित थी। वहाँ की शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य था—'राज्य के लिए बलिष्ठ सैनिक तैयार करना'। एथेन्स की शिक्षा में व्यक्तिवाद की छाप होते हुए भी, राज्य का नियंत्रण दिखलाई पड़ता है। शिक्षा वहाँ राज्य की देखरेख में ही दी जाती थी तथा उसके द्वारा नागरिकों में 'राज्य हितों' को ही सर्वोपरि मानने की भावना पैदा की जाती थी। सुकरात की राजनैतिक हत्या भी उसके शिक्षा के प्रति अपनाये जाने वाले 'व्यक्तिवाद' के कारण ही हुई थी। उस समय की रोमन शिक्षा का उद्देश्य प्रजा को राज्य के प्रति उनके कर्तव्यों का ज्ञान कराना था, जो कि पूर्णत: राजनैतिक था। अफलातून (प्लेटो) ने अपने राजनैतिक ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में शिक्षा पर बहुत जोर दिया है। वह राज्य की सफलता तथा स्थायित्व के लिये शिक्षा को एक महत्वपूर्ण तत्त्व मानता था। इसी कारण शिक्षा पर राज्य के पूर्ण नियंत्रण का वह समर्थक रहा। वह शिक्षा द्वारा ऐसे नागरिकों का निर्माण चाहता था, जो राज्य के प्रति सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर रहें। अफलातून का शिष्य अरस्तू तो उससे दो कदम आगे बढ़कर कहता है कि 'मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है'। उसका मत था कि शिक्षा का विशेष महत्त्व राज्य की सुस्थिरता तथा सुरक्षा के लिये अधिक होना चाहिए। राज्य के अनुकूल मानव इच्छाओं को नियंत्रित करने वाली शिक्षा के रूप में वह अपने गुरु की तरह ही शिक्षा को पूर्ण राज्य नियंत्रित रखने का पक्षपाती था। उपर्युक्त आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन समय से ही सत्ता की राजनीति के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में रही है।

वर्तमान समय की परिस्थितियों और दशा को देखकर यह निष्कर्ष बड़ी आसानी से निकाला जा सकता है कि राजनीति और शिक्षा क्रमशः अधिकाधिक नजदीक आती जा रही हैं। अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि राजनीति शिक्षा के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर अपनी दखलन्दाजी रखने लगी है या रखने को उत्सुक होती जा रही है। विश्व का कोई भी राष्ट्र चाहे वहाँ किसी भी राजनीतिक पद्धति वाला शासन हो, शिक्षा-क्षेत्र को किसी भी हालत में नज़र-अन्दाज नहीं करना चाहता है, चाहे वह साम्यवादी देश हो, तानाशाही, अराजकतावादी या प्रजातांत्रिक पद्धति अपनाने वाली सत्ताएँ हों। आज उन्हें अपने लिये यदि सबसे अधिक भय है तो वह शिक्षा के क्षेत्र से ही है। इसके प्रमुख रूप से दो कारण हैं :—पहला, देश की युवा जनसंख्या का अधिकांश भाग का शिक्षा-क्षेत्र में होना तथा दूसरा, युवा वर्ग का 'प्रगतिशील बुद्धिवाद' की ओर अधिकाधिक झुकाव होना। दोनों ही कारण उन्हें किसी भी सत्ता के विरुद्ध या पक्ष में आन्दोलन करने को किसी भी समय तैयार कर सकते हैं। इसके बहुत अच्छे उदाहरण एशिया में ही इण्डोनेशिया, पाकिस्तान तथा थाईलैण्ड हैं जहाँ की सत्ताएँ क्रमशः सुकर्ण, अयूबखान तथा थानम कित्तिकाचरण के हाथों से उन देशों के युवा छात्रों द्वारा छीन ली गई थीं। एथेन्स की पापादोपुलोस की सत्ता का तख्ता भी वहाँ के छात्रों द्वारा ही पिछले वर्ष पलट दिया गया था। भारत में पिछले आम चुनाव में इन्दिरा गांधी की पार्टी देश के नवशिक्षित युवा वर्ग के समर्थन के कारण ही आश्चर्यजनक बहुमत प्राप्त कर सकी थी तथा अभी हाल में ही गुजरात राज्य की सरकार का तख्ता भी छात्रों द्वारा ही उल्टा गया था।

उपर्युक्त उदाहरणों को देखते हुये कहा जा सकता है कि राज्य सत्ताएँ अपने स्थायित्व के लिये शिक्षा को अपने अनुकूल बनाने में सदा प्रयत्नशील रहती हैं। प्रजातांत्रिक राज्यों में यह भावना और भी अधिक जोर पकड़ती जा रही है। इस तथ्य को जानने के पहले प्रजातंत्र, राजनीति और शिक्षा को विभिन्न रूपों में समझ लेना तथा उनके सम्बन्धों को जान लेना भी आवश्यक है। प्रजातन्त्र का सीधे शब्दों में अर्थ होता है—समानता और स्वतंत्रता के अधिकारों से युक्त जनता का राज्य। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रजातंत्र एक ऐसी शासन-व्यवस्था है जिसमें सत्ता जनता के द्वारा नियंत्रित रहती है। यहाँ यह कह देना भी आवश्यक होगा कि वर्तमान समय में हमें प्रजातन्त्र कई रूपों में दिखलाई देते हैं। एक प्रजातन्त्र तो वह है जो कि नाममात्र का होता है। देश तथा विश्व की जनता को प्रजातन्त्र के नाम पर धोखा देकर सत्ता बनाये रखना। दूसरे प्रकार का प्रजातन्त्र वह है जिसे एक दलीय प्रजातन्त्र कहते हैं। जैसा कि संयुक्त अरब गणराज्य आदि में है। यहाँ प्रजातन्त्र के नाम पर एक ही दल का प्रभुत्व सत्ता पर रहता है। तीसरा रूप बहुतत्ववादी प्रजातन्त्र का होता है जिसमें विभिन्न विचारधाराओं वाले समूह या दल होते हैं। इन दलों का सीधा सम्बन्ध देश की जनता से होता है, तथा जनता भी अपने विचारानुसार इन दलों से अपने का सम्बन्धित रखती है। ये दल समय-समय पर अपने वैचारिक मतभेद लेकर जनता के सामने आते हैं, तथा अपने कार्यों एवं नीतियों से जनता को प्रभावित करते हैं। जनता का समर्थन पाकर कोई एक दल या दलों का समूह राज्य की सत्ता पर एक निश्चित समय के लिये अपना अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। सत्ता में आने के साथ ही वह अपनी पूर्व निर्धारित नीतियों एवं विचारधाराओं के अनुसार राज्य की नीति को तय करता है एवं उसे कार्यान्वित करता है। उनके इन्हीं कार्यों एवं व्यवहारों को राजनीति कहा जाता है।

प्रजातन्त्र और राजनीति का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ होता है कि उसे अलग-अलग नहीं किया जा सकता। प्राचीन समय से ही जब १८वीं शताब्दी में आज के प्रजातन्त्र का जन्म हुआ, अन्य राजनीतिक तन्त्रों को अपनाने वाले राष्ट्रों की अपेक्षा राजनीति का उससे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसका प्रमुख कारण सत्ता में होने वाले परिवर्तन हैं। सत्ता में जैसा परिवर्तन होता है राजनीति भी वैसे ही परिवर्तित होती चली जाती है। आज के युग में प्रजातन्त्र में राजनीति के साथ ही साथ एक अन्य तत्व भी बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है जिसकी उपेक्षा करने का साहस आज कोई भी प्रजातांत्रिक राज्य नहीं कर सकता है और वह है 'शिक्षा'। प्रजातन्त्र में शिक्षा के एकाएक अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण हो जाने के अपने कुछ कारण हैं। यह समझा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने लगा है कि मात्र प्रजातन्त्र की सफलता के लिये ही नहीं वरन् सत्तारूढ़ दल के स्थायित्व के लिये भी शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण अस्त्र बन गया है। पहले समझा जाता था कि शिक्षा का आधार सांस्कृतिक परम्पराएँ होती हैं तथा यह उसी के आधार पर निरंतर गतिशील बना रहता है किन्तु वर्तमान युग में शिक्षा, संस्कृति की धरोहर को एक से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने का या संस्कृति को सुधारने का साधन मात्र नहीं रही वरन् उससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है। इसे राष्ट्र की आन्तरिक तथा बाह्य नीति को प्रभावित करने का यथार्थवादी साधन भी समझा जाने लगा है।

प्रजातन्त्र एक प्रकार की सामाजिक व्यवस्था है। उसके राजनैतिक सिद्धान्त जब तक सामाजिक तथा व्यक्तिगत रूपों में नहीं विकसित हो पाते हैं या जब तक वे नागरिकों के जीवन के अंग नहीं बन पाते हैं तब तक व्यावहारिक रूप से प्रजातन्त्र की सफलता संदेहप्रद रहती है। इन सिद्धान्तों को जीवन का अंग बनाने के लिये प्रत्येक प्रजातांत्रिक सरकार हर-संभव प्रयत्न करती है क्योंकि इसी में उसकी भलाई और स्थायित्व संभव होता है। इन प्रयत्नों में सबसे अधिक सहायक 'शिक्षा' ही होती है। शिक्षा के माध्यम से सत्ताधारी दल न केवल प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों को कायम रख सकता है वरन् वह अपने राजनीतिक सिद्धान्तों का भी प्रसार-प्रचार भी आसानी से कर सकते हैं। हालांकि प्रजातंत्रवादियों का कहना है कि शिक्षा को राजनीतिक रोगों के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त रखा जाना चाहिए। उसका उद्देश्य व्यक्ति की जन्मजात योग्यताओं का समाज के हित के सन्दर्भ में पूर्णतः विकास करना होना चाहिए। प्रजातांत्रिक जीवन-दर्शन के अनुसार व्यक्ति को स्वयं ही अपनी चिन्तन शक्ति को विकसित करना चाहिए जिससे वह अपने जीवन के विश्वासों और मूल्यों के आधार पर आत्म-निर्णय कर सके। इस विचार में आधारभूत प्रजातांत्रिक ध्येय है कि शिक्षा के अवसरों तथा व्यक्ति की विभिन्नताओं में सामंजस्य स्थापित होना चाहिए, जिससे वह स्वतन्त्र रह सके एवं अपना नैतिक तथा बौद्धिक विकास कर सके, भौतिक एवं प्राकृतिक शक्तियों को समझ सके, उनको जीवन में उतार सके और यहाँ तक कि वह अपने वातावरण पर अधिकार बनाये रख सके। परन्तु प्रश्न उठता है कि वर्तमान प्रजातांत्रिक राज्यों में उपर्युक्त सिद्धान्तों तथा विचारों को कहाँ तक मान्यता प्रदान की गई है। क्या आज कोई भी प्रजातांत्रिक सरकार कह सकती है कि उसने अपने यहाँ की शिक्षा-व्यवस्था को उपर्युक्त आधार पर संगठित किया है? क्या आज किसी प्रजातन्त्र ने व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार शिक्षा के क्षेत्र में नवीन प्रयोग करने की स्वतन्त्रता दे रखी है? नहीं। प्रत्येक प्रजातांत्रिक राज्य जो परिवर्तन का नारा लगाता है शिक्षा-व्यवस्था में समाज या व्यक्ति द्वारा लाये गये किसी परिवर्तन को पसन्द नहीं करता है, वरन् वह स्वयं अपने हितों की रक्षार्थ अपने अनुकूल शिक्षा-व्यवस्था को परिवर्तित करने का ही अधिक इच्छुक रहा है। इसका एक अपवाद कुछ हद तक अमेरिका का प्रजातन्त्र हो सकता है। जहाँ समाज को शिक्षा के क्षेत्र में अधिक अधिकार प्राप्त है परन्तु वहाँ भी किसी-न-किसी रूप में राजनीतिक हस्तक्षेप देखने को मिल ही जाता है। वस्तुतः यदि प्रकट रूप में देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा पर अधिकार बनाये रखने का किसी भी प्रजातन्त्र में बड़ा महत्त्व रहा है। यह भ्रम कि लोकनीति को कानून और शासन से बदला जा सकता है, अब गलत साबित होती जा रही है। कानून अधिक से अधिक यह कर सकता है कि परिवर्तन को कायम रखकर उसका अनुसरण करे। जबकि वास्तविक परिवर्तन लोगों के व्यवहारों द्वारा लाया जा सकता है और यह किसी-न-किसी रूप में शिक्षा द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

यूरोप की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में यदि जायें तो पाते हैं कि वहाँ की ऐतिहासिक स्थिति ने राजनैतिक आन्दोलनों के साथ-साथ राज्य (राजनैतिक) संचालित शिक्षा-आन्दोलनों का तादात्म्य स्थापित कर दिया था, जो बाद की राजनैतिक घटनाओं के लिए असाधारण महत्त्व का तथ्य रहा। विशेष रूप से जर्मन विचारधारा का प्रभाव इस क्षेत्र में बहुत अधिक पड़ा, जहाँ अब शिक्षा नागरिक कार्य बन गई थी और नागरिक कार्य को राष्ट्रीय राज्य के आदर्श को प्राप्त करना समझा गया था। पूर्व में जहाँ यूरोपीय प्रजातन्त्रवादी शिक्षा का लक्ष्य तथा उद्देश्य 'काण्ट' का मानवतावादी आदर्श 'मनुष्य मनुष्य बनाता है' था, वहाँ अब हीगल के दर्शन ने अपना स्थान बना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया। हीगल राज्य को ही एकमात्र सत्य मानता था। वह राज्य को व्यक्ति से अधिक महत्त्व देता था। उसका मत था कि 'राज्य स्वयं एक अन्तिम लक्ष्य है और उसके नागरिक उस लक्ष्य की पूर्ति में साधनमात्र रहते हैं'। इस प्रकार यूरोपीय शिक्षा में अब मानवता के स्थान पर राज्य को स्वीकार किया गया और मानवतावाद के स्थान पर राष्ट्रवाद ने जोर पकड़ा। 'मनुष्य' नहीं 'नागरिक' का निर्माण शिक्षा का उद्देश्य बन गया, ऐसा नागरिक जो पूर्णतः राजनीति द्वारा संचालित एवं नियन्त्रित हो; जिसमें वे ही विचार प्रकट हों जो राज्य या सत्ता चाहती है। यह ऐतिहासिक परिस्थिति नेपोलियन की विजयों का उत्तरकालीन परिणाम था और विशेषकर जर्मनी पर ही उसका विशेष प्रभाव पड़ा। जर्मनी के विभाजित तथा निर्बल राज्यों ने अनुभव किया कि शिक्षा पर व्यवस्थित ध्यान देना ही उनकी राजनैतिक एकता तथा शक्ति को पुनः प्राप्त करने तथा उसे कायम रखने का सर्वोत्तम साधन है। प्रशा के राजनीतिज्ञों के नेतृत्व में उन्होंने इस परिस्थिति को सार्वजनिक शिक्षा की विशाल योजना तथा दृढ़ व्यवस्था द्वारा बदला। व्यक्तिवादी सिद्धान्त वहाँ पृष्ठभूमि में चला गया तथा राज्य अब केवल सार्वजनिक शिक्षा के साधन ही नहीं प्रस्तुत करता था वरन् उसका लक्ष्य भी निर्धारित करने वाला बन बैठा था। राज्य के प्राथमिक विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालय तक उनके राजनैतिक सिद्धान्तों को प्रतिबिम्बित करने वाले बन गये थे। जर्मनी पहला देश था जिसने प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा पर पूर्ण राजकीय नियन्त्रण किया तथा उसे अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का साधन बनाया जिसके परिणामस्वरूप आगे चलकर विश्व ने नाजीवाद का परिचय प्राप्त किया। इसी प्रकार इटली में प्रजातन्त्र को समाप्त करने वाली फासिस्टवादी शिक्षा तथा प्रजातान्त्रिक साम्यवादी रूस की मार्क्सवादी शिक्षा-व्यवस्था पर भी हीगल के दर्शन का प्रभाव पड़ा था। ब्रिटेन का १९वीं तथा २०वीं शती का साम्राज्यवाद भी वहाँ की राजनीति द्वारा प्रेरित शिक्षा का परिणाम था। राज्य ने शिक्षा द्वारा अहंकारी राष्ट्रवादी नागरिकों को तैयार किया जिनके मस्तिष्क में शिक्षा द्वारा 'अंग्रेज विश्व के सर्वोत्तम नागरिक' जैसे विचारों को भर दिया जाता था। यदि ब्रिटेन ने शिक्षा को अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति का साधन न बनाया होता तो सम्भव है, वह इतना बड़ा साम्राज्यवादी भी कभी न बन पाता।

वर्तमान समय में यदि भारतीय प्रजातन्त्र में शिक्षा की स्थिति को देखें तो ज्ञात होता है कि यहाँ शिक्षा कहीं अधिक राजनीतिक दुरावों, षड्यन्त्रों का शिकार बनती जा रही है। शिक्षा पर जिस तरह से आज इस देश में राजनीतिक आघात किये जा रहे हैं, वैसे शायद ही कभी इतिहास में अन्य किसी समय किये गये होंगे। प्रजातन्त्र में महत्त्वाकांक्षा हमेशा से ही सर्वोपरि रही है। भारत में यह कुछ और अधिक मात्रा में है। शिक्षा आज यहाँ प्रजातान्त्रिक उद्देश्यों, लक्ष्यों को प्राप्त करने वाली न होकर राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा को प्राप्त करने का साधन मात्र बन कर रह गई है। शिक्षा को हमेशा ही महत्त्वाकांक्षा से मुक्त रखा जाना चाहिए, क्योंकि महत्त्वाकांक्षा ही राजनीति है। व्यक्ति, राज्य एवं दलों की बढ़ी हुई महत्त्वाकांक्षाओं ने आज शिक्षा या बुद्धिवाद की जगह राजनीति को सर्वोच्च सिंहासन पर विराजमान कर दिया है। हर तथाकथित प्रजातान्त्रिक क्रिया कहीं-न-कहीं से राजनीति द्वारा प्रेरित होती है। शिक्षा का भी यही हाल है। कहने को तो शिक्षा को ज्ञान का प्रसार कहा जाता है और निश्चय ही उसे ज्ञान का प्रसारक होना चाहिए, लेकिन जो राजनैतिक बन्धनों को प्रसारित करती हो, उस शिक्षा को ज्ञान की प्रसारक कैसे कहा जा सकता है। शिक्षा विचार करना सिखलाती है, न कि बन्धनों में जकड़े विचारों को देना। विचारों के द्वारा ही व्यक्ति में जीवन्त शक्ति पैदा होती है। वह अपने स्व की अनुभूति करता है। उसमें स्वतन्त्र चिंतन की भावना और शक्ति पैदा होती है। विचार के अभाव में व्यक्ति का व्यक्तित्व स्वनिर्मित नहीं हो पाता है, क्योंकि व्यक्तित्व की आधारशिला ही उसमें अनुपस्थित होती है, और व्यक्तित्व की आधारशिला उसकी अपनी विचार की स्वतन्त्र क्षमता ही होती है परन्तु प्रजातन्त्र में विभिन्न दलों की सत्ताएँ शिक्षा में अपने राजनीतिक हस्तक्षेप द्वारा व्यक्ति के स्वतन्त्र एवं मौलिक विचारों की जन्म से पूर्व ही निर्ममता से हत्या कर डालती हैं। उसे सिर्फ राष्ट्र के लक्ष्य तथा उसकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएँ ही सिखलाई जाती हैं और उसी के आधार पर विचार करना सिखलाया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हालांकि कहा यह जाता है कि प्रजातन्त्र में शिक्षा अन्य राजनैतिक तन्त्रों की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र रहती है तथा उस पर समाज का अधिकार होता है परन्तु व्यावहारिकता में ऐसा देखने को आज बहुत ही कम मिलता है। 'व्यक्तित्व की समस्त शक्तियों का समविकास' जैसी पुरानी पदावली या 'सामाजिक निपुणता' की अधिक नवीन शब्द-व्यंजना को लेकर चलने वाली आज की प्रजातांत्रिक शिक्षा पूर्णतः राजनीतिक उद्देश्यों को लेकर चल रही है। शिक्षा अब सत्ता के हाथ उसके राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का साधनमात्र बनकर रह गई है। नेपोलियन द्वारा की गई शिक्षा-व्यवस्था पर उसके अपने ये शब्द कि "यह शिक्षा-व्यवस्था करने से मेरा अभिप्राय यही है कि मेरे हाथ में एक ऐसा साधन हो जिससे मैं राजनीतिक मामलों में लोगों की धारणाओं पर पूरा प्रभाव डाल सकूँ।" आज की प्रजातंत्रीय शिक्षा-व्यवस्था पर भी पूरी तरह लागू होते हैं।

भारत में शिक्षा पर राजनीतिक दबाव एवं प्रभाव इतना अधिक हो चुका है कि उसे देखकर लगता है कि यहाँ शिक्षा का अर्थ तथा उसके मूल्य पूर्णतः राजनीति के अङ्ग बनकर रह गये हैं। आज शिक्षा के प्रशासन से लेकर उसके पाठ्यक्रम एवं माध्यम तक हर बात पर राजनीति पूर्णतः छायी हुई है। एक ओर जहाँ प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों के अनुसार शिक्षा का विकेन्द्रीकरण होने की जगह उसका अधिकाधिक केन्द्रीयकरण किया जा रहा है वहीं दूसरी ओर एक प्रजातान्त्रिक 'समसमाज' के निर्माण की जगह शिक्षा द्वारा विभिन्न समुदायों एवं वर्गों के बीच खाइयों को और अधिक चौड़ा किया जा रहा है। राज्य सरकारें बालकों को राष्ट्र के प्राकृतिक स्रोतों को बतलाने की जगह शिक्षा द्वारा राज्यों के सीमा-सम्बन्धी झगड़े एवं नदी-जल विवाद जैसे विखंडित करने वाले तथ्यों का ज्ञान दे रही हैं। उनका राज्य की शिक्षा पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो चुका है। पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों का निर्माण सरकार के कर्तव्यों, दायित्वों में शामिल कर लिया गया है और उसके कारण शिक्षा की जो छीछालेदर हो रही है, उसको हर व्यक्ति जानता है। राजनीतिक दबावों ने योग्य व्यक्तियों को पीछे ढकेल दिया है तथा ऐसे व्यक्ति आज शिक्षा-क्षेत्र के नेता तथा निर्माता बन बैठे हैं जिन्होंने कभी शिक्षा का अर्थ समझने का कष्ट नहीं उठाया है। राजनीतिज्ञों के हाथों में खेली जाने वाली शिक्षा का आज कोई नैतिक मानदण्ड नहीं रह गया है। उसके अपने कोई शैक्षिक सिद्धान्त शेष नहीं रहे हैं। जिस प्रकार शरीर में प्राण न रहने पर वह सड़ने लगता है उसी प्रकार आज शिक्षा का अपना कोई शैक्षिक मूल्य न होने से वह सड़ रही है। उसकी विकासशीलता समाप्त हो चुकी है। उसमें ऐसी विषम स्थितियाँ पैदा होती चली जा रही हैं जैसी कभी दासताकाल की शिक्षा में भी उत्पन्न नहीं हुई थी। स्वतन्त्रता के बाद भारत में जैसे-जैसे राजनीतिक भ्रष्टाचार बढ़ता गया वैसे-वैसे ही शिक्षा पर भी उसका प्रभाव पड़ता गया। यह एक यथार्थ तथ्य है कि शिक्षा का अपना कोई उद्देश्य या लक्ष्य नहीं होता है। वह तो मात्र एक अमूर्त भाव होती है। लक्ष्य या उद्देश्य का निर्धारणकर्त्ता तो शिक्षा का उपयोग करने वाला होता है। यदि डीवी अपनी पुस्तक 'जनतन्त्र और शिक्षा' में 'शिक्षा के उद्देश्यों' की जगह 'शिक्षा में उद्देश्य' की बात करता है तो वह कतई गलत नहीं करता है। आज प्रजातन्त्रवादी सरकार अपने आप को भले ही कितनी ही आदर्शवादी-मानवतावादी कहे, मगर शिक्षा क्षेत्र के में वह आज भी कहीं-न-कहीं फासिस्टवादी, नाजीवादी अथवा साम्यवादियों की तरह 'राज्य के निरपेक्ष सिद्धान्त' को लेकर ही चल रही है। राज्य का निरपेक्ष सिद्धान्त व्यक्ति की स्वतन्त्रता का हमेशा शत्रु रहा है। जब कभी भी व्यक्ति और राज्य में संघर्ष उत्पन्न हुआ, उसने राज्य को ही सही बतलाया है। यह सिद्धान्त हीगल के दर्शन के अधिक नजदीक है जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता को राज्य के लिए बलिदान कर देने की बात करता है। वह राज्य को ऐसा स्वामी मानता है जो व्यक्ति को पूरी तरह अपने अधीन रखे। प्रजातन्त्र में हीगल के विचारों को कोई स्थान नहीं है वरन् वहाँ थामस हिल ग्रीन जैसे आदर्शवादी विचारक तथा शिक्षाशास्त्री का महत्त्व है जो व्यक्ति को नैतिक रूप से स्वतन्त्रता प्रदान करने को कहता है। वह सिर्फ राज्य द्वारा शिक्षा की व्यवस्था किये जाने की बात करता है। क्योंकि प्रजातन्त्र की सफलता, स्थायित्व प्रजा के साक्षर होने, अपने मत का मूल्य समझने की सामर्थ्य होने पर ही निर्भर करता है। यह तभी हो सकता है जब राज्य जनसाधारण के लिए शिक्षा के साधन जुटाये एवं उन्हें शिक्षित होने के लिए प्रेरित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करे। ग्रीन राज्य को शिक्षा-व्यवस्था के लिए उत्तरदायी तो बतलाता है परन्तु हीगल की तरह उस पर निरंकुशतापूर्ण राज्य के अधिकार को नहीं मानता है। वह पाठ्यक्रम के निर्धारण का अधिकार राज्य को दिये जाने का विरोध करता है। उसका मत है कि राज्य द्वारा शिक्षा का उपयोग केवल व्यक्ति की कार्यक्षमता को बढ़ाने तथा उसके मार्ग से अज्ञानता को हटाने के लिए ही करना चाहिए।

उपर्युक्त विचारों के विपरीत आज भारत में जनहित के नाम पर शिक्षा के ऊपर राज्य अधिक-से-अधिक अपना अधिकार कायम करने में लगा रहता है। प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय शिक्षा तक उस पर हर तरफ से राजनीतिक दबाव पड़ रहा है। इस दबाव एवं प्रभाव को देखकर लगता है कि वर्तमान में शिक्षा, शिक्षा न होकर राजनीति का एक अंग बन कर रह गई है। शिक्षक या शिक्षालय का अपना स्वयं का अस्तित्व प्रायः समाप्त हो चुका है। वे वही विचार प्रकट करने के माध्यम मात्र बन कर रह गये हैं, जो राज्य या सत्ता चाहती है। जब शिक्षा तथा शिक्षा प्रदान करने वाले ऐसी दासता की बेड़ियों में बाँध दिये जाते हैं तब हम यह आशा कैसे रख सकते हैं कि प्रजातन्त्र में शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वाङ्गीण विकास करना अथवा उसमें स्वतंत्र चिंतन एवं विचारों को प्रकट करने की क्षमता पैदा करना आदि होते हैं। हाँ, यह जरूर कहा जा सकता है कि शिक्षा का उद्देश्य 'सत्ता के प्रति भक्ति तथा अन्धविश्वास पैदा करना' हो सकता है। जे० एफ० ब्राउन का यह कथन कि "किसी भी देश की और सभी युगों की शिक्षा शासक वर्ग की विशेषताओं को व्यक्त करती है'—आज के भारत में कहीं अधिक सटीक लगती है।

शिक्षा पर अधिकाधिक राजनीतिक हस्तक्षेप के समर्थन में अक्सर सत्ताधारी दल के प्रवक्ता यह कहते पाये जाते हैं कि शिक्षा पर यदि राज्य अपना नियंत्रण नहीं रखता है तो स्वतंत्रता और समानता के अधिकारों का जनता या समाज द्वारा गलत ढंग से उपयोग किये जाने की संभावना बनी रहती है। किन्तु ऐसे प्रवक्ता यह भूल जाते हैं कि शिक्षा स्वयं में एक स्वतंत्र इकाई हुआ करती है, वह अपना स्व-अस्तित्व रखती है।

आज जरूरत इस बात की है—राज्य या सत्ता शिक्षा को उसका अस्तित्व बनाये रखने के लिए एक सीमा तक शिक्षा को स्वतन्त्रता प्रदान कर दें। यदि सत्ताधारी दल शिक्षा के द्वारा अपने राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति को समाप्त कर देता है तो विरोधी दलों का साहस भी शिक्षा-क्षेत्र को अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का साधन बनाने का कभी नहीं होगा। अन्त में यही कहा जा सकता है कि यदि प्रजातन्त्र में शिक्षा को राजनीतिक कोढ़ से बचा कर रखना है तो शिक्षा का स्वरूप शिक्षा की तरह ही रखा जाना चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि शिक्षा को जकड़ने वाले आज के मैकियावेलीवाद से उसको पूर्णतः मुक्त कर दिया जाय।●

[पृष्ठ ८० का शेषांश]

खेलना अब पूरी तरह शुरू कर दिया है। सत्तारूढ़ दल के नेता एक ओर तो कहते हैं कि छात्रों को राजनीति को समझना चाहिए किन्तु उसमें सक्रिय भाग नहीं लेना चाहिए, लेकिन दूसरी ओर आचरण ठीक इसके विपरीत करते हैं। सत्ता कांग्रेस की युवक शाखा युवक कांग्रेस, राष्ट्रीय छात्र संगठन, छात्र परिषद् आदि कांग्रेस के राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए छात्रों का भरपूर उपयोग कर रहे हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ का चुनाव इसका नवीनतम उदाहरण है जिसमें सत्ता कांग्रेस ने लाखों रुपये खर्च किये और फिर भी पराजित हुई। अन्य दलों के भी छात्र-संगठन हैं—भारतीय जनसंघ का अ० भा० विद्यार्थी परिषद्, भारतीय युवा संघ, सोशलिस्ट पार्टी की समाजवादी युवजन सभाएँ, कम्युनिस्ट पार्टी के स्टूडेण्ट फेडरेशन, फार्वर्ड ब्लाक का स्टूडेण्ट ब्लाक तथा भारतीय क्रान्ति दल का युवक क्रान्तिदल आदि। लेकिन सत्तारूढ़ होने के कारण तथा देश का सबसे बड़ा दल होने के कारण कांग्रेस का यह दायित्व था कि वह छात्रों को राजनीति में न घसीटने का उदाहरण प्रस्तुत करती। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि बुनियादी आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं के समाधान में अपनी विफलता पर पर्दा डालने के लिए सत्ता पक्ष ने छात्रों के माध्यम से अराजकता पैदा कराना ही अपने हितों के अनुकूल समझा है। शुरूआत सत्ता पक्ष ने की है, श्री जयप्रकाश नारायण तो बाद में उठे हैं और इन छात्र-संगठनों में से सिर कटाने को तत्पर युवकों को संगठित करने में लगे हैं।●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा के उद्देश्य एवं राजनैतिक प्रभाव

प्रो० सी० वी० ठकराल
संस्कृत विभागाध्यक्ष, का० हृ० माधवाणी कॉलेज, पोरबन्दर (गुजरात)

मानव-जगत् की कोई भी क्रिया निरर्थक या निरुद्देश्य नहीं होती है तो शिक्षा जैसी क्रिया अवश्य सोद्देश्य होनी चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के सामाजिक, राजकीय, आर्थिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक परिवेशों को ध्यान में रखकर ही निर्धारित होना चाहिए। इन परिवेशों में वैविध्य है। किन्तु यदि शिक्षा के उद्देश्यों में वैविध्य हो तो वह स्पष्टता एवं विशदता से रहित बन जाएगा।

अतः शिक्षा के उद्देश्य विशद् एवं व्यापक, प्रभावोत्पादक एवं कार्यसाधक होने चाहिए। इन दृष्टियों से देखने से मालूम होता है कि प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति के दिल एवं दिमाग में अस्मिता एवं समर्पण का निर्माण करना ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। मनुष्य का सर्वेक्षण करने से लगता है कि वह सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से विशिष्ट इकाई के रूप में अपना अस्तित्व रखता है।

इन सभी दृष्टिबिन्दुओं को अस्मिता निर्माण के द्वारा परिपुष्ट करना शिक्षाविदों का कर्तव्य बन जाता है। आज की शिक्षा की करुणान्तिका (Tragedy) यह हुई है कि शिक्षित मनुष्य अपनी अस्मिता को खो बैठा है। यदि वह अस्मिता दिखाई देती है तो वह "मैं-मैं" और "मेरे लिए", "मेरे लिए" के संकुचित सीमा में आबद्ध है। ऐसी अस्मिता का निर्माण करना किसी भी देश की, किसी भी काल की शिक्षा का उद्देश्य कभी नहीं हो सकता। मनुष्य ईश्वर की संतान है, सामाजिक प्राणी है, विचारशील मानव है और इन सबसे बढ़कर उसका अपना निजी व्यक्तित्व भी होता है। "मैं कुछ हूँ", "मैं कुछ विशेषता रखता हूँ" इस प्रकार की दृढ़ प्रतीति ही मानव को विशेषता प्रदान करती है।

उपर्युक्त अवलोकन से पता चलता है कि यदि केवल अस्मिता का निर्माण ही शिक्षा का ध्येय रहेगा तो उसकी परिणति संकुचित स्वार्थों एवं संघर्षों की उत्पत्ति ही होगी। इससे नर-नारी अपने-अपने स्वार्थों की परिपूर्ति के लिए ही प्रयत्न करेंगे। दूसरों की उपस्थिति समाज में है, इस बात का सर्वथा विस्मरण ही हो जाएगा। प्रत्येक मनुष्य अपनी विशेषताओं, शक्तियों एवं क्षमताओं का उपयोग अपने लिए ही करेगा तो वह दुर्योधन बन जाएगा। अतः अस्मिता के साथ-साथ समर्पण भावना का निर्माण भी आवश्यक है। यह भावना भी संकुचित क्षेत्र का शिकार बन जाने की भीति रहती है। हम जानते हैं कि कर्ण ने सर्वस्व का त्याग कौरव पक्ष के लिए कर दिया था। वह समर्पण भावना अवश्य थी किन्तु क्या हम कह सकते हैं कि कर्ण का चरित्र अनुकरणीय है? इसके साथ-साथ हमें अर्जुन का उदाहरण भी भूलना नहीं चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण के समान आदर्श सद्गुरु के उपदेश से उसने निजी शक्तियों का विनियोग समाज-कल्याण एवं ईश्वरप्रीत्यर्थ किया। इसी हकीकत से तो आज भी कर्म एवं शौर्य की गाथा के रूप में हम अर्जुन के चरित्र का गुण-कीर्तन करते रहते हैं।

शादी के बारे में हमारे एक चिन्तक ने कहा है कि अन्य पक्ष को सुखी करने के लिए शादी की जाती है, अपने आपको सुखी बनाने के लिए नहीं। इस प्रकार शिक्षा के बारे में भी हम ऐसा ही प्रतिपादन कर सकते हैं कि शिक्षित मनुष्य अपनी शिक्षा एव क्षमता का विनियोग अन्य लोगों के कल्याण के लिए करे, केवल अपने संकुचित स्वार्थों की पूर्ति के लिए ही नहीं। यदि प्रत्येक शिक्षित मनुष्य के हृदय में ऐसी भव्य भावना का निर्माण हो जाए तो यहाँ ही स्वर्ग का अवतरण हो जाए।

शिक्षा के उद्देश्यों में युग-युग से परिवर्तन आते रहे हैं। उनके लिए समाज का राजकीय एवं सांस्कृतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध प्रबन्ध

भारतीय उपन्यासों में वर्णनकला का तुलनात्मक मूल्यांकन (डी० लिट्० का शोध प्रबन्ध)	डा० इन्दिरा जोशी	३०.००
वृन्द और उनका साहित्य	डा० जनार्दनराव चेलेर	२०.००
वृन्द-ग्रंथावली	डा० जनार्दनराव चेलेर	२०.००
हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ (डी० लिट्०)	डा० शशिभूषण सिंहल	२०.००
प्रसाद दर्शन (डी० लिट्०)	डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१२.००
हिन्दी और तेलुगु वैष्णव-भक्ति साहित्य	डा० के० रामनाथन्	१५.००
रीतिकाल और आधुनिक हिन्दी कविता	डा० रमेशकुमार शर्मा	८.००
गुजरात के कवियों की हिन्दी काव्य-साहित्य को देन	डा० नटवरलाल अम्बालाल व्यास	१२.००
कृष्णभक्ति साहित्य में रीतिकाव्य परम्परा	डा० राजकुमारी मित्तल	१२.००
विद्यापति : युग और साहित्य	डा० अरविन्द नारायण सिन्हा	१२.५०
ब्रज और बुन्देली लोकगीतों में कृष्णकथा	डा० शालिग्राम गुप्त	१२.५०
नाथपंथ और निर्गुण सन्तकाव्य	डा० कोमलसिंह सोलंकी	१२.००
सन्त वैष्णव काव्य पर तांत्रिक प्रभाव	डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	१५.००
रीतिकाल के प्रमुख प्रबन्ध-काव्य	डा० इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'	१५.००
गद्यकार—बाबू बालमुकुन्द गुप्त	डा० नत्थनसिंह	१२.५०
हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव	डा० श्रीपति शर्मा	१२.५०
कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन	डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१५.००
हिन्दी में प्रत्यय विचार	डा० मुरारीलाल उप्रैतिः	१५.००
हिन्दी समास रचना का अध्ययन	डा० रमेशचन्द्र जैन	१०.००
रस सिद्धान्त की दार्शनिक व नैतिक व्याख्या	डा० तारकनाथ बाली	८.००
मैथिली लोकगीतों का अध्ययन	डा० तेजनारायण लाल	१०.००
हिन्दी और कन्नड में भक्ति आन्दोलन	डा० हिरण्मय	१०.००
आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्ण काव्य	डा० मलिक मोहम्मद	२०.००

विनोद पुस्तक मन्दिर द्वारा प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढाँचा उत्तरदायी बना रहा है। सांस्कृतिक दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य "ज्ञानोपार्जन एवं सदाचरण" था। उपनिषदों के युग में आनन्द-प्राप्ति को शिक्षा का उद्देश्य माना गया। बौद्धकाल में नैतिक उन्नयन को शिक्षा का उद्देश्य बनाया गया।

किन्तु संस्कृति राजकीय गतिविधियों से सर्वथा अलिप्त नहीं रह सकती। इस्लाम के अनुयायियों ने अपनी सस्कृति के प्रचार एवं प्रसार को ही शिक्षा का उद्देश्य माना। ब्रिटिश युग में सरकारी मशीनरी के लिए उपयोगी क्लर्कों का निर्माण करना ही शिक्षा का उद्देश्य माना गया। स्वतन्त्रता के पश्चात् हमने ब्रिटिशयुगीन ढाँचे में यत्र-तत्र परिवर्तन किया है किन्तु मूलतः कोई ऐसा परिवर्तन नहीं हुआ है जो स्वतन्त्र देश के लिए गौरवास्पद हो। इसके अलावा जनतन्त्र की सरकार की अनुल्लंघनीय मर्यादा रहती है कि वह अपने राजकीय पक्ष के तत्त्वज्ञान से परे देख ही नहीं सकती और भारत में प्रवर्तमान अनेकानेक राजकीय पक्षों को देखने से पता चलेगा कि प्रत्येक पक्ष का राष्ट्रीय कल्याण का ख्याल अपना-अपना विशिष्ट है। अतः वे लोग राष्ट्रीय शिक्षण-नीति के बारे में एक सुर से उच्चारण नहीं कर सकते।

जब पुरानी कांग्रेस देश पर शासन कर रही थी तब बुनियादी तालीम का नारा सुनाई देता था। नई कांग्रेस ने शैक्षणिक परिप्रेक्ष्य में कोई परिवर्तन नहीं किया क्योंकि उसको उस दिशा में कोई रुचि नहीं है। जनसंघ की सरकार भारतीयकरण की अपनी बात आगे बढ़ाने की हामी बनेगी। साम्यवादी सरकार के हाथों में यदि शासन का सूत्र आ गया तो वह वर्गविग्रह के लिए शिक्षण का उपयोग करेगी। इस प्रकार न जाने कितने पक्ष अपने-अपने स्वार्थानुकूल प्रयोग करके शैक्षणिक ढाँचे को मोड़ने का प्रयत्न करेंगे।

क्या यह परिस्थिति इष्ट है? कोई भी सुविज्ञ मनुष्य इस प्रश्न का उत्तर 'नहीं' में ही देगा। अतः सुशिक्षित एवं संस्कारी नागरिकों का पवित्र कर्तव्य बन जाता है कि वे ऐसी कोशिश करते रहें जिससे शिक्षण सर्वथा सरकार के दखलों से मुक्त रहे। सरकार शिक्षण के आर्थिक पहलू से आगे न बढ़े, यह देखने का कर्तव्य लोक-नेताओं का है। अगर इस दिशा में वे उदासीन रहेंगे तो आने वाली पीढ़ियाँ उनको न जाने किन-किन शब्दों में कोसती रहेंगी।

शिक्षण के उद्देश्यों में इस बात का समावेश भी किया जाना चाहिए कि शिक्षण व्यवसाय को ध्यान में रखे। राष्ट्र को एक ओर नेक बनाने का अमोघ साधन भी शिक्षा ही है, इस बात का विस्मरण न हो। जगत् में किसी भी प्रकार का काम करना पड़े तो भी शिक्षित मनुष्य उसमें गौरव और आनन्द का अनुभव करे, यह भी हकीकत शिक्षाशास्त्रियों की आँखों से ओझल नहीं होनी चाहिए।

ऐसी शिक्षा का निर्माण कोई भी राजकीय विचार-धारा नहीं करेगी। यह केवल लोगों का और उनके द्वारा चुने हुए लोकनेताओं का कार्य है। यदि इस बात का विस्मरण हो जाएगा तो शिक्षा केवल राजकीय पक्ष या विचारधारा का बिगुल बनी रहेगी और उसका विशिष्ट ध्येय या उद्देश्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा।

यदि सरकार या राजनीति का दावा राष्ट्र-हित करने का हो तो वह शिक्षा को अपने चंगुल में फँसाने का प्रयास न करे। वह आगामी चुनाव के स्थान पर आगामी पीढ़ी की चिन्ता अधिक करेगी तो उसमें राष्ट्र का एवं उसका भी गौरव और श्रेय होगा। ●

[पृष्ठ ६१ का शेषांश]

नहीं हो पाया है। यही हाल प्रदेश के शिक्षा-मंत्रियों का भी है। एक मंत्री पूर्ण आत्मविश्वास के साथ अपनी योजना को क्रियान्वित भी नहीं कर पाता कि राज-नैतिक अस्थिरता के कारण शीघ्र ही उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। इसके फलस्वरूप शिक्षा-जगत् उसकी उपलब्धियों से वंचित ही रह जाता है।

उपर्युक्त तथ्यान्वेषण का मुख्य निष्कर्ष यह है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के २७ वर्ष बाद भी शिक्षा-विभाग अपने आप को विकासोन्मुख भारत की कल्पना के अनुरूप समक्ष नहीं बना पाया है। इतना ही नहीं, एक साधारण प्राथमिक शिक्षक से लेकर विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर तक की नियुक्तियों एवं पदोन्नतियों के नियम इतने जटिल एवं द्रुतगति से परिवर्तनशील हैं कि वे किसी को सन्तोष प्रदान करने में समर्थ प्रतीत नहीं होते। इसका प्रभाव हमारे शिक्षालयों पर इतने प्रभावी रूप से हुआ है कि समूचा शैक्षिक वातावरण अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मृति द्वारा प्रकाशित

विश्वविद्यालय स्तरीय

कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

कबीर कोश ३२.००
कबीर साहित्य चिन्तन १२.५०

डॉ० रामरतन भटनागर

तुलसी नवमूल्यांकन १५.००
निराला नवमूल्यांकन १५.००

डॉ० भगवानदास तिवारी

महाकवि नन्ददास प्रणीत भंवरगीत ९.००
भंवरगीत विमर्श ११.००

डॉ० भोलानाथ तिवारी

भाषा चिन्तन १२.००

डॉ० कृष्ण वल्लभ जोशी

पाश्चात्य साहित्यशास्त्र १०.००
हिन्दी साहित्यशास्त्र १२.५०
हिन्दी साहित्य शास्त्र की भूमिका ९.००

डॉ० रमेश तिवारी

हिन्दी एकांकी : स्वरूप और विश्लेषण ६.००

श्री विष्णु कुमार त्रिपाठी 'राकेश'

नाटक के तत्व : सिद्धान्त और समीक्षा ७.००

स्मृति प्रकाशन

६१, महाजनीटोला, इलाहाबाद–२११००३

गतिशीलता को स्वयं में समेट कर एक सुनसान मुर्दाघर होकर रह गया है। गत वर्षों से कतिपय विश्वविद्यालयों के कुलपतियों ने जिस ढंग से अपने पदों से त्यागपत्र दिये हैं वह इस कथन की पुष्टि करता है। पुलिस तथा छात्र दोनों मिलकर निरीह कुलपति के समक्ष इतनी अजीब परिस्थितियाँ प्रस्तुत कर देते हैं कि वह स्वयं को किंकर्त्तव्यविमूढ़ पाता है तथा अपने पद से त्यागपत्र दे डालने में ही अपनी कुशलता समझता है।

यह राजनीति का ही दूषित प्रभाव है कि नालंदा और तक्षशिक्षा की महान् गौरव मंडित गरिमा को मृतप्राय करते हुए हमारे विश्वविद्यालय इन दिनों तोड़-फोड़ तथा व्यभिचार के अड्डे बन गए हैं। लखनऊ विश्वविद्यालय हमारे शैक्षिक पतन की दर्दनाक कहानी कह रहा है। दिल्ली विश्वविद्यालय जिस प्रकार यूरोपीय विश्वविद्यालयों की 'कॉर्बन कापी' बनने का प्रयास कर रहा है वह सर्वविदित है। हमारे युवा छात्रों पर प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि वे अपने मौलिक लक्ष्यों से पथभ्रष्ट होकर नेताओं के हाथों की कठपुतली बने हुए हैं और वे उनका मनचाहा उपयोग कर रहे हैं। किन्तु इस बात को स्वीकृत करने से पूर्व हमें यह मानना होगा कि यह सब महज इस कारण हो रहा है कि हम युवकों की मानसिक एवं शारीरिक क्षमता का रचनात्मक उपयोग करने में पूर्णतः असफल रहे हैं। यदि हम यह समझते हैं कि सत्ता के अंकुश से या थोथे सिद्धान्तों की दुहाइयों से युवा आक्रोश को कुचला या दबाया जा सकता है तो यह हमारा पहले दर्जे का पागलपन होगा। आज इस बात की महती आवश्यकता है कि सरकार एवं पुरानी पीढ़ी छात्रों की कठिनाइयों को समझे और उनके भविष्य को मंगलमय बनाने में पूर्ण योगदान कर सके तथा उनके सिर पर स्नेह का हाथ फेर सके।

सर्वोदयी नेता जयप्रकाश नारायण जी ने कुछ इसी तरह का कदम उठाया है। इसके सम्भावित परिणामों की घोषणा करना तो अभी समीचीन नहीं होगा किन्तु यह निश्चित है कि इस समय सभी लोगों की आँखें जयप्रकाश पर हैं और जयप्रकाश जी की आँखें भारत के युवा छात्रों पर हैं। इसके मिश्रण से किस समीकरण के सूत्र बनेंगे, इसका आकलन तो भविष्य ही कर पायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति और शिक्षा का माध्यम

श्री वासुदेव रघुनाथ वर्तक
१/३२ अहमद सेलर बिल्डिंग, दादर, बम्बई

●

'भारतीय शिक्षा का इतिहास' के लेखक का कथन इस प्रकार है—"शिक्षा के माध्यम का सवाल विदेशों में कहीं भी निर्माण हुआ होता तो वह किस प्रकार सुलझाया जाता, इस बात को ध्यान में लेकर हमारे देश के शिक्षाविद् यहाँ के माध्यम के सवाल को सुलझा देते। परन्तु हमारे देश में शिक्षाविद् अंग्रेजी भाषा के माध्यम से मिलने वाली सुविधाओं से वंचित हो जाने के भय से अंग्रेजी के बिना किसी माध्यम को पसन्द ही नहीं करते। इनके लड़के अंग्रेजी माध्यम से पढ़कर विदेशों से शिक्षा लेकर आते हैं और उससे मिलने वाला लाभ उठाते हैं। इस प्रकार अंग्रेजी दाँ लोग दूसरे किसी माध्यम का विचार नहीं करते।"

माध्यम का विचार करते समय मेरा देश, मेरी संस्कृति, मेरे देश के भाई ऐसी राष्ट्रवादी विचार-प्रणाली से कोसों दूर रहते हैं। क्योंकि अंग्रेजी भाषा द्वारा किया गया अध्ययन उन्हें दूसरा कुछ सिखाता ही नहीं। हम जिनकी भाषा सीखते हैं, उनके गुलाम बन जाते हैं। एक ओर राजनीतिक दृष्टि से हम स्वतन्त्र हुए हैं तो दूसरी ओर भाषा की दृष्टि से अब भी अंग्रेजी के गुलाम हैं। अंग्रेजी भाषा का यह बोझ हम जब तक नहीं फेंकते तब तक सही माने में स्वतंत्र नहीं हुए, ऐसा मानना चाहिये। जो भाषा केवल २० प्रतिशत लोग समझते हैं और उसी भाषा के माध्यम से हमारे देश का शासन चलता है इससे अधिक दुर्दैव की बात क्या हो सकती है?

बहुजन समाज के कुछ कार्यकर्त्ता 'अंग्रेजी हटाओ' के खिलाफ बोलते हैं, इसका कारण यही है कि अब तक अंग्रेजी माध्यम से पढ़कर उच्चवर्गीय लोगों ने स्वार्थ-साधन किया है। ऐसे लोगों का जीवन आर्थिक दृष्टि से सुखी रहा और सुखपूर्ण हो रहा है। यह बात भी सामान्य आदमी समझने लगा है। आज भी अंग्रेजी भाषा पर प्रभुत्व पाया हुआ आदमी राजनीति में मूर्ख हो तो भी अधिक वेतन मिलने वाला स्थान पाता है और उससे वह अलग नहीं होता। इतना ही नहीं, उसकी जगह लेने वाला कोई व्यक्ति नहीं मिलता, इस बहाने वह निवृत्त होने के बाद भी वहीं रहता है। अंग्रेजों के शासनकाल में पढ़े-लिखे लोग जिस तरह अंग्रेजी न जानने वालों से अलग रहते थे उसी तरह आज स्वतंत्र भारत में भी हो रहा है। इस तरह अपना स्थान पक्का करने के इरादे से ये लोग अंग्रेजी माध्यम रखने के पक्षपाती हैं और 'अंग्रेजी हटाओ' के विरोधी हैं। इसी कारण शिक्षा के माध्यम का सवाल सुलझ नहीं सकता।

अंग्रेजी का स्थान राष्ट्रभाषा को किस प्रकार दिया जाएगा, इसका विचार राष्ट्र-प्रेम से प्रेरित होकर कार्य करने वाले नेता ही कर सकेंगे। आज का नेतृत्व कमजोर हो गया है। स्वार्थ के लिये ऐसे महत्त्वपूर्ण सवालों पर वे चुप हैं। अंग्रेजी जाने बिना दुनियां में पश्चिम से होड़ करने वाला देश है—रूस। वहाँ कई भाषाएँ बोलने वाले लोग रहते हैं, फिर भी सारे रूस में रूसी भाषा अनिवार्य रही है और प्रत्येक राज्य के अनुसार स्थानीय भाषा के विकास के लिये स्वतन्त्र विश्वविद्यालय स्थापित किये गये हैं। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिये, इस बात का वहाँ पालन किया जाता है। मातृभाषा और रूसी भाषा के अतिरिक्त एकाध विदेशी भाषा भी अनिवार्य की जाती है। विदेशों का अनुकरण करने वाली हमारी सरकार भी इस प्रकार प्रान्तीय भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर, राष्ट्रभाषा हिन्दी को अनिवार्य कर सकती है और साथ ही साथ रूसी, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि पढ़ाने की व्यवस्था कर सकती है। रूस की विदेशी भाषा नीति के कारण दुनियां की किसी भी भाषा की उत्कृष्ट पुस्तक का अनुवाद सबसे पहले रूसी भाषा में होता

[शेष पृष्ठ १११ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे कुछ प्रमुख प्रकाशन

ऋक्-सूक्त-सुधाकर	डा० कृष्ण कुमार	१२.००
वेदान्तसार	डा० कृष्ण कान्त त्रिपाठी	५.००
सांख्यकारिका	डा० रामकृष्ण आचार्य	
संस्कृत निबन्ध माला	डा० कृष्ण कान्त शुक्ल	
ऋक्-सूक्त-संग्रह	डा० हरिदत्त शास्त्री	१४.००
संस्कृत शिक्षण की नवीन योजना (संस्कृत व्याकरण नये रूप में)	डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री	१५.००
काव्य प्रकाश	डा० श्रीनिवास शास्त्री	१२.००
दशरूपक	डा० श्रीनिवास शास्त्री	१०.००
शिशुपाल वध I	डा० श्रीनिवास शास्त्री	२.२५
मृच्छकटिकम्	डा० श्रीनिवास शास्त्री	१०.००
भाषा विज्ञान	डा० कर्णसिह	१०.००
रत्नावली नाटिका	डा० शिवराज शास्त्री	३.५०
वेणीसंहार नाटक	डा० शिवराज शास्त्री	५.००
उत्तर रामचरित	ब्रह्मानन्द, कृष्णकान्त शुक्ल	१०.००
मुद्राराक्षस	डा० निरूपण विद्यालंकार	७.५०
मेघदूतम्	डा० शिवराज शास्त्री	६.००
कादम्बरी पूर्वार्द्ध	डा० श्रीनिवास शास्त्री	२०.००
कादम्बरी कथामुखम्	आचार्य रामनाथ शर्मा	६.००
नलचम्पू	डा० रामनाथ वेदालंकार	३.००
संस्कृत काव्यकार	डा० हरिदत्त शास्त्री	१०.००
नाट्यशास्त्र	डा० भवभूति शर्मा	२.००
ध्वन्यालोक (प्रथम व द्वितीय उद्योत)	डा० कृष्णकुमार	९.००
वेदान्तसार	डा० नरेन्द्रदेव शास्त्री	२.५०
कठोपनिषद	डा० नरेन्द्रदेव शास्त्री	२.५०
सांख्यकारिका	डा० हरिदत्त शास्त्री	२.५०
तर्कभाषा	डा० सत्यनारायण पाण्डेय	२.५०
तर्कभाषा	डा० श्रीनिवास शास्त्री	८.००
दर्शनशास्त्र का इतिहास	डा० हरिदत्त शास्त्री	१२.००
मीमांसा परिभाषा	डा० हरिदत्त शास्त्री	२.५०
साहित्य दर्पण	डा० निरूपण विद्यालंकार	१५.००
एम० ए० संस्कृत व्याकरण	श्रीनिवास शास्त्री	७.५०
संस्कृत निबन्ध माला	डा० रमेशचन्द्र शास्त्री	३.५०
शंकराचार्य और उनके मायावाद तथा अन्य सिद्धान्तों का अध्ययन	डा० राममूर्ति शर्मा	१५.००
भवभूति और कालिदास के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन	डा० सुरेन्द्रदेव शास्त्री	१५.००
संस्कृत काव्य में शकुन	डा० दीपचन्द्र शर्मा	१२.५०
कालिदास की कला, संस्कृति	डा० देवीदत्त	१५.००
धर्मशास्त्र में शूद्रों का स्थान	डा० निरूपण	२५.००
काशिका	डा० हरिदत्त शास्त्री	६.००
भारतीय दर्शन में प्रामाण्यवाद	डा० गान्धी	३०.००

न्यायबिन्दु	डा० श्रीनिवास शास्त्री	१५.००
भारतराष्ट्ररत्नम्	यज्ञेश्वर शर्मा शास्त्री	८.००
संस्कृत नाटकालोचन		५.००
कुन्दमाला		६.००
प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य का इतिहास		५.००
निरुक्त अध्याय १, २, ७	डा० रामकृष्ण आचार्य	
निरुक्त अध्याय १, २, ७	डा० कपिलदेव	६.००
महाभारतकालीन राज्य व्यवस्था	डा० रघुवीर शास्त्री	३०.००
याज्ञवल्क्य स्मृति	डा० सत्यनारायण पाण्डेय	१.५०
निरुक्त : प्रथम अध्याय	डा० कपिलदेव शास्त्री	४.००
वैदिक साहित्य का इतिहास	डा० राममूर्ति शर्मा	४.००
भारतीय साहित्य एवं संस्कृति	सत्य प्रकाश शर्मा	
हर्षचरित (प्रथम)	चुन्नीलाल शुक्ल	३.००
हर्षचरित (पंचम उच्छवास)	डा० कृष्ण कुमार	३.००
अलंकार शास्त्र का इतिहास	डा० कृष्णकुमार	
नैषध महाकाव्य सर्ग १	डा० शिवराज शास्त्री	२.५०
अभिज्ञानशाकुन्तल	डा० राममूर्ति शर्मा	७.००
अभिज्ञानशाकुन्तल	डा० निरूपण विद्यालंकार डा० बाबूराम पाण्डेय	१०.००
भोजप्रबन्ध	डा० शिवराज शास्त्री	२.५०
दशकुमार चरित	सुरेन्द्रदेव शास्त्री	२.५०
उद्भिज्जपरिषत्	डा० कर्णसिह	२.७५
शुकनाशोपदेश	डा० रामनाथ शर्मा	२.००
अपरीक्षित कारकम् (पंचतन्त्र)	डा० कर्णसिह	२.००
नीतिशतकम	महेशचन्द्र भारतीय	२.००
चिन्तन और विवेचन	डा० नारायण पाण्डेय	५.२५
गीतामृतम्	डा० सत्यनारायण पाण्डेय	१.५०
संस्कृत निबन्ध माला	प्रो० सी० मिश्रा	३.००
रघुवंश १ सर्ग	डा० सत्यनारायण पाण्डेय	१.५०
रघुवंश २ सर्ग	डा० सुरेन्द्रदेव शास्त्री	२.५०
रघुवंश ५ सर्ग	डा० सत्यनारायण पाण्डेय	१.७५
रघुवंश १३ सर्ग	डा० कृष्णकुमार	२.५०
संस्कृत रचनानुवाद प्रभा	डा० श्रीनिवास	५.००
धम्मपदम	डा० सत्य प्रकाश शर्मा	४.००
भारतीय संस्कृति का इतिहास	डा० नरेन्द्र सिंह	५.००
संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० सत्यनारायण पाण्डेय	८.००
संस्कृत गद्य भारती	डा० राजकुमार जैन	२.५०
कर्पूरमंजरी	चुन्नीलाल शुक्ल	८.००
छन्दोऽलंकार प्रकाश	डा० कृष्णकुमार	१.००
किरातार्जुनियम् प्रथम सर्ग	डा० कृष्ण कुमार	२.५०
पंचतंत्र (मित्रसम्प्राप्ति)	डा० कर्णसिह	५.००

साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अध्यापकीय पाठशाला तथा राजनीति

श्री लीलाकांत मिश्र
शिक्षण महाविद्यालय, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

एक अध्यापकीय पाठशाला का अस्तित्व प्राचीनतम भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में प्राप्त होता है। सुदूर जंगलों तथा नदी के तटों पर, जहाँ बहुत थोड़ी संख्या में लोग रहते थे, ऋषि-मुनि तप करते और दूर-दूर के नगरों-देशों से आए विद्या-व्यासंगी छात्रों को अपने पास रखकर यथाशक्ति अनुभव एवं विद्यादान से जीवनोपयोगी, वास्तविक, आत्मोद्धारक तथा दार्शनिक शिक्षण देकर उनकी अभावग्रस्त आत्मा को भावमय बनाते थे।

मध्ययुग में भी इस्लामी-संस्कारों के संरक्षक मकतब और हिन्दू-संस्कारों की उद्दीपक पाठशालाओं की विशिष्ट परम्परा के रूप में एकाध्यापकीय पाठशाला का पूर्वानुसंधान चालू ही रहा। ब्रिटिशकालीन भारत में भी दूर-दूर के गाँवों में ज्ञान की ज्योति इन पाठशालाओं के माध्यम से जलती रही। आज भी जमाने की माँग, समाज की शिक्षा-बुभुक्षा तथा अपने देश की पूर्ववत् अविकसित ग्रामीण स्थिति को देखते हुए इन पाठशालाओं के अस्तित्व को कौन नकार सकता है?

एक शिक्षकीय पाठशालाएँ क्यों हैं? इनके कारणों को कैसे रोका जा सकता है? इनकी समस्याएँ क्या हैं? इन सवालों का जवाब ढूँढ़ने के बजाय हमारे राजनेता मूल स्रोत को ही बन्द करने पर तुले रहते हैं।

हंटर कमीशन (१८८२) ने एकाध्यापकीय पाठशाला को भारतीय शिक्षा-पद्धति की एक उत्तम शृंखला के रूप में देखा और उसकी प्रशंसा की—"ऐसी पाठशालाओं को राष्ट्रीय शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर मान्यता तथा आर्थिक सहायता के पात्र गिनना चाहिए; क्योंकि इन पाठशालाओं ने अपनी गुणात्मकता के आधार पर ही अपना अस्तित्व टिका रखा है। इनके मुकाबले में चलाई जाने वाली अन्य सरकारी पाठशालाओं की अपेक्षा ये अधिक सफल रही हैं।" इस प्रशंसात्मक प्रतिवेदन (रिपोर्ट) का परिणाम यह हुआ कि समग्र देश में इस तरह की पाठशालाओं में वृद्धि होने लगी। लेकिन ब्रिटिश लालफीताशाही को यह मंजूर नहीं था; क्योंकि इससे उनके सिर का (आर्थिक) बोझा बढ़ता था। परिणामस्वरूप उन्होंने दूसरी युक्ति लगाई।

१९२४ में कृषि-विषयक रॉयल कमीशन ने एक सर्वेक्षण किया। उस सर्वेक्षण की रिपोर्ट में इस तरह की पाठशालाओं के विषय में अत्यन्त निराशाजनक अभिप्राय पेश किया गया। इसके कुछ ही सालों बाद हर्टाग कमीशन अस्तित्व में आया। इस कमीशन ने लालफीताशाही की तरफ मुँह रखकर इन पाठशालाओं की बहुत टीका की और राजसत्ता से अर्ज की कि इन पाठशालाओं को सर्वथा बंन्द कर दिया जाय; एक तो करेला और फिर नीम चढ़ा। ब्रिटिश सरकार के अमलदारों ने १९वीं शती के अन्तिम दिनों में इन स्वायत्त-संस्थाओं को अधिकांशतः मृतप्राय बना दिया। इसका दुष्परिणाम यह आया कि भारत के ग्रामीण क्षेत्र की बहुत-सी पाठशालाएँ बन्द हुईं और प्राथमिक शिक्षण की सुविधाएँ समाप्त हो गईं।

समाजवादी समाज-रचना की भाषा बोलने वाले राजनेता कोई आज की उपज नहीं हैं, इनका मूल बहुत गहरा है। हर्टाग कमीशन ने एक तरफ यह निर्देश भी दिया है कि उन दिनों हिन्दुस्तान में ६०% एकाध्यापकीय पाठशालाएँ थीं। ये पाठशालाएँ जनसाधारण को सुशिक्षित करती हैं। लार्ड कर्ज़न ने स्पष्ट रूप में स्वीकारा था कि "....प्राथमिक शिक्षा से मेरा अभिप्राय जनसाधारण को मातृभाषा की शिक्षा देना है। मैं उन व्यक्तियों में हूँ, जो ये समझते हैं कि सरकार ने इस दिशा में अपने कर्त्तव्य को निभाया नहीं है........।" छली अंग्रेज राजनीतिज्ञ इन सारे अनुकूल संदर्भों को, मान्य सत्यों को असत्यावरण से ढकने में हमेशा सफल रहे। तभी तो हर्टाग कमीशन ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गुणात्मक वृद्धि' की बात बहका कर भारतीय प्राथमिक शिक्षण के प्राण-तन्तु को तोड़ दिया।

इस तरह वस्तुतः भारतीय शिक्षा में राजनीति का प्रवेश अंग्रेज़ों के भारत-आगमन से ही आरम्भ हो जाता है। अंग्रेज़ों ने सामान्य भारतीय प्रजा की शिक्षा के लिए कभी भी मन और हृदय से नहीं सोचा। भूल से ही सही, कुछ विद्वान् (राजनीतिज्ञ नहीं) अंग्रेजों ने मन से अवश्य सोचा था, लेकिन दिल से तो किसी ने नहीं सोचा।

आवश्यक शिक्षा के क्रमिक विकास की वैज्ञानिकता तो यह है कि सामाजिक आवश्यकता के अनुसार उत्कल्पना के आधार पर स्खलन और प्रयत्न के सहारे क्रमशः उत्तरोत्तर शैक्षणिक समायोजन किया जाय। परन्तु अंग्रेज अमलदारों ने (सरकार ?) सबसे पहले उच्च शिक्षा से प्रारम्भ किया। अंग्रेज़ों के अनुयायी भारतीय नेताओं ने भी वही परम्परा चालू रखी। जहाँ तक बन पाया, उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा में ही यहाँ-वहाँ उलझे रहे।

भारतीय प्राथमिक शिक्षा की समस्याएँ आज भी वैसी ही सिर उठाए मौजूद हैं, जैसी १८८२ में थीं। रॉयल कमीशन, हण्टर कमीशन, हर्टाग कमीशन, सार्जेंट रिपोर्ट, भारतीय संविधान अथवा भारतीय शिक्षा-पत्र (कोठारी कमीशन–'६६) सब के सब 'फ्रिज' में बन्द हो गए। बेसिक शिक्षा अथवा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा— जो भी हवा, जिस किसी भी नाम से, जब कभी भी बही, समस्याओं के निवारण में दवा तो कभी बन ही नहीं पाई।

प्राथमिक शिक्षा के अतिरिक्त अन्य शिक्षा के लिए कई स्वतन्त्र कमीशन नियुक्त किए गए। लोगों ने रिपोर्ट पर हाय-तौबा मचाई। चिन्ताएँ उगलीं। यदि ऐसा न हुआ तो !! अब क्या होगा ? तब क्या होगा ? सब कुछ स्वाहा !! जैसे मुग्धकारी चित्रात्मक प्रश्न मानो (भीड़ के) लोगों ने (भीड़ के) लोगों से, किए और देखते-ही-देखते बिखर गए। लेकिन प्राथमिक शिक्षा के लिए ऐसा ढोंग भी लोगों को गवारा नहीं। सम्पूर्ण रूप से जब प्राथमिक शिक्षा की ही यह हालत रही है, फिर उसके एक अंग—एक शिक्षकीय पाठशाला को कौन पूछता है ?

अंग्रेजों ने १७९१ में 'बनारस संस्कृत कालेज' की स्थापना हिन्दुओं को खुश रखने के लिए की। माध्यमिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार में इसलिए रुचि ली कि इससे उन्हें निम्न-मध्यम स्तर के सस्ते नौकर मिल जाते थे, जिन स्थानों के लिए खानदान अंग्रेज़ युवक हज़ारों मील दूर हिन्दुस्तान आने के लिए प्रस्तुत नहीं थे। लेकिन सर्वसाधारण की चीज होने की वजह से प्राथमिक शिक्षा सर्वदा प्रश्नों के घेरे में बनी रही।

चतुर अंग्रेज नयक अपने बचाव के लिए स्वर्णिम आश्रवाणी में कहते रहे—"Education was to permeate the Mass from Above."—"जन-समूह में शिक्षा ऊपर से छन-छनकर पहुँचती थी।" इसलिए तो इन्होंने भारत में प्रचलित लाखों (एकाध्यापकीय) प्राचीन भारतीय विद्यालयों पर तुषारपात किया। जिस शिक्षा ने भारतीय समाज को उच्छ्‌वसित रखा था, संस्कार जीवित रखे थे; घर-घर, जन-जन अपने पूर्व संस्कारों से परिचित रहते थे; जिसके कारण प्राचीन साहित्य-पुराण साबित रहे; इंसानियत की मशाल जलती रही; संतों की वाणी में अहिंसा के बीज अंकुरित होते रहे; भाई-बिरादरी के नाते दार्शनिकता का स्वरूप धारण करते रहे—उस शिक्षा को अपनी स्वार्थ-तुला पर रखकर विदेशियों ने हलका करार दिया।

'अंग्रेज़ अधिकारी हमेशा यह जानते रहे कि नागरिकों को शिक्षित करने का दायित्व राज्य पर होता है, न कि स्थानीय संस्थाओं पर। फिर बार-बार यह कहकर टालते रहे कि यह काम स्थानीय संस्थाओं को करना चाहिए।' अंग्रेज़ राजनयिकों की ही भाषा को भारतीय नेता भी दोहराते रहे हैं। वास्तविकता का सामना न करके अगल-बगल झाँकते रहे हैं। १९५१ की जनगणना के अनुसार भारत में ५,५८,०८८ ग्राम हैं। इनमें से ३,८०,०२० ग्राम ऐसे हैं, जिनकी जनसंख्या ५०० से कम है। अतः यदि शिक्षा को अनिवार्य बनाना है तो लगभग ४ लाख ग्रामों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना करनी पड़ेगी। अपव्यय और अवरोधन को देखते हुए कहा जा सकता है कि इन ग्रामों में एक शिक्षकीय पाठशाला ही बनाई जा सकती है। एक रिपोर्ट के अनुसार १९५८-५९ में भारत में एकाध्यापकीय पाठशालाओं की संख्या १,२६,२३८ थी, जिनमें ४९,३९,१४१ छात्र पढ़ रहे थे।

एक शिक्षकीय पाठशाला के विषय में राजनेताओं के रुख को देखते हुए जब हम उपर्युक्त आँकड़े को देखते

[शेष पृष्ठ १०२ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा पर राजनीति का प्रभाव

डा० एस० एस० माथुर
रीडर—शिक्षा विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

एक राष्ट्र की राजनीति उस राष्ट्र की शिक्षा-व्यवस्था पर अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। राजनीति के प्रभाव का संकेत प्लेटो से लेकर आज तक के सब चिन्तक देते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि राजनीति शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण से लेकर किन विषयों का शिक्षण दिया जाय, कैसे दिया जाय, कौन दे—सबके सम्बन्ध में निर्णय प्रदान करती है। यहाँ हमारा ध्येय राजनीति के महत्त्व के सम्बन्ध में विवेचन करना नहीं है वरन् यह देखना है कि राजनीति का प्रभाव किस प्रकार पड़ता है। हम केवल माध्यमिक विद्यालयों के सन्दर्भ में ही राजनीति के प्रभाव का वर्णन करेंगे।

आज माध्यमिक विद्यालयों का महत्व बढ़ता जा रहा है। इसके कई कारण हैं। आठवीं कक्षा तक शिक्षा सबके लिये अनिवार्य हो जाय, ऐसा प्रयास केवल भारत में ही नहीं वरन् संसार के सब पिछड़े देशों में हो रहा है। अतएव प्रत्येक बालक के लिये वांछित माध्यमिक शिक्षा का आयोजन होना आवश्यक समझा जाने लगा है। इस के अतिरिक्त एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि अधिकतर विद्यार्थी माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् जीवन के कार्य-क्षेत्र में उतरने के लिए तैयार किये जाने लगे हैं, और जिन राष्ट्रों में ऐसा नहीं हो रहा है वहाँ पर शिक्षा-पद्धति में आवश्यक सुधार लाने की माँग हो रही है। इस प्रकार माध्यमिक विद्यालय आज किसी भी राष्ट्र या समाज के उत्थान के लिए सबसे महत्वपूर्ण साधन समझे जाते हैं। माध्यमिक विद्यालयों के महत्व के कारण ही वह प्रशासकों एवं राजनीतिज्ञों के आकर्षण के केन्द्र बन गये हैं।

यहाँ हमारा ध्येय किस प्रकार प्रशासक तथा राजनीतिज्ञ विद्यालयों के कार्यक्रम अथवा व्यवस्था में हस्तक्षेप करते हैं इस ओर ध्यान देना नहीं है वरन् इस ओर प्रकाश डालना है कि राष्ट्र की राजनीति माध्यमिक विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा को क्या दिशा प्रदान करती है और इस प्रकार से दिशा प्रदान करने में, समाज के लिए तथा राष्ट्र के लिए क्या व्यक्ति के हित अथवा अहित निहित है।

विभिन्न राष्ट्रों में राजनीति द्वारा शिक्षा को दिशा प्रदान करने के प्रयास—हम यहाँ केवल दूसरे महायुद्ध के काल से वर्तमान काल तक ही अपने को सीमित रखेंगे। दूसरे महायुद्ध से पहले तथा इसके समय जिस प्रकार से जर्मनी तथा इटली ने अपने माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा का संगठन किया वह राजनीति के प्रभाव के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। वहाँ फासिस्ट शासकों ने पूर्ण रूप से शिक्षा पर आधिपत्य जमा लिया था। उन्होंने शिक्षा को अपने राजनीति सम्बन्धी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मुख्य साधन बना लिया था। न जर्मनी में, न ही इटली में कोई भी विद्यार्थी राज्य की नीतियों के विरुद्ध कुछ पढ़ या जान सकता था। बालकों को शिक्षा इस प्रकार दी जाती थी कि उनके मस्तिष्क बन्द हो जाते थे और वे केवल उसी दिशा में विचार कर सकते थे जिसमें कि राज्य उन्हें ऐसा करने देना चाहता था। विद्यालयों में उन्हें अनुशासित रहने, साहस प्रदर्शित करने, राष्ट्र के कर्णधारों की ओर पूर्ण आदर व्यक्त करने, परम्पराओं में अटूट विश्वास रखने तथा नैतिक जीवन के पाठ पढ़ाये जाते थे। उन्हें 'मत शिक्षण' देकर राजनीति ऐसे कूप में उतार देती थी जिससे बाहर निकलना संभव नहीं। विलियम्स जारज (I) फासिस्ट इटली के माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के 'मत शिक्षण' और एक कूप में उतारने का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

"१९३१ में इटली के नवीं कक्षा के एक विद्यार्थी से इस विषय पर विचार प्रकट करने को कहा गया, **जो अपने देश के लिए मरता है, वह पर्याप्त जी लिया**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।" (He, who dies for his country, has lived sufficiently.)। इस विद्यार्थी ने लिखा, "वह युवा जीव थे जो अपने देश के लिए बलिवेदी पर चढ़ गये ताकि वह अपना बलिदान इसकी महानता के लिए कर सके; वह ऐसे युवक थे जिनकी अभी तक दाढ़ी भी नहीं निकली थी, दिल उनका इतना बड़ा था जैसे समुद्र, आदर्श इतने ऊँचे जितना कि आकाश, जिन्होंने प्रसन्नतापूर्ण अपने होठों पर मुस्कराहट लिए अपना सीना दुश्मनों की मशीनगनों के सामने कर दिया, और लड़ाई में शान्त आत्मा के साथ दौड़े चले गये, हथियार लिए, और अपने राष्ट्र के भाग्य में विश्वास लिए हुए बढ़ते गये।"

ऐसे उद्गार उस समय के विद्यार्थी व्यक्त करते थे क्योंकि उन्हें अपने माध्यमिक विद्यालयों में ऐसी ही शिक्षा मिली थी। अतएव स्पष्ट है कि राजनीतिज्ञ यदि चाहें तो युवा मस्तिष्कों को शिक्षा द्वारा एक फौलादी साँचे में ढाल सकते हैं। वर्तमान समय में चीन की शिक्षा-प्रणाली एक ऐसा उदाहरण है जो राजनीतिज्ञों के द्वारा प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा पर नियंत्रण रखकर चीनी युवकों को एक ऐसे फौलादी साँचे में ढाल देती है जिसकी जकड़ कभी ढीली नहीं पड़ती। आज का चीन और रूस यदि राजनीति का प्रभाव फौलादी साँचे में ढालने की ओर प्रदर्शित करते हैं तो कुछ जनतंत्रीय राज्यों के उदाहरण स्वतंत्र विचारधारा के विकास की ओर भी संकेत करते हैं। अनेक जनतन्त्रीय राज्यों में आज युवक प्रश्न पर प्रश्न उठा रहा है कि क्या उनके राष्ट्रों की व्यवस्था ठीक है, उनका प्रशासन उसी ढंग से चल रहा है जैसा कि राष्ट्र के नेता उसे चलता हुआ बताते हैं। यहाँ हम इस बात पर बल देना चाहेंगे कि शिक्षा चाहे खुले विचारों को बढ़ावा देने के लिए हो अथवा साँचे में बन्द करने के लिए। राजनीति के प्रभाव से यह बची नहीं रहती। और यह भी कि जहाँ यह खुले विचारों को बढ़ावा देने वाली होती है वहाँ इसके ऊपर नियंत्रण लगाने के लिए राजनीतिज्ञ तिलमिलाने लगते हैं और अनेक बार खुले विचारों की शिक्षा राजनीति के प्रभाव में आकर केवल एक ढोंग बनकर ही रह जाती है।

राजनीति का माध्यमिक शिक्षा पर प्रभाव हितकर अथवा अहितकर—यह कहना अत्यन्त कठिन है कि माध्यमिक शिक्षा पर राजनीति का प्रभाव हितकर अथवा अहितकर होता है। क्योंकि बिना राजनीति के प्रभाव के कोई भी शिक्षा-प्रणाली वर्तमान काल में जन-शिक्षा का रूप नहीं ले सकती है। इस कारण यह प्रश्न कि शिक्षा पर राजनीति का प्रभाव पड़े या न पड़े, क्योंकि यह हितकर है या अहितकर है, व्यर्थ है। देखना है कि राजनीति किस प्रकार शिक्षा पर ऐसा प्रभाव डाले कि वह व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए लाभप्रद हो और दोनों का विकास कर सके। हम इस समस्या को इस प्रकार रख सकते हैं कि क्या राजनीति को, शिक्षा को ऐसा मोड़ देना चाहिए कि वह विद्यार्थियों में विश्वास तथा श्रद्धा उत्पन्न करे या शिक्षा को इस प्रकार प्रभावित करे कि वह व्यक्तिगत विकास की ओर ही प्रयास करे और व्यक्ति में स्वतंत्र विचार करने की क्षमता उत्पन्न करे ताकि यह व्यक्ति राजनीति को भी शुद्ध कर सकें और राष्ट्र और समाज को अपने ढंग से उन्नति की ओर ले जायँ। जनतंत्रीय राज्य में संभवतः अधिकतर शिक्षक तथा राजनीतिज्ञ भी स्वतंत्र विचारों के समर्थक पाये जायेंगे। वह 'मत शिक्षण' के विरोधी होंगे, किन्तु जैसा ऊपर संकेत दिया गया है, स्वतंत्र विचारों के लिए शिक्षण का समर्थन करते हुए भी जनतंत्र राज्यों में भी राजनीति 'मत शिक्षण' की ओर ही उन्मुख होती है। ऐसा कैसे होता है ?

जनतंत्र राज्यों में जो भी राजनैतिक दल सरकार बनाता है, वह चाहता है कि उसकी विचारधारा ही शिक्षा के क्षेत्र में प्रचलित हो। आज माध्यमिक विद्यालयों पर बढ़ते हुए सरकारी नियंत्रण द्वारा यह अधिक सम्भव हो गया है। ध्यान देने की बात है कि विश्वविद्यालयीय शिक्षा पर तो सरकार के नियन्त्रण होने पर व्यापक विरोध होता है किन्तु किसी भी देश में माध्यमिक शिक्षा पर सरकारी नियन्त्रण का गम्भीर विरोध नहीं होता। चाहे वह लन्दन का माध्यमिक विद्यालय हो या न्यूयार्क का, राज्य सरकार का नियन्त्रण उस पर पर्याप्त मात्रा में रहता ही है। संभवतः ऊपर व्यक्त किए हुए विचार को यह कहकर ग़लत बताया जाय कि वहाँ 'स्थानीय प्रशासन' का नियन्त्रण रहता है, न कि राज्य या केन्द्रीय सरकार का। जहाँ तक नियन्त्रण का प्रश्न प्रशासन के अन्तर्गत है, विरोध उपयुक्त है। किन्तु माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा के क्या उद्देश्य सामने रखे जाते हैं ? क्या विषय पढ़ाए जाते हैं ? किन विचारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रतिपादन पर रोक होती है और कौन-से मस्तिष्क में भरे जाते हैं। इन सब का निर्णय बिना राज्य अथवा केन्द्रीय सरकार की सम्मति के नहीं लिया जाता है। अतएव कोई भी शिक्षा-प्रणाली आज ऐसी नहीं है जो राज्य के 'मत शिक्षण' से स्वतन्त्र हो। और 'मत शिक्षण' का स्थान है माध्यमिक विद्यालय और समय है बाल्यपन से किशोरावस्था तक। यह इन स्थानों और समय पर 'मत शिक्षण' का फल ही है कि आज भी अमरीका में नीग्रो को हीन समझा जाता है; लन्दन में काले-गोरों की समस्या का कोई हल प्राप्त नहीं होता, और इसी प्रकार के अनेक अन्य उदाहरण जनतन्त्र राज्यों के दिए जा सकते हैं जहाँ राजनीति माध्यमिक शिक्षा पर अप्रत्यक्ष ढंग से ऐसा प्रभाव डालती है कि उस प्रकार का 'मत शिक्षण' विद्यालयों में दिया जाता है जैसा कि राजनीतिज्ञ चाहते हैं। आज दशा यह है कि फासिस्ट तथा साम्यवादी देश तो प्रत्यक्ष रूप से माध्यमिक विद्यालयों पर नियन्त्रण रखकर उनको ऐसी शिक्षा देने को बाध्य करते हैं जो कि प्रशासन द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को विद्यार्थियों के मस्तिष्क में इस प्रकार भर देते हैं कि वह उनमें अटूट विश्वास रखने लगते हैं जबकि प्रजातन्त्रीय देशों में अप्रत्यक्ष रूप से ऐसा करने की चेष्टा की जाती है। इस कारण यह कहना कि प्रजातंत्रीय शिक्षा-प्रणाली अच्छी है क्योंकि यहाँ 'मत शिक्षण' नहीं होता, राजनीति का प्रभाव कम पड़ता है, अथवा स्वतन्त्र विचारों को प्रकट करने की शिक्षा दी जाती है, ग़लत है। प्रजातन्त्र राज्य अपने विश्वविद्यालयों की शिक्षा की ओर संकेत करके गौरव से अपना सिर ऊपर उठाते हैं कि उनमें विचारों को स्वतन्त्र रूप से व्यक्त करने का वातावरण प्रदान किया जाता है किन्तु माध्यमिक विद्यालयों पर अपने नियन्त्रण के सम्बन्ध में चुप ही रहते हैं। आज की शिक्षा-प्रणाली के मुख्य दोष इस बहुरूपियेपन के कारण ही है। भारत का उदाहरण लेकर इस विचार को और स्पष्ट किया जा सकता है।

भारत में माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा पर राजनीति का प्रभाव—भारत, प्रजातन्त्र राज्यों में किस प्रकार 'मत शिक्षण' शिक्षा-प्रणाली का मुख्य कार्य होता है, इसका सम्भवतः सबसे अच्छा उदाहरण है। इस देश में लगभग सब माध्यमिक विद्यालयों पर, चाहे वह सरकारी हो, या गैर-सरकारी परन्तु अनुदान प्राप्त हों, सरकार द्वारा नियन्त्रण रखा जाता है। पाठ्यक्रम का निर्धारण ऐसे विभागों द्वारा होता है जो सरकारी कर्मचारियों द्वारा संचालित होते हैं। पाठ्यपुस्तकें राज्य सरकारों द्वारा अथवा राज्य कर्मचारियों द्वारा नियन्त्रित संस्थाओं द्वारा स्वीकृत की जाती हैं। शिक्षकों की नियुक्ति, वेतन तथा पदोन्नति सब पर राज्य सरकार का नियन्त्रण रहता है। अतएव जो राज्य और केन्द्र की राजनीति होती है वही शिक्षा-प्रणाली पर प्रभाव डालती है। यदि राज्य और केन्द्र में विभिन्न राजनीति होती है या विभिन्न दलों की सरकार होती है तो शिक्षा के क्षेत्र में भी रस्साकशी होती है। केरल की कम्युनिस्ट सरकार का पतन शिक्षा-सम्बन्धी नीतियों के कारण जो केन्द्र की कांग्रेसी सरकार की नीतियों की विरोधी थी, हो गया था।

इतना सब कुछ होने पर भी यह नारा समय-समय पर सुनने को मिलता है कि "शिक्षा को राजनीति से स्वतन्त्र किया जाए"। यह नारा उन व्यक्तियों द्वारा लगाया जाता है, जो कि सरकार और राजनीति में विभेद करते हैं। जब कोई अन्य राजनैतिक दल जिसकी सरकार नहीं है, शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रकट करता है या कहीं हस्तक्षेप करता है तो ऐसे नारे उठा दिए जाते हैं। विचार करने की बात यह है कि राजनीति तो शिक्षा में उस समय ही प्रवेश पा जाती है जब सरकार जो किसी राजनैतिक दल की होती है, उस पर नियन्त्रण रख कर 'मत शिक्षण' को माध्यमिक विद्यालयों में प्रोत्साहित करती है।

भारत में एक दोहरी विचारधारा बहुत प्रचलित है। 'मत शिक्षण' बुरा है, यह मस्तिष्क को बन्द कर देता है। किन्तु हमें शिक्षा द्वारा 'सहनशीलता' सीखनी चाहिए। क्या सहनशीलता का सीखना 'मत शिक्षण' नहीं है? गहराई से देखने पर 'मत शिक्षण' और 'सहनशीलता' के सीखने में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ेगा। जब हम 'सहनशीलता' का सीखना कहते हैं तो हमारा बल इस बात पर ही होता है कि जो प्रचलित विचारधारा है, उसे मान्यता मिले। जो परम्पराएँ हैं, वे सहन की जायें। सहनशील होने से यह भी अर्थ लगाया जाता है कि व्यक्ति की विचारधारा से जो विपरीत विचार हैं, उन्हें भी आदर की दृष्टि से देखा जाय। सहनशीलता सीखने के समर्थक इस शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।" (He, who dies for his country, has lived sufficiently.)। इस विद्यार्थी ने लिखा, "वह युवा जीव थे जो अपने देश के लिए बलिवेदी पर चढ़ गये ताकि वह अपना बलिदान इसकी महानता के लिए कर सके; वह ऐसे युवक थे जिनकी अभी तक दाढ़ी भी नहीं निकली थी, दिल उनका इतना बड़ा था जैसे समुद्र, आदर्श इतने ऊँचे जितना कि आकाश, जिन्होंने प्रसन्नतापूर्ण अपने होठों पर मुस्कराहट लिए अपना सीना दुश्मनों की मशीनगनों के सामने कर दिया, और लड़ाई में शान्त आत्मा के साथ दौड़े चले गये, हथियार लिए, और अपने राष्ट्र के भाग्य में विश्वास लिए हुए बढ़ते गये।"

ऐसे उद्गार उस समय के विद्यार्थी व्यक्त करते थे क्योंकि उन्हें अपने माध्यमिक विद्यालयों में ऐसी ही शिक्षा मिली थी। अतएव स्पष्ट है कि राजनीतिज्ञ यदि चाहें तो युवा मस्तिष्कों को शिक्षा द्वारा एक फौलादी साँचे में ढाल सकते हैं। वर्तमान समय में चीन की शिक्षा-प्रणाली एक ऐसा उदाहरण है जो राजनीतिज्ञों के द्वारा प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा पर नियंत्रण रखकर चीनी युवकों को एक ऐसे फौलादी सांचे में ढाल देती है जिसकी जकड़ कभी ढीली नहीं पड़ती। आज का चीन और रूस यदि राजनीति का प्रभाव फौलादी साँचे में ढालने की ओर प्रदर्शित करते हैं तो कुछ जनतंत्रीय राज्यों के उदाहरण स्वतंत्र विचारधारा के विकास की ओर भी संकेत करते हैं। अनेक जनतन्त्रीय राज्यों में आज युवक प्रश्न पर प्रश्न उठा रहा है कि क्या उनके राष्ट्रों की व्यवस्था ठीक है, उनका प्रशासन उसी ढंग से चल रहा है जैसा कि राष्ट्र के नेता उसे चलता हुआ बताते हैं। यहाँ हम इस बात पर बल देना चाहेंगे कि शिक्षा चाहे खुले विचारों को बढ़ावा देने के लिए हो अथवा साँचे में बन्द करने के लिए। राजनीति के प्रभाव से यह बची नहीं रहती। और यह भी कि जहाँ यह खुले विचारों को बढ़ावा देने वाली होती है वहाँ इसके ऊपर नियंत्रण लगाने के लिए राजनीतिज्ञ तिलमिलाने लगते हैं और अनेक बार खुले विचारों की शिक्षा राजनीति के प्रभाव में आकर केवल एक ढोंग बनकर ही रह जाती है।

राजनीति का माध्यमिक शिक्षा पर प्रभाव हितकर अथवा अहितकर—यह कहना अत्यन्त कठिन है कि माध्यमिक शिक्षा पर राजनीति का प्रभाव हितकर अथवा अहितकर होता है। क्योंकि बिना राजनीति के प्रभाव के कोई भी शिक्षा-प्रणाली वर्तमान काल में जन-शिक्षा का रूप नहीं ले सकती है। इस कारण यह प्रश्न कि शिक्षा पर राजनीति का प्रभाव पड़े या न पड़े, क्योंकि यह हितकर है या अहितकर है, व्यर्थ है। देखना है कि राजनीति किस प्रकार शिक्षा पर ऐसा प्रभाव डाले कि वह व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए लाभप्रद हो और दोनों का विकास कर सके। हम इस समस्या को इस प्रकार रख सकते हैं कि क्या राजनीति को, शिक्षा को ऐसा मोड़ देना चाहिए कि वह विद्यार्थियों में विश्वास तथा श्रद्धा उत्पन्न करे या शिक्षा को इस प्रकार प्रभावित करे कि वह व्यक्तिगत विकास की ओर ही प्रयास करे और व्यक्ति में स्वतंत्र विचार करने की क्षमता उत्पन्न करे ताकि यह व्यक्ति राजनीति को भी शुद्ध कर सकें और राष्ट्र और समाज को अपने ढंग से उन्नति की ओर ले जायँ। जनतंत्रीय राज्य में संभवतः अधिकतर शिक्षक तथा राजनीतिज्ञ भी स्वतंत्र विचारों के समर्थक पाये जायेंगे। वह 'मत शिक्षण' के विरोधी होंगे, किन्तु जैसा ऊपर संकेत दिया गया है, स्वतंत्र विचारों के लिए शिक्षण का समर्थन करते हुए भी जनतंत्र राज्यों में भी राजनीति 'मत शिक्षण' की ओर ही उन्मुख होती है। ऐसा कैसे होता है?

जनतंत्र राज्यों में जो भी राजनैतिक दल सरकार बनाता है, वह चाहता है कि उसकी विचारधारा ही शिक्षा के क्षेत्र में प्रचलित हो। आज माध्यमिक विद्यालयों पर बढ़ते हुए सरकारी नियंत्रण द्वारा यह अधिक सम्भव हो गया है। ध्यान देने की बात है कि विश्व-विद्यालयीय शिक्षा पर तो सरकार के नियन्त्रण होने पर व्यापक विरोध होता है किन्तु किसी भी देश में माध्यमिक शिक्षा पर सरकारी नियन्त्रण का गम्भीर विरोध नहीं होता। चाहे वह लन्दन का माध्यमिक विद्यालय हो या न्यूयार्क का, राज्य सरकार का नियन्त्रण उस पर पर्याप्त मात्रा में रहता ही है। संभवत: ऊपर व्यक्त किए हुए विचार को यह कहकर ग़लत बताया जाय कि वहाँ 'स्थानीय प्रशासन' का नियन्त्रण रहता है, न कि राज्य या केन्द्रीय सरकार का। जहाँ तक नियन्त्रण का प्रश्न प्रशासन के अन्तर्गत है, विरोध उपयुक्त है। किन्तु माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा के क्या उद्देश्य सामने रखे जाते हैं? क्या विषय पढ़ाए जाते हैं? किन विचारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के प्रतिपादन पर रोक होती है और कौन-से मस्तिष्क में भरे जाते हैं। इन सब का निर्णय बिना राज्य अथवा केन्द्रीय सरकार की सम्मति के नहीं लिया जाता है। अतएव कोई भी शिक्षा-प्रणाली आज ऐसी नहीं है जो राज्य के 'मत शिक्षण' से स्वतन्त्र हो। और 'मत शिक्षण' का स्थान है माध्यमिक विद्यालय और समय है बाल्यपन से किशोरावस्था तक। यह इन स्थानों और समय पर 'मत शिक्षण' का फल ही है कि आज भी अमरीका में नीग्रो को हीन समझा जाता है; लन्दन में काले-गोरों की समस्या का कोई हल प्राप्त नहीं होता, और इसी प्रकार के अनेक अन्य उदाहरण जनतन्त्र राज्यों के दिए जा सकते हैं जहाँ राजनीति माध्यमिक शिक्षा पर अप्रत्यक्ष ढंग से ऐसा प्रभाव डालती है कि उस प्रकार का 'मत शिक्षण' विद्यालयों में दिया जाता है जैसा कि राजनीतिज्ञ चाहते हैं। आज दशा यह है कि फासिस्ट तथा साम्यवादी देश तो प्रत्यक्ष रूप से माध्यमिक विद्यालयों पर नियन्त्रण रखकर उनको ऐसी शिक्षा देने को बाध्य करते हैं जो कि प्रशासन द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को विद्यार्थियों के मस्तिष्क में इस प्रकार भर देते हैं कि वह उनमें अटूट विश्वास रखने लगते हैं जबकि प्रजातन्त्रीय देशों में अप्रत्यक्ष रूप से ऐसा करने की चेष्टा की जाती है। इस कारण यह कहना कि प्रजातंत्रीय शिक्षा-प्रणाली अच्छी है क्योंकि यहाँ 'मत शिक्षण' नहीं होता, राजनीति का प्रभाव कम पड़ता है, अथवा स्वतन्त्र विचारों को प्रकट करने की शिक्षा दी जाती है, ग़लत है। प्रजातन्त्र राज्य अपने विश्वविद्यालयों की शिक्षा की ओर संकेत करके गौरव से अपना सिर ऊपर उठाते हैं कि उनमें विचारों को स्वतन्त्र रूप से व्यक्त करने का वातावरण प्रदान किया जाता है किन्तु माध्यमिक विद्यालयों पर अपने नियन्त्रण के सम्बन्ध में चुप ही रहते हैं। आज की शिक्षा-प्रणाली के मुख्य दोष इस बहुरूपियेपन के कारण ही है। भारत का उदाहरण लेकर इस विचार को और स्पष्ट किया जा सकता है।

भारत में माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा पर राजनीति का प्रभाव—भारत, प्रजातन्त्र राज्यों में किस प्रकार 'मत शिक्षण' शिक्षा-प्रणाली का मुख्य कार्य होता है, इसका सम्भवतः सबसे अच्छा उदाहरण है। इस देश में लगभग सब माध्यमिक विद्यालयों पर, चाहे वह सरकारी हो, या गैर-सरकारी परन्तु अनुदान प्राप्त हों, सरकार द्वारा नियन्त्रण रखा जाता है। पाठ्यक्रम का निर्धारण ऐसे विभागों द्वारा होता है जो सरकारी कर्मचारियों द्वारा संचालित होते हैं। पाठ्यपुस्तकें राज्य सरकारों द्वारा अथवा राज्य कर्मचारियों द्वारा नियन्त्रित संस्थाओं द्वारा स्वीकृत की जाती हैं। शिक्षकों की नियुक्ति, वेतन तथा पदोन्नति सब पर राज्य सरकार का नियन्त्रण रहता है। अतएव जो राज्य और केन्द्र की राजनीति होती है वही शिक्षा-प्रणाली पर प्रभाव डालती है। यदि राज्य और केन्द्र में विभिन्न राजनीति होती है या विभिन्न दलों की सरकार होती है तो शिक्षा के क्षेत्र में भी रस्साकशी होती है। केरल की कम्युनिस्ट सरकार का पतन शिक्षा-सम्बन्धी नीतियों के कारण जो केन्द्र की कांग्रेसी सरकार की नीतियों की विरोधी थी, हो गया था।

इतना सब कुछ होने पर भी यह नारा समय-समय पर सुनने को मिलता है कि "शिक्षा को राजनीति से स्वतन्त्र किया जाए"। यह नारा उन व्यक्तियों द्वारा लगाया जाता है, जो कि सरकार और राजनीति में विभेद करते हैं। जब कोई अन्य राजनैतिक दल जिसकी सरकार नहीं है, शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रकट करता है या कहीं हस्तक्षेप करता है तो ऐसे नारे उठा दिए जाते हैं। विचार करने की बात यह है कि राजनीति तो शिक्षा में उस समय ही प्रवेश पा जाती है जब सरकार जो किसी राजनैतिक दल की होती है, उस पर नियन्त्रण रख कर 'मत शिक्षण' को माध्यमिक विद्यालयों में प्रोत्साहित करती है।

भारत में एक दोहरी विचारधारा बहुत प्रचलित है। 'मत शिक्षण' बुरा है, यह मस्तिष्क को बन्द कर देता है। किन्तु हमें शिक्षा द्वारा 'सहनशीलता' सीखनी चाहिए। क्या सहनशीलता का सीखना 'मत शिक्षण' नहीं है? गहराई से देखने पर 'मत शिक्षण' और 'सहनशीलता' के सीखने में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ेगा। जब हम 'सहनशीलता' का सीखना कहते हैं तो हमारा बल इस बात पर ही होता है कि जो प्रचलित विचारधारा है, उसे मान्यता मिले। जो परम्पराएँ हैं, वे सहन की जायें। सहनशील होने से यह भी अर्थ लगाया जाता है कि व्यक्ति की विचारधारा से जो विपरीत विचार हैं, उन्हें भी आदर की दृष्टि से देखा जाय। सहनशीलता सीखने के समर्थक इस शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयोग विशेष रूप से इस अर्थ में ही करते हैं। किन्तु यह अर्थ धोखा देने वाला है। आज वस्तुओं की कीमतें बढ़ रही हैं। आप इससे परेशान हैं किन्तु सरकार कहती है, 'सहन करो क्योंकि ऐसा तो संसार-भर में हो रहा है', आप इस विचार को सहन करें और हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें। यदि आप ऐसी सहनशीलता सीखते हैं तो इसमें तथा 'मत शिक्षण' में क्या अन्तर रह गया? इटली में भी यही प्रतिपादित किया गया था कि राष्ट्र के कर्णधार ही सब कुछ हैं, उनकी बात ही मानो। माओ के चीन में भी यही स्थिति है। अतएव जनतन्त्र में सहनशीलता का नारा 'मत शिक्षण', जो साम्यवादी देशों के सन्दर्भ में वर्णन किया जाता है, उससे बहुत अधिक भिन्न नहीं है।

आज की शिक्षा-प्रणाली में तभी सुधार लाया जा सकता है जबकि इसके सम्बन्ध में दोहरी नीतियाँ न अपनाई जायें। माध्यमिक विद्यालयों पर सरकारी नियन्त्रण कम किया जाय। यह नहीं कि जब जयप्रकाश नारायण शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ कहें तो राजनीतिज्ञों का हस्तक्षेप समझा जाए और जब सरकार परम्परागत शिक्षा पर बल दे तो उसे प्रजातांत्रिक शिक्षा का नाम दिया जाय। जब 'मत शिक्षण' का नाम लिया जाय तो राजनीति के हस्तक्षेप के दूषित परिणामों की ओर संकेत किया जाय और जब 'सहनशीलता' कहा जाय तो प्रजातन्त्र के लिए इसे महत्त्वपूर्ण समझा जाय।

माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा में राजनीति का प्रवेश रोका जाना कठिन है। किन्तु यह प्रवेश इस प्रकार होना चाहिए कि विद्यार्थी असहनशीलता सीखें। वह समझ लें कि दुष्कर्म को सहन करना पाप है। वह जहाँ कहीं नीचता, गन्दगी बढ़ी हो, उससे लड़ने को तैयार हों। उनका मस्तिष्क वास्तविक रूप से स्वतन्त्र हो, न कि प्रजातन्त्र तथा सहनशीलता के ढोंग के अन्दर और अधिक बन्धन में बँध गया हो।

यहाँ एक विचार प्रचलित विचारधारा के विपरीत रखा गया है। आज तक भारत में प्रत्येक राजनीतिज्ञ, प्रत्येक शिक्षक एवं प्रत्येक उपदेशक सहनशीलता का ही पाठ पढ़ाता रहा है। इस पाठ ने ही देश को गरीब, यहाँ की जनता को असहाय और यहाँ के युवक को कामचोर बना दिया है। इस कारण अब जो पाठ पढ़ाए जायँ, वे असहनशीलता के ही हों, न कि सहनशीलता के। हमें सीखना चाहिए कि विद्यार्थी, विरोधी विचारों को सुनें, ग्रहण करें, उन पर चिन्तन करें पर ऐसे विचारों को कभी सहन न करें जो समाज, राष्ट्र तथा व्यक्तिगत विकास के रास्ते में रुकावट हों चाहे वह किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रतिपादित हों। चाहे वह व्यक्ति महात्मा का जामा पहने हो या राष्ट्र की सरकार का निर्माता हो, या अपना बुजुर्ग ही क्यों न हो, यदि उसका विचार प्रगति के रास्ते में रुकावट पैदा करने वाला हो तो उसका विरोध अवश्य किया जाय, उसे सहन न किया जाय। जब तक इस प्रकार की शिक्षा प्रजातन्त्र राज्यों में नहीं दी जायेगी तब तक स्वतन्त्र रूप से शिक्षा देने का ढोंग ही बना रहेगा। ●

[पृष्ठ ६८ का शेषांश]

हैं, तो आश्चर्य होता है कि हमारे देश के लिए एक शिक्षकीय पाठशाला के आमूल सुधार के सिवाय अन्य कोई चारा नहीं है। इसके अस्तित्व को नकारने का अर्थ है, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा से मुँह मोड़ना। फिर भी आँख पर पट्टी बाँधे हुए कुछ लोग अनेक आरोप लगाकर हर्टाग समिति (१९२७) की तरह फिर से इन स्कूलों पर कोप दृष्टि डाल रहे हैं।

स्वतन्त्रता के बाद शिक्षित बेकारों को रोजी दिलाने के बहाने समग्र भारत में ८०,००० एक शिक्षकीय पाठशाला आरम्भ करने की महत्त्वाकांक्षा भारत-सरकार की थी। इस निर्णय से जो आशा की किरणें फूटी थीं, आज उन पर भी काई-सी लग गई है। बहुतों को पता नहीं होगा कि ऐसे स्कूल भी महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। आस्ट्रेलिया ने इन स्कूलों पर आदर्श प्रयोग किए हैं। अमेरिका में कई पद्धतियाँ प्रचलित हैं। प्रयोग और अनुसन्धान के माध्यम से इन स्कूलों की क्षति दूर की जा सकती हैं। लेकिन राजनीति के चश्मे से देखने पर उपाय नहीं मिलते, केवल कठिनाई दिखती है। यही कारण है कि भारत की अनेक समस्याएँ, समस्याएँ ही बनी रह गई हैं। लगता है क्षुद्र स्वार्थ वाली राजनीति के लिए यह एक अन्तर्राष्ट्रीय सनातन सिद्धान्त-सा बन गया है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय और राजनीति

डॉ० इन्दिरा जोशी
रीडर—हिन्दी विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय

[आज देश-भर में 'शिक्षा और राजनीति' विषय को लेकर, स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त चर्चा चल रही है। किन्तु अब समय आ गया है कि राष्ट्र के वर्तमान एवं भविष्य दोनों पर ही दूरव्यापी प्रभाव रखने वाली इस समस्या पर गम्भीरता, विवेक एवं सदाशयता से विचार-विमर्श किया जाय।

'शिक्षा' और 'राजनीति' पदों की आज यत्र-तत्र, मनमानी व्याख्या की जा रही है और इस सम्बन्ध में बहुधा भ्रामक मन्तव्य प्रकाशित किये जा रहे हैं। विश्वविद्यालय 'शिक्षा' के 'गढ़' माने जाते हैं, अत: उन्हें ही इस बारे में सबसे अधिक विवाद का विषय बनना पड़ रहा है। वस्तुत: 'शिक्षा' का अभिप्राय प्राय: अत्यन्त संकीर्ण एवं रूढ़ अर्थों में लिया जाता है अर्थात् बालकों और युवकों को साक्षर बनाकर, उन्हें विविध विषयों में कामचलाऊ या चलताऊ ज्ञान देना। उन्हें आजीविका (विशेषतया 'नौकरी') के लिए तैयार करना ही 'शिक्षा' का प्रधान अभिप्राय मान लिया गया हैं। यही व्याख्या, हमारे समग्र शिक्षण-संस्थानों के निम्न-स्तरीय अथवा अ-स्तरीय हो जाने का मुख्य कारण है।

कहना न होगा कि हमारे विश्वविद्यालय, ऐसी भ्रान्त धारणाओं के सबसे अधिक शिकार बने हैं और दिनोंदिन उनका रूप इतना विकृत होता जाता है कि उन्हें 'विश्वविद्यालय' जैसे गौरवास्पद नाम से अभिहित करना भी कभी-कभी अनुपयुक्त जान पड़ता है। अभी हाल में कुछ विश्वविद्यालयों के पदवीदान-समारोहों, पदवी ग्रहण करने वाले स्नातकों ने बड़े ही अशोभनीय दृश्य उपस्थित किये हैं और उन्होंने 'डिग्री नहीं, नौकरी चाहिए' के नारे बुलन्द किए हैं। इससे भी अत्यधिक खेद का विषय यह है कि कुछ (तथाकथित) 'राजनीतिक' नेता एवं दल इस भांति की उच्छृंखलताओं को प्रोत्साहित करते देखे गए हैं तथा वे इस अभद्र व्यवहार को औचित्य प्रदान करने की भी चेष्टा करते हैं। इस बात से 'राजनीति' शब्द की ओर, बरबस ही ध्यान जाता है। इस शब्द की भी आज मनमानी और संकीर्ण व्याख्या हो रही है और इस भांति 'राजनीति' शब्द के मूल अर्थों तथा उसकी गौरवशालिनी परम्परा को लोग प्राय: भूलते जा रहे हैं।

'विश्वविद्यालय' शब्द एक परम आदर का पद है। वह शिक्षा-दीक्षा के ऐसे उच्चतम स्तर के केन्द्र के लिए प्रयोजनीय है, जहाँ न केवल देश-भर के वरन् विश्व-भर के जिज्ञासु युवावर्ग, सुयोग्य, सुविनीत, सुचरित्र सुविचारवान, विश्व-नागरिक बनकर अपने-अपने कार्य-क्षेत्रों को लौटें। विश्वविद्यालय का उपदेश उन्हें केवल कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिक बनाना ही नहीं वरन् उन्हें जन-साधारण का नेता, मार्गप्रदर्शक एवं आदर्श व्यक्ति बनाना भी है। निश्चय ही आज के विश्वविद्यालय, इस कसौटी पर, बहुत हलके उतरते हैं। अद्यावधि मुझे पाँच विभिन्न विश्वविद्यालयों में अध्यापन-कार्य करने का अवसर मिला है, जिसके अनुभव के आधार पर लगता है कि विश्वविद्यालय की उल्लिखित वरीयता का, निरन्तर और उत्तरोत्तर ह्रास होता जा रहा है।

इस विडम्बना के कारण अनेक हैं और उनकी सांगोपांग विवेचना, यहाँ सम्भाव्य नहीं है। उनमें से अनेक तथ्यों से तो 'साहित्य-परिचय' के पाठक अवगत होंगे ही; किन्तु वस्तुतः जब तक विश्वविद्यालयों में 'गहरे पानी में पैठने' का निजी अनुभव न हो, तब तक वस्तुस्थिति का धुँधला और अस्पष्ट रहना, स्वाभाविक ही है। और भी अधिक विडम्बना का विषय यह है कि हमारे विश्वविद्यालयों की गरिमा की सुनियोजित विध्वंस-लीला में, (तथाकथित) 'राजनीतिक' तत्व ही बहुत कुछ भागीदार हैं। इसीलिए प्राय: कहा-सुना जाता है कि हमारे विश्वविद्यालय आज 'राजनीति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गढ़' बनते जा रहे हैं। किन्तु यह बात वस्तुतः सत्य से बहुत दूर की है।

निश्चय ही कभी भारत के विश्वविद्यालय, उच्चतम आदर्श पर आधारित, स्वस्थ एवं उदार राजनीति की शिक्षा के दुर्ग माने जाते थे और उनमें सुदूर देश-देशान्तरों से युवागण, भारी संकटों का सामना करके भी प्रवेश पाने के लिए आया करते थे। इस सम्बन्ध में चाणक्य, मुक्ताचार्य, विदुराचार्य, द्रोणाचार्य, याज्ञवल्क्य, मनु, वशिष्ठ, विश्वामित्र, भारद्वाज आदि के नीतिग्रन्थ विश्वविदित हैं और वे ही आज विश्वभर के राजनीति-शास्त्र के आधारस्तम्भ माने जाते हैं। वेदव्यास, वाल्मीकि, पतञ्जलि, कपिल, कणाद, जैमिनि एवं बादरायण, हमारे पुरातन विश्वविद्यालयों (गुरुकुलों) के प्रख्यात नीतिशास्त्री थे जिनके आचार-शास्त्रों को मानव-आचरण के दिग्दर्शक आधार-ग्रन्थों के रूप में, समादृत किया जाता है। सरल एवं लोकप्रिय कथाओं के रूप में राजनीति के पाँचों तन्त्रों को लेकर विष्णु शर्मा-विरचित 'पंचतन्त्र' की नीतिमयी कथाओं का आज विश्वभर की भाषाओं में रूपान्तर होकर, प्रचार पाया जाता है। खेद है कि ये सब परम्पराएँ आज विस्मृत हो गई हैं और हमारे आज के विश्वविद्यालयों में 'राजनीति-विज्ञान' एक पुस्तकीय एवं रूढ़ ज्ञानपुञ्ज बनकर रह गया है। इसलिए, सच पूछा जाय तो आज के हमारे विश्वविद्यालय, 'राजनीति के दुर्ग' न होकर, घटिया और दुर्नाम, स्वार्थी 'राजनीति' के 'अखाड़े' मात्र बन कर रह गए हैं।

इस राष्ट्रव्यापी दुरभिसन्धि में, विदेशी द्रव्य एवं भ्रष्टाचार भी क्रियाशील हैं, क्योंकि उन्हें हमारी स्वाधीनता एवं सार्वभौमता, फूटी आंख नहीं सुहाती। इसके अतिरिक्त स्वदेशीय निहित स्वार्थ भी हमारे विश्वविद्यालयों के वातावरण को दूषित बनाने में कम रुचि नहीं रखते। और सबसे अधिक दुर्भाग्य की बात है कि स्वस्थ राजनीति की मूल आचार-सहिता से दूर रहने वाले, स्वार्थपरता, सङ्कीर्णता, ईर्ष्या एवं अदूरदर्शिता से मण्डित, 'पांचवें संवारों' के क्षेत्रीय एव आदर्शरहित अनुयायियों द्वारा चलाए गए, शत-शत (तथाकथित) राजनीतिक' गिरोह इस क्षेत्र में सबसे अधिक सक्रिय हैं। इसे एक प्रकार से राष्ट्रघात एवं जनसंहार का गहरा एवं राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय षड्यन्त्र कहना अधिक उपयुक्त होगा, जिसके अभिशाप से विश्वविद्यालयों को मुक्त कराना, आज देश के समक्ष प्राथमिक महत्त्व का प्रश्न बन गया है।

राजनीति का विश्वविद्यालयों से, फिर किस भाँति का नाता रहना चाहिए? अथवा क्या उन्हें राजनीति से दूर रखना ही श्रेयस्कर होगा? इस भाँति की समस्याओं से, हमारे राष्ट्रनायक भी चिन्तित रहे थे, जब कि आज से लगभग आधी शताब्दी पहले उन्होंने विश्वविद्यालयों की तात्कालिक असन्तोषजनक परिस्थितियों की ओर ध्यान दिया था। महामना मदनमोहन मालवीय तथा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का विचार था कि विद्यार्थियों को विश्वविद्यालयों के दायरे में रहकर ही, स्वस्थ राजनीति-शास्त्र का उत्तम ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और उन्हें देश-विदेश की सामयिक गतिविधियों से भी जागरूक रखा जाना चाहिए; किन्तु जब लोकमान्य तिलक एवं महात्मा गांधी के नेतृत्व में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध, स्वराज्य अथवा स्वाधीनता का आन्दोलन चलाया गया, तो उन्हें भारतीय युवकों का तत्कालीन विश्वविद्यालयों की सीमाओं में आबद्ध रहना, निरर्थक और हानिकारक जान पड़ा।

यह सर्वविदित सत्य है कि हमारे आज के विश्वविद्यालय, उसी ब्रिटिश शासन द्वारा प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की, स्वाधीनता-पूर्व की परम्परा में चले आ रहे हैं, जिन्हें मैकॉले की षड्यन्त्रकारी भारत-विरोधी शिक्षा-योजना को ही सरकार बनाने के हेतु स्थापित किया गया था। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए, महात्मा गांधी ने, विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाने वाले छात्रों से अनुरोध किया कि वे उन 'गुलाम बनाने वाले कारखानों' का बहिष्कार करें और राष्ट्रीय स्वाधीनता के संग्राम में सक्रिय भाग लें। किन्तु हमारे वे राष्ट्रनायक बड़े दूरदर्शी थे और उन्होंने यह भी अनुभव किया कि सुयोग्य देशसेवक तथा स्वाधीनता-संग्राम के सेनानी बनाने के लिए युवकों को स्वस्थ एवं उदात्त राजनीति का अध्ययन भी करना चाहिए तभी तो वे स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् अपने देश के शासनतन्त्र को सुव्यवस्थित ढंग से चला पायेंगे और उसे गृहयुद्ध एवं विदेशी आक्रमण जैसे संकटों से उबार पायेंगे।

इसी दृष्टि से हमारे महान् नेताओं ने देश-भर में 'राष्ट्रीय' विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापना की प्रेरणा प्राप्त की। जब कि महामना मालवीय जी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को ही राष्ट्रीय ढाँचे में ढालने में जुटे रहे, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने 'शान्ति निकेतन' एवं 'श्री निकेतन' के संयुक्त आयोजन द्वारा 'विश्वभारती' के स्वप्न को साकार बनाया। इस दिशा में पंजाब में लाला लाजपत राय ने लाहौर में, 'तिलक स्कूल ऑफ़ पॉलिटिक्स' की स्थापना की, जिसने देश को शहीद भगतसिंह जैसे महान् क्रान्तिकारी प्रदान किये। महान् भारतीय क्रान्तिकारी राजा महेन्द्र प्रताप की दानशीलता एवं प्रेरणा से वृन्दावन में प्रेम महाविद्यालय की स्थापना हुई। हकीम अजमलखाँ के सदुद्योग से, दिल्ली में 'जामिया मिलिया' की स्थापना हुई जिसके प्राध्यापकों में स्व० राष्ट्रपति ज़ाकिर हुसैन भी थे। महान् दार्शनिक भगवानदास ने काशी में ही काशी विद्यापीठ की स्थापना की जिससे दीक्षा पाने वाले मेधावी छात्रों में, स्व० प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री भी थे। गुजरात विद्यापीठ की स्थापना में तो स्वयं गांधीजी का ही निजी योगदान था। उसके महान् आचार्यों में विनोबा भावे, दादा धर्माधिकारी तथा काका कालेलकर जैसे महान् शिक्षाविद् तथा लोकसेवक भी रहे थे।

किन्तु दुर्भाग्यवश, भारत के स्वाधीन राष्ट्र के रूप में उदित होने पर भी, ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाई गई, उसी विश्वविद्यालयीय परम्परा को ही अभी तक चलने दिया जा रहा है। स्वाधीनता-प्राप्ति के २७ वर्ष के बाद भी, हम अपने विश्वविद्यालयों को ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा उद्भूत ढर्रे से मुक्त नहीं कर पाए हैं। यह सत्य है कि हम इस अवधि में अनेकानेक तात्कालिक एवं दुष्कर समस्याओं में इतने व्यस्त रहे कि हमें अपने विश्वविद्यालयों के पुनर्निर्माण अथवा नव-निर्माण करने के लिए समय ही नहीं मिल पाया। किन्तु आज उन्हीं विष-बीजों की पूरी-पूरी फसल, समूचे राष्ट्र में मानो लहरा उठी है और परिणामतः हमारे विश्वविद्यालय, दिनोंदिन राष्ट्र-विध्वंस के भीषण रंगमंच बनते जा रहे हैं और यह प्रश्न आज राष्ट्र-संकट के रूप में सम्मुख आ खड़ा हुआ है।

वैसे तो चिरकाल से ही हमारे विश्वविद्यालयों में, विदेशी शासन की दुर्नीति का घुन लगा ही हुआ था। किन्तु विगत ३-४ वर्षों में हुई, भारत की चहुमुखी प्रगति को अनेक राष्ट्र सह नहीं पाए हैं। बंगला देश के मुक्ति-अभियान के दौरान, वे खुले तौर पर, भारत का सैन्य-बल से विनाश करने के दुर्विचार से सामने आ गए और उनके भीषण षड्यन्त्रों को जब विफल कर दिया गया तो वे हमारे राष्ट्र को भीतरी दुरभिसन्धियों द्वारा विनष्ट करने पर तुल गए। उन्हें हमारे विश्वविद्यालयों के द्वारा इस षड्यन्त्र को सफल बनाने में कठिनाई नहीं हुई क्योंकि उनमें पहले ही से उनके प्रतिनिधि के रूप में अनेक ऐसे व्यक्ति उपकुलपति एवं विभागाध्यक्ष जैसे महनीय पदों पर प्रतिष्ठित हो चुके थे, जिन्होंने या तो उन्हीं देशों से विदेशी डिग्रियाँ प्राप्त की थीं अथवा उन्हें उन्हीं देशों से व्यापारिक साँठगाँठ रखने वाले भारतीय उद्योगपतियों का प्रश्रय प्राप्त था। विश्वविद्यालयों में इन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित ये राष्ट्रविघाती, स्वार्थी मनोवृत्ति से प्रेरित, ये अदूरदर्शी और बनावटी विद्वान्, आज, 'पराये हाथ पड़ कर' विश्वविद्यालयीय अबोध छात्र-रूपी 'पंछियों' का करने में लगे हुए हैं और उन्हें अपना हथियार बनाकर, शिकार देश भर में जनतंत्र विरोधी तथा गर्हणीय तोड़-फोड़ की गतिविधियों में भाग लेने के लिए, खुले तौर पर प्रोत्साहित कर रहे हैं। यही नहीं, वे विश्वविद्यालयों में, अपने-अपने विभागों में, अपने ही पिठ्ठुओं और अनुयायियों को भी नियुक्त करने में लगे हुए हैं। इस भाँति, यह विष-बेलि हमारे सारे विश्वविद्यालयों पर छाए जा रही है और उसके विषाक्त प्रभावों से देश के युवावर्ग का मस्तिष्क विषाक्त एवं विध्वंसक बनाया जा रहा है। अभी हाल में, देश के अनेक अस्पतालों में विषाक्त औषधियों के प्रयोग के भीषण परिणामों को देख कर, हमारे संविधान-शास्त्री, कोई ऐसा कानून बनाने की बात सोच रहे हैं, जिसके द्वारा ऐसे दूषित दवा-निर्माताओं को प्राणदण्ड या आजन्म कारावास दिया जा सके। किन्तु जो राष्ट्रद्रोही विश्वविद्यालयीय कर्णधार आज देश की भावी पीढ़ी के मस्तिष्कों को विषाक्त विचारों से राष्ट्रघाती बनाने में प्रवृत्त हैं, उन्हें दण्डित करने के लिए, हमारे संविधान में, कौन-सी व्यवस्था अथवा दण्ड-संहिता है?

संक्षेप में, इस भाँति हमारे विश्वविद्यालय आज हानिकारक, स्वार्थी एवं घृणित 'राजनीति' के रोग में जकड़ लिए गए हैं और इसीलिए अब, राष्ट्रव्यापी स्तर पर, उनकी शल्य-चिकित्सा किया जाना, अनिवार्य हो गया है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी की कुछ चुनी हुई पुस्तकें

मौलिक उपन्यास

२७ डाऊन	रमेश बक्षी	८.००
थके पांव	भगवती चरण वर्मा	५.००
उड़े हुए रंग	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	६ ००
जिन्दाबाद मुर्दाबाद	दयानन्द वर्मा	८.००
अचला	सेठ गोविन्ददास	४.५०
सूखा पत्ता	अमर कान्त	६.००
उल्टी गंगा	आरिगपूडि	३.००
दीन दुनिया	गुरुदत्त	१२.००
अन्धेर नगरी	,,	१५.००
अग्नि परीक्षा	,,	१० ००
संगम	,,	१०.००

अनूदित उपन्यास

चाकर गाथा (बांग्ला)	विमल मित्र	८ ००
फरियाद ,,	ताराशंकर वंद्योपाध्याय	५.००
घुन लगी बस्तियां (मराठी से)	जयवन्त दलवी	८.००
कलंक (गुजराती से)	शिवकुमार जोशी	८.००
असमर्थ की यात्रा (तमिल से)	टी० गोपीचन्द	८.००
आग की लकीर (पंजाबी से)	अमृता प्रीतम	८.००
दो रंग ,,	,,	७.००
टेढ़ी लकीर (उर्दू से)	इस्मत चग़ताई	६.००
पांच लोफर ,,	कृष्णचन्द्र	४.५०
बंटवारा ,,	सी० एल० कावश	४.४०
आंके बांके ,,	हंसराज रहबर	५.५०
फसल (रूसी से) गालिना निकोलायेवा	अनु० यशपाल	८.००
आज और कल (अंग्रेजी से)	जी० एच० कैरोल	२.५०

अनूदित कहानी संग्रह

अन्तिम पत्ती	ओ हैंनरी	२.००
विष कन्या	अथेनियल हाथोर्ग	२.००
भूली बिखरी राहें	डेल	२ ००
वहादुर नाविक बांके जहाज	ओरिवेल	२.००

लोकप्रिय उपन्यास

तीन रंग—उपन्यास संकलन	गुलशन नन्दा	४५.००
भंवर	गुलशन नन्दा	८.००
चिनगारी	,,	८.००
प्रतीक्षा	राजवंश	७.००
बन्धन	,,	५ ००
अफसाना	,,	५.००
उमंग	समीर	७.००
अरमान	,,	५.००
मन मन्दिर	,,	५.००
मंजिल	,,	७.००
मंजिल	लोकदर्शी	७.००

जीवनी : संस्मरण

याद रही बातें	अक्षय कुमार जैन	८.००
युद्ध के आसपास	शंकरदयाल सिंह	५.००
गांधी के देश से लेनिन के देश तक	,,	४.००
अमर जवाहरलाल	प्रकाश नगाइच	१.५०

काव्य

उर्वशी तथा अन्य कविताएँ (संकलन)	,,	५.००
दिनकर के गीत	,,	५.००
रश्मि लोक	,,	३६.००

उर्दू शायरी (नागरी लिपि में)

तलखियाँ	साहिर लुध्यानवी	१२.००
गाता जाए बंजारा	,,	१२.००
आओ कि कोई ख्वाब बुने	,,	८.००

निबन्ध

आधुनिक बोध	रामधारीसिंह दिनकर	८.००
विवाह की मुसीबतें	,,	८.००

अन्य

रूसी साहित्य का इतिहास	वीर राजेन्द्र ऋषि	३०.००
भारत की पन्द्रह भाषाएँ; बोलिए और सीखिए	प्रभाकर माचवे	६.५०
आधुनिक भोजन कला (पाक विधि)		४.५०

प्राप्ति स्थान— **हिन्दी बुक सेण्टर** ४/५ बी० आसफ अली रोड, नई दिल्ली—1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च शिक्षा और राजनीति

श्री महाबल द्विवेदी
प्रवक्ता, शिक्षा-विभाग, सतीशचन्द्र महाविद्यालय, बलिया

'विश्वविद्यालय राजनीति के अखाड़े हो गए हैं'—यह उक्ति प्रायः सुनने में आ जाती है। विश्वविद्यालयों में दो स्तरों पर राजनीतिक अखाड़ेबाजी देखी जाती है—छात्रों के स्तर पर एवं अधिकारियों और अध्यापकों के स्तर पर। प्रायः एक स्तर की हलचल दूसरे स्तर पर भी पहुँच जाती है और इन दोनों ही से विश्वविद्यालय के बाहर की भी राजनीति किसी-न-किसी रूप में जुड़ी रहती है। विश्वविद्यालय की आंतरिक राजनीति भी बाह्य राजनीति की तरह ही दलगत तथा शक्ति एवं सत्ता की राजनीति है। विभिन्न राजनीतिक दलों ने अपने छात्र-संगठन बना लिए हैं। अनेक प्राध्यापक भी इन छात्र-संगठनों के सदस्य, परामर्शदाता या संरक्षक हैं। इन संगठनों की हलचल माध्यमिक विद्यालयों में भी देखी जा सकती है, परन्तु महाविद्यालयों और विशेषतः विश्वविद्यालयों में तो इनकी तूती बोलती है। छात्र-संघों के चुनाव से लेकर छोटे-बड़े सभी अभियानों में छात्रों को राजनीतिक दलों का समर्थन एवं सहयोग प्राप्त होता है तथा दूसरी तरफ छात्र भी राजनीतिक दलों द्वारा किए जाने वाले आन्दोलनों में सक्रिय भूमिका अदा करते हुए देखे जाते हैं। यों तो छात्रों का अत्यल्प अंश ही इन गतिविधियों में लिप्त होता है, परन्तु उन थोड़े से ही छात्र-नेताओं के क्रियाकलापों से आए दिन विश्वविद्यालयों में हड़ताल, घर-पकड़, तथा बन्द की स्थिति छायी रहती है। और अब तो विश्वविद्यालय के बाहर की राजनीति में भी विश्वविद्यालयीय छात्रों का ही चित्र उभरा हुआ दिखाई देता है।

राष्ट्रीय नेताओं के आह्वान पर विश्वविद्यालयीय एवं महाविद्यालयीय छात्रों ने स्वातंत्र्य-संघर्ष में अपने को झोंक दिया था। यह गौरवपूर्ण इतिहास उनके साथ संलग्न है। आज भी छात्र संघर्षशील हैं। परन्तु उनके संघर्ष का स्वागत नहीं किया जाता है, वरन् अधिकांशतः उसकी निन्दा ही की जाती है। इसका क्या कारण है, इसे समझ लिया जाय तो वर्तमान विश्वविद्यालयीय राजनीति का स्वरूप स्पष्ट हो जाएगा। विश्वविद्यालयों के शीर्षस्थ अधिकारियों से लेकर प्राध्यापक तक प्रायः दो या अधिक खेमों में बँटे हुए होते हैं। हर विभाग में उनकी आपसी खींचतान देखी जा सकती है। सत्ता का संघर्ष उग्रतर होता जाता है। छात्रों को विभिन्न पक्षों की तरफ से स्वार्थ-पूर्ति का साधन बनाया जाने लगता है और 'कुलपति हटाओ', 'विभागाध्यक्ष हटाओ', 'प्राचार्य हटाओ' का नारा लेकर छात्र मैदान में उतर जाते हैं। हर पक्ष की तरफ से कुछ छात्र पाले जाते हैं और ये ही लोग छात्र-आन्दोलन के कर्णधार होते हैं। छात्रों का एक दल जो माँगें रखता है, दूसरा दल उनसे ठीक विपरीत माँगें लेकर जोर आजमाने उतर पड़ता है। इससे ही स्पष्ट हो जाता है कि छात्र-आन्दोलनों का सूत्र किन्हीं औरों के हाथों में है। मुट्ठी-भर छात्र-नेता जिनका पढ़ने-लिखने से कोई सरोकार नहीं होता, जो मात्र छात्र-नेता बने रहने के लिए एक न एक कोर्स में अपना प्रवेश करा रखते हैं, जिन्हें अपनी दादागीरी का नाज है, जिनके चरित्र का कोई भरोसा नहीं, वे ही, स्वयं दूसरों के हाथों की कठपुतली बने हुए, बहुसंख्यक छात्र-समुदाय को अपनी इच्छानुसार इधर-उधर मोड़ते रहते हैं और वे तथा उनके आका मिलकर विश्वविद्यालय को विद्या का केन्द्र बनने से रोक कर विद्या के लय होने का स्थल बना देते हैं। इन छात्र-नेताओं और उनके अधिष्ठाताओं के समक्ष कोई महद् उद्देश्य तो होता नहीं, फिर उनके अभियानों को गरिमा प्राप्त ही कैसे हो सकती है?

विश्वविद्यालय के बाहर की राजनीति के प्रति भी विश्वविद्यालयीय छात्र बहुत संवेदनशील होते हैं। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उनमें तरुणाई का जोश होता है. कुछ कर गुजरने की इच्छा होती है, दूसरे दोषपूर्ण शिक्षा-व्यवस्था एवं अंधकारमय भविष्य के कारण उनमें पलता हुआ असंतोष विस्फोट के लिए तैयार बैठा रहता है और उनकी भावावेशपूर्ण संगठित शक्ति का लाभ उठाने की प्रतिद्वन्द्विता राजनीतिक दलों में होती ही है। फलतः 'बैलट' के मोर्चे पर पराजित दल 'बुलेट' के मोर्चे पर छात्रों को ले जाकर येन-केन-प्रकारेण सत्ता हस्तगत करने का प्रयास रह-रह कर करते रहते हैं। इस सारी प्रक्रिया में छात्रों के हाथ लगता है सिर्फ एक दंभ कि वे जिधर पलट जायेंगे, तख्ता उधर पलट जाएगा। उनके समक्ष कई देशों के उदाहरण भी हैं जहाँ छात्रों ने तख्ते पलट दिए हैं। परन्तु वे भूल जाते हैं कि छात्र ऐसा तभी कर सके हैं जब उनमें स्वयं उच्चकोटि की राजनीतिक चेतना जगी है। किसी सत्ता-लोलुप राजनीतिक नेता के इशारे पर छात्र-शक्ति कोई यशस्वी कार्य सम्पादित नहीं कर सकती।

वस्तुतः उच्च-शिक्षा में संलग्न छात्रों में जिनमें राजनीतिक अभिरुचि दिखलाई पड़े, उनमें उच्चकोटि की राजनीतिक चेतना एवं क्षमता का विकास कर देश के राजनीतिक जीवन की काया-पलट करने का दायित्व विश्वविद्यालयों का है। इसके अभाव में राजनीति में न तो राज ही रहेगा और न नीति ही। इस तथ्य की अनुभूति प्लेटो ने भली-भाँति की थी। उसकी शिकायत है कि छोटे-मोटे कामों; जैसे—जूता बनाने के काम के लिए हम ऐसे ही कुशल व्यक्तियों को पसंद करते हैं जो उस काम में विशेष रूप से दक्ष हों, किन्तु राजनीति में हम यह मान लेते हैं कि हर व्यक्ति नगर अथवा राज्य का शासन करना जानता है, जिसे यह मालूम है कि जनता का मत कैसे प्राप्त करना चाहिए। जब सारी राज्य-व्यवस्था जर्जर हो चुकी हो, उस समय क्या आवश्यक नहीं कि सुयोग्य एवं सर्वाधिक बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा इस क्षेत्र का वरण किया जाय? सार्वजनिक पदों से अयोग्यता और बेईमानी को दूर करना, सर्वसाधारण के हित के लिए सुयोग्य व्यक्तियों को चुनना और उन्हें शासन के लिए तैयार करना—यह देश की महती राजनीतिक आवश्यकता है। इसकी पूर्ति के लिए विश्वविद्यालयों को अग्रसर होना ही चाहिए। जिन राजनीतिक व्यक्तियों के कारण आज राजनीति ही बदनाम हो गई है, जिनके स्पर्श में आने से विश्वविद्यालयों के छात्र अवांछनीय दिशा पकड़ लेते हैं, उनके दुष्प्रभाव से विश्वविद्यालय क्षेत्र को ही मुक्त करना आवश्यक नहीं है, वरन् संपूर्ण देश की पीड़ित, कराहती जनता को भी उनके चंगुल से मुक्त करना आवश्यक है।

'राजनीति से शिक्षा असंपृक्त नहीं रह सकती। राजनीतिक संघात के परिणामस्वरूप शिक्षा में नए-नए परिवर्तन आते हैं।' यह कथन विश्वविद्यालयीय शिक्षा के सम्बन्ध में सबसे अधिक उपयुक्त है। आज इस बात की अपेक्षा है कि स्थानीय राजनीति से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तक की सभी गुत्थियों से विश्वविद्यालय के मेधावी एवं सच्चरित्र छात्र सुपरिचित हों। राजनीति में बढ़ती हुई गुण्डागर्दी एवं भ्रष्टाचार को देखकर आज भले लोग उससे विमुख हो रहे हैं। यह प्रवृत्ति हितकारक नहीं है। सुयोग्य व्यक्तियों का दायित्व है कि वे आगे बढ़ें और एक-एक भ्रष्टाचारी और अयोग्य व्यक्ति को उसके पद से च्युत कर उसका स्थान ग्रहण करें। आगे बढ़कर दायित्व ग्रहण करने के लिए सुयोग्य व्यक्तियों का निर्माण करना आज विश्वविद्यालयों की जिम्मेदारी है। भारतीय जनतन्त्र की सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि जनता के सामने जितने राजनीतिक दल एवं राजनीतिक कार्यकर्ता हैं, उनमें से किसी को वह चुनना नहीं चाहती है, परन्तु आखिर चुनना पड़ता है जो हैं उन्हीं में से किसी को। फिर वह क्या करे? चुनाव की व्यवस्था में किसी भी परिवर्तन से काम नहीं चलेगा जब तक कि सुयोग्य, ध्येयनिष्ठ, सच्चरित्र जनसेवियों के घोर अभाव की पूर्ति नहीं होती।

एक प्रसिद्ध उक्ति है कि "मनुष्य नागरिकता लिए उत्पन्न नहीं होते हैं, बल्कि उन्हें उसके योग्य बनाया जाता है।" जब नागरिकता निर्माण की अपेक्षा रखती है तो राजनीतिक नेतृत्व स्वयंभू नेता कैसे कर सकेंगे? यदि नेतृत्ववर्ग का निर्माण आवश्यक है तो इसके लिए विश्वविद्यालयों से अधिक क्षमता किसमें है? अतः आज विश्वविद्यालयों को राजनीति से परहेज करने की निषेधात्मक नीति अपनाने की आवश्यकता नहीं है, वरन् राजनीति की दिशा ही बदल देने का गुरुतर दायित्व आगे बढ़ कर उन्हें निभाना है। इसके लिए उन्हें सुनियोजित कार्यक्रम अपनाना चाहिए ताकि जो छात्र

[शेष पृष्ठ १११ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालयीय शिक्षा और राजनीति

डा० इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'
ए–१५, यूनिवर्सिटी क्वार्टर्स, अमरावती रोड, नागपुर–१०

●

भारत की स्वतन्त्रता के बाद और कुछ हुआ हो, चाहे न हुआ हो, किन्तु राजनैतिक जागरूकता इतनी अधिक आ गई है कि उससे जीवन का हर क्षेत्र त्रसित और आक्रान्त हो उठा है, क्योंकि सर्वत्र राजनीति प्रमुख हो गई है, जीवन का वह क्षेत्र, उस क्षेत्र का उद्देश्य और विकास इत्यादि गौण हो गए हैं। यही स्थिति विश्वविद्यालयों की भी है, उनमें भी राजनीति ने घर कर लिया है।

विश्वविद्यालय का उद्देश्य है—नागरिकों (छात्रों) को उच्च शिक्षा की उपलब्धि कराना, ज्ञान का प्रसार करना, अनुसन्धान और अन्वेषण को प्रगति देना तथा उनके आयाम विस्तृत करना, व्यक्तित्व का समुचित विकास करना और इस प्रकार समाज तथा देश को सभी दृष्टियों से समृद्ध तथा उन्नत बनाना। बड़े पावन और उच्च उद्देश्य हैं, किन्तु राजनीति के घटाटोप से सभी उद्देश्य धूमिल हो गए हैं। विश्वविद्यालयों में राजनीति का बहुमुखी रूप दिखाई देता है, जिसका विश्लेषण करना ही हमें अभीष्ट है।

विश्वविद्यालय के गठन में ही राजनैतिक नेताओं अथवा मंत्रियों का हाथ रहता है। उपकुलपति की नियुक्ति राज्य मंत्रिमण्डल द्वारा ही की जाती है। यद्यपि कहीं-कहीं उपकुलपति की नियुक्ति के लिए तीन व्यक्तियों की समिति गठित की जाती है, जिसके सदस्य कहने के लिए लोकतंत्रीय आधार पर विश्वविद्यालय की सीनेट अथवा प्रबन्धकारिणी समिति द्वारा मनोनीत होते हैं, किन्तु वर्चस्व कुलपति या राज्यपाल का ही होता है। राज्यपाल के वर्चस्व का अर्थ है—मंत्रिमडण्ल का निर्देश। फल यह होता है कि मंत्रियों तक जिसकी पहुँच होती है, वही उपकुलपति हो जाता है, जो उनकी कृपा से उपकृत होने के लिए विश्वविद्यालय में चपरासी से लेकर प्रोफेसर तक की नियुक्ति उनके संकेत पर करने के लिए विवश हो जाता है तथा उसी प्रणाली में अपने निजी व्यक्तियों के लिए भी स्थान बना लेता है। योग्यता, अनुभव और अनुसंधान-कार्य एक ओर धरे रह जाते हैं तथा मंत्रियों या स्वयं उपकुलपति के कृपा-पात्र शिक्षण के उच्च पदों पर नियुक्त हो जाते हैं, फलतः वे तो वांछित शिक्षा प्रदान कर ही नहीं पाते और अवहेलित उत्तम एवं योग्य अनुभवी शिक्षक कुण्ठा-ग्रस्त होने के कारण उत्साह भंग होने से चाहते हुए भी शिक्षा-दान में अपनी पूर्ण शक्ति और प्रतिभा का उपयोग नहीं कर पाते। यदि कोई स्थानीय व्यक्ति ही उपकुलपति हो गया, तब तो वह अपने निजी व्यक्तियों (चमचों) को आसमान पर चढ़ा देता है तथा जो तटस्थ होते हैं या जिनसे उसके आरम्भ में मधुर सम्बन्ध नहीं होते या खराब सम्बन्ध होते हैं, वे बुरी तरह पीसे जाते हैं। नियुक्ति-समितियाँ भी उसी प्रकार बना ली जाती हैं। उनके सदस्यों को केवल अपने झूठे सम्मान और उससे भी अधिक अपने भत्ते के प्रति आकर्षण होता है, उन्हें उत्तम व्यक्ति के चयन में कोई रुचि नहीं होती। अनेक विशेषज्ञ यह कहते सुने जाते हैं कि उपकुलपति तथा अध्यक्ष की इच्छा के विरुद्ध हम कर भी क्या सकते थे? ऐसी दशा में यदि विश्वविद्यालय का शैक्षणिक उद्देश्य तिरोहित हो जाय, तो आश्चर्य क्या है?

अनेक विश्वविद्यालयों में सीनेट, प्रबन्धकारिणी समिति (एक्जीक्यूटिव काउंसिल), विद्वत् परिषद् (एकेडेमिक काउंसिल) तथा पाठ्य-समिति (बोर्ड ऑफ स्टडीज़) के सदस्यों के लिए भी जनतन्त्रीय मतदान की प्रणाली अपनायी जाती है, जिसका परिणाम यह होता है कि दलबन्दी के आधार पर इनके चुनाव लड़े जाते हैं तथा सामान्य चुनावों की भाँति प्रत्याशीगण एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करते हुए अत्यन्त हीन स्तर पर उतर आते हैं। इन चुनावों में शैक्षणिक योग्यता, अनुभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं कार्य का कुछ भी महत्त्व नहीं होता, वही प्रत्याशी विजयी होता है, जिस पर उपकुलपति का वरद हस्त होता है या जो ग्रुप-निर्माण की शक्ति रखता है अथवा जो विविध प्रकार की तिकड़मबाजी में दक्ष होता है। इस प्रकार निर्मित ये समितियाँ शैक्षणिक विकास एवं सार्वजनिक हित को न देखकर व्यक्तिगत या दलीय हितों को देखती हैं और शिक्षा का मूल लक्ष्य भ्रष्ट हो जाता है। बड़ी शान से स्वनिर्मित नियमों के आधार पर भ्रष्टता को ही संवैधानिक स्वीकृति प्रदान कर दी जाती है और शिक्षा को ही वरीयता प्रदान करने वाले सत्य एवं नैतिकता के पक्षधर मुँह की खाते हैं। इस राजनीति का परिणाम यह होता है कि विश्वविद्यालयों की प्रबन्ध-व्यवस्था एवं शिक्षा-व्यवस्था के व्यक्तियों में दलबन्दी बनी रहती है, जो छात्रों को भी प्रभावित करती है और शिक्षा के स्तर को भी हीन से हीनतर बनाती चली जा रही है। अध्ययन और अध्यापन को ही अपने जीवन का ध्येय मानने वाले शिक्षकों के पास इस प्रकार की दूषित राजनीति के लिए अवकाश ही नहीं है, फलतः वे उपेक्षित बने रहते हैं, जिसके कारण स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय विश्वविद्यालयों की जो शैक्षणिक स्थिति है. यह किसी से छिपी नहीं है।

विश्वविद्यालयों में छात्र-राजनीति का रूप तो अत्यन्त विषम, भयावह एवं विनाशकारी है। छात्र-संघों का संगठन निर्वाचन-प्रणाली के आधार पर होता है। उनमें गम्भीर अध्ययन के प्रति रुचि रखने वाले ज्ञान-पिपासु छात्र तो रुचि लेते ही नहीं हैं, क्योंकि उनके पास समय और धन अपव्यय करने के लिए नहीं है। वे छात्र ही चुनाव-अभियान में भाग लेते हैं, जिनका लक्ष्य ही केवल छात्र-संघ के पदों पर पहुँचना और छात्रों के पैसे से गुलछर्रे उड़ाना होता है। इन चुनावों में कहीं-कहीं तो विधान-मण्डलों के चुनावों के समान ही प्रचार-प्रसार एवं धन व्यय किया जाता है तथा विभिन्न राजनैतिक दल अपने-अपने प्रत्याशी खड़े करते हैं। यह भी देखने को मिलता है कि कुछ राजनैतिक दल तो इसी उद्देश्य से धन देकर दादा कहलाने वाले छात्रों को विश्वविद्यालय में प्रवेश दिलाते हैं। विजयी होने पर उन छात्रों के माध्यम से ये राजनैतिक दल अपने-अपने दलीय स्वार्थों की पूर्ति करते हैं।

छात्र यह देखते हैं कि अध्यापकों की नियुक्तियों में नेताओं का खुलकर हस्तक्षेप होता है, फलतः उन्हें योग्य और अनुभवी अध्यापक नहीं मिल पाते और उनकी वांछित रूप से शिक्षा नहीं हो पाती; दूसरी ओर अपेक्षाकृत अयोग्य छात्र येन-केन-प्रकारेण उपाधि प्राप्त करके नेताओं की कृपा से विभिन्न सरकारी पदों पर आसीन हो जाते हैं, तो उनकी अध्ययन और ज्ञान-प्राप्ति के प्रति आस्था डिग जाती है और वे भी उन्हीं उपायों से उपाधि हथियाने का प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि परीक्षाओं की गम्भीरता ही समाप्त हो गई है। छात्र नकल करते हैं, निरीक्षकों को धमकी ही नहीं, उनके साथ मारपीट भी करते हैं, परीक्षकों का पता लगाते हैं और उत्तीर्ण होने के लिए अनेक ऐसे ही प्रयत्न करते हैं, इसलिए विश्वविद्यालय अनैतिकता और भ्रष्टाचार के केन्द्र बनते जा रहे हैं। कुछ लोग तो अब यहाँ तक कहने लगे हैं कि विश्वविद्यालयों में ज्ञान-दान अब नहीं दिया जाता है, अपितु वहाँ भ्रष्टता और अनैतिकता की ही शिक्षा दी जाती है और विद्यार्थी का अर्थ अब विद्या की अर्थी उठाने वाला हो गया है।

राजनीति के इस दूषित प्रभाव का ही परिणाम है कि छात्रगण परीक्षा में नकल करने के लिए, उपस्थिति कम होने पर भी परीक्षा में बैठने के लिए, परीक्षा में सुविधाएँ प्रदान करने के लिए, सरल से सरल प्रश्नपत्र बनाने के लिए ही आन्दोलन करते हैं। माँगें पूरी न होने पर घिराव करते हैं, विघटनकारी हिंसात्मक उपायों को भी अपनाते हैं, इसलिए देश के अधिकांश विश्वविद्यालयों में तो वर्ष में बहुत कम ही अध्ययन-अध्यापन के दिवस मिल पाते हैं, फिर शिक्षा की प्रगति कैसे हो सकती है? कहीं भी छात्रों के आन्दोलन इन बातों के लिए नहीं होते देखे गये कि उन्हें योग्य, अनुभवी अध्यापक मिलें, उन्हें सभी आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित उत्तम प्रयोगशालाएँ मिलें, नवीनतम प्रकाशनों से पूर्ण पुस्तकालय प्राप्त हों, हवादार कक्षाएँ हों, क्रीड़ा की सभी समुचित सुविधाएँ छात्रों को उपलब्ध हों, इत्यादि। क्योंकि राजनीति ने उनके सोचने-समझने और कार्य करने के दृष्टिकोण को ही दूषित कर दिया है।

छात्रों की बढ़ती हुई शक्ति अथवा उनकी विकासशील राजनैतिक जागरूकता को देखकर देश के कर्णधार यह कहने ही नहीं, अपितु कार्य रूप में भी परिणत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लगे हैं कि विश्वविद्यालयों के प्रबन्ध से लेकर शैक्षणिक समितियों में भी छात्रों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाय। इसके क्या परिणाम होंगे, यह तो भविष्य के गर्भ में है, किन्तु छात्रों की जो वर्तमान स्थिति है, उससे तो लगता है कि उसके परिणाम शुभ नहीं होंगे। कारण, एक तो छात्रों में किसी प्रकार का कोई अनुभव नहीं होता, उनका मस्तिष्क पूर्णतया परिपक्व नहीं होता तथा उनमें भावुकता एवं उत्तेजना अधिक होती है, जिससे वे शीघ्र ही बहकाए जा सकते हैं और बहकाए जाते भी हैं। इसलिए शिक्षा जैसे गम्भीर क्षेत्र में वे समुचित योग दे सकेंगे, इसमें सन्देह है।

आज छात्रों की जैसी माँगें होती हैं और उनके आन्दोलन के जो आधार होते हैं, उनसे तो प्रतीत होता है कि उनके प्रतिनिधित्व देने से अध्यापकों की दशा दयनीय हो जायगी। यह भी सम्भावना है कि वे ही अध्यापक ससम्मान जैसा भी हो, शिक्षण कार्य कर पायेंगे, जो छात्र नेताओं या छात्र-प्रतिनिधियों को किसी भी प्रकार प्रसन्न रखने का प्रयत्न करेंगे। अपने कार्य के आधार पर कोई सम्मान से टिक पायेगा, इसमें सन्देह है, क्योंकि राजनीति के कारण या नेताओं के हस्तक्षेप के कारण विश्वविद्यालयों के सभी क्षेत्रों में इतना नैतिक पतन हो गया है कि भविष्य अन्धकारमय ही प्रतीत होता है और क्रमशः राजनीति का प्रभाव बढ़ता ही जा रहा है। वस्तुतः विश्वविद्यालय राजनीति के प्रपंचों से मुक्त स्वस्थ और स्वतन्त्र इकाई होने चाहिए, जहाँ प्रत्येक क्षेत्र में शैक्षणिक वरीयता को ही महत्त्व दिया जाय, तभी उनके द्वारा वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है और उनसे देश का भविष्य उज्ज्वल बन सकता है। उपकुलपति तो अन्य राज्य का शिक्षा-शास्त्री होना ही चाहिए। आज तो राजनीति ने विश्वविद्यालयों को इस बुरी तरह आक्रान्त कर रखा है कि वे भवन मात्र रह गये हैं और शिक्षा से उनका सम्बन्ध टूटता जा रहा है। ●

[पृष्ठ ९५ का शेषांश]

है। इस तरह दुनियां के सबसे अच्छे ग्रन्थों का प्रचार एवं प्रसार रूसी भाषा में होता है। भारत की बंगला, मराठी, हिन्दी आदि भाषाओं के कई ग्रन्थों के अनुवाद रूसी भाषा में हो चुके हैं। रूस ने विज्ञान के क्षेत्र में जो उन्नति की है, उसे ध्यान में रखकर भारत भी विदेशी भाषा जरूर सीखे परन्तु उस भाषा के माध्यम से नहीं। इस तरह बहुजन समाज के हित का शिक्षा के माध्यम का सवाल भारत-सरकार रूस का अनुकरण कर हल कर सकती है। इतना ही नहीं अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग 'हमारे देश की कोई एक राष्ट्रभाषा है ही नहीं' इस प्रकार जो प्रचार करते हैं उसे समर्थन नहीं मिलेगा। साथ ही साथ भारत की राष्ट्रभाषा के नाते हिन्दी दुनियां में फैल जायेगी और ऊँचा स्थान प्राप्त करेगी। विज्ञान के क्षेत्र में जो स्थान अंग्रेजी, फ्रांसीसी भाषाओं के साथ रूसी को मिला है, वह हिन्दी को प्राप्त होगा।

हिन्दी संस्कृत से बनी है, और संस्कृत भाषा अर्थपूर्ण शब्दों से युक्त है। तान्त्रिक शब्दों के लिये प्रतिशब्द निर्माण करने की क्षमता संस्कृत भाषा में है। वैद्यक, इंजीनियरिंग और रसायन शास्त्र के लिए ऐसे शब्दों का निर्माण करना होगा।

रूस के साथ जापान का उदाहरण हमारे सामने है। जापान के कुछ युवक विदेशों में जाकर तंत्रविज्ञान सीखकर आए और वहाँ से प्राप्त हुए विचार जापानी भाषा में लिखकर जापानी लोगों को शिक्षित किया। इसी के फलस्वरूप जापान आज अमरीका की बराबरी कर सकता है।

इस तरह राजनीति के कारण उन सब में व्याप्त शिक्षा के माध्यम की समस्या सुलझायी जा सकती है। शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय भाषाएँ रहेंगी। राष्ट्रभाषा हिन्दी अनिवार्य रूप से पढ़ायी जाएगी और रूसी, जर्मन, फ्रांसीसी, अंग्रेजी भाषाएँ सिखाने की व्यवस्था की जाएगी। इससे कुछ लोग रूस, जर्मनी, फ्रांस, जापान जाकर तंत्र-विद्या ग्रहण करेंगे और उसे यहाँ के देश की भाषाओं में व्यक्त करेंगे तो देश के लोग तंत्रविज्ञान में दुनियां के साथ रहेंगे। परन्तु यह बात राष्ट्रीय विचारधारा के लोग करेंगे, राजनीति के पचड़े में पड़े हुए नहीं। ●

[पृष्ठ १०८ का शेषांश]

विश्वविद्यालयीय शिक्षा प्राप्त करें, वे रचनात्मक राजनीतिक संकल्पनाओं से परिपूर्ण हो जायें तथा वर्तमान भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के दुष्प्रभाव से अपने को अछूता रखते हुए शीघ्रातिशीघ्र इस स्थिति में आ जायें कि उनके प्रभाव से सत्ता के लोभ में भटके हुए लोग भी या तो सही राजनीति की ओर अग्रसर हों अथवा राजनीति से संन्यास लेकर राजनीतिक शुद्धिकरण का मार्ग प्रशस्त करें। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनाथ शर्मा

और "छात्रोपयोगी साहित्य" ये दोनों नाम
एक दूसरे से परस्पर इतने अधिक सम्वद्ध
हैं कि इन्हें प्रथक करना कठिन ही नहीं
अपितु असम्भव सा हो गया है;
यही कारण है कि हिन्दी साहित्य
का प्रत्येक विद्यार्थी राजनाथ शर्मा के नाम से
और उनकी पुस्तकों की उपादेयता से
भली भाँति परिचित है।
—और ये हैं उनकी दो अत्यधिक
लोकप्रिय एवं उपयोगी पुस्तकें—

साहित्यिक निबन्ध

परिमार्जित पन्द्रहवाँ संस्करण

पृष्ठ ६३५ : मूल्य २०.००

हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास

संशोधित तृतीय संस्करण

पृष्ठ ८४६ : मूल्य १८.००

सम्पूर्ण प्रकाशन-सूची के लिए कृपया लिखें

विनोद

विनोद पुस्तक मन्दिर

रांगेय राघव मार्ग, आगरा-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्र और राजनीति

प्रो० शेर सिंह
राज्यमंत्री—संचार, भारत सरकार, नई दिल्ली

संस्कृत में एक सूक्ति है—'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या वही है जिससे मुक्ति मिले। तत्कालीन परिस्थितियों में इसकी उपयोगिता और सार्थकता तो निश्चित रूप से रही ही होगी, आज के सन्दर्भ में भी इसकी अर्थवत्ता निःशेष नहीं हुई है। देश-काल और परिस्थिति के अनुसार इसके अर्थ-सन्दर्भ में अवश्य परिवर्तन आया है। इस युग में 'विमुक्ति' से तात्पर्य है—अन्ध-विश्वास, अज्ञान, जड़ता, रूढ़ियों, संकुचित मनोवृत्तियों, रंग-जाति-भेद आदि से मुक्ति। आज के छात्र के लिए ऐसी विद्या की आवश्यकता है जो इन दूषणों से उसे मुक्त कर दे।

यह एक स्वयंसिद्ध तथ्य है कि आज के छात्र ही कल देश के कुशल नागरिक बनते हैं और देश की प्रतिष्ठा बढ़ाने और उसका विकास करने का गुरुतर उत्तरदायित्व उन्हें ही निभाना होता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि छात्रों को ऐसी शिक्षा, ऐसा ज्ञान और ऐसे संस्कार दिए जायें जो उनके निजी जीवन के लिए तो उपयोगी हों ही, साथ ही सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के लिए भी लाभदायक हों। वे व्यष्टि की पगडंडी पर सधे डगों से बढ़ते हुए समष्टि के राज-मार्ग पर पहुँचें और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का लक्ष्य प्राप्त करने की चेष्टा करें। इसके लिए छात्रों में 'काक' जैसी चेष्टा, 'बक' जैसा ध्यान, 'श्वान' जैसी सजगता और स्फूर्ति, नियम-संयम जैसे गुण अपेक्षित हैं। उन्हें उन सभी बातों से अपने को असंपृक्त रखना होगा जो उन्हें उनके गंतव्य से च्युत करती हों और उनका ध्यान अन्यत्र केन्द्रित करती हों।

राजनीति भी एक ऐसा ही विषय है जो छात्रों को उसके गंतव्य तक पहुँचने में बाधा डालती है और उनका ध्यान अन्यत्र केन्द्रित करती है। राजनीति के दो पहलू होते हैं: सैद्धान्तिक और व्यावहारिक। सैद्धान्तिक पहलू में विचार-संहिता रहती है और व्यावहारिक में आचार-संहिता। राजनीति के सैद्धांतिक पक्ष को ही राजनीति-शास्त्र की संज्ञा दी गई है। राजनीति-शास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। वह व्यक्ति, राज्य और सरकार के स्वरूपों का तात्विक विवेचन करता है और उनके पारस्परिक सम्बन्ध निर्धारित करता है। हमारे देश में इस शास्त्र का अध्ययन-अध्यापन बहुत प्राचीन काल से होता आ रहा है। तक्षशिला विश्वविद्यालय तो इसका एक माना हुआ गढ़ था। इसमें विष्णुगुप्त चाणक्य जैसे अध्यापक और चन्द्रगुप्त जैसे अध्येता थे और पाठ्य-विषय था—राजनीति-शास्त्र अर्थात् राज-नीति का सैद्धान्तिक पक्ष। राजनीति के व्यावहारिक पक्ष का ग्रहण और अभ्यास अध्ययन पूरा करने के बाद ही किया जाता था।

अब प्रश्न उठता है कि आज के छात्रों को राज-नीति में भाग लेना चाहिए या नहीं। इसका उत्तर स्वीकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही हो सकता है। एक वर्ग का तर्क यह है कि छात्र समुदाय भी समाज का एक अंग है, उसका सर्वाधिक जीवन्त और शक्ति-शाली अंग। उस स्थिति में जब कि राजनीति हमारे आचार-व्यवहार, रीति-नीति तथा जीवन के प्रत्येक अंग में इस बुरी तरह समा गई हो कि उसी से हमारे जीवन का प्रत्येक पक्ष परिचालित और प्रभावित हो रहा हो, तो छात्र-समुदाय राजनीति से कैसे तटस्थ रह सकता है। राजनीति का प्रभाव उसके जीवन पर भी पड़ेगा। वह लाख बचना चाहे फिर भी बच नहीं सकता। दूसरे भावी जीवन की सफलता के लिए भी उन्हें व्याव-हारिक राजनीति का अनुभव मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त आज की विषम और भयावह परिस्थिति में जबकि सर्वत्र अभाव, गरीबी, मँहगाई, बेरोजगारी और अनैतिकता का ही बोलबाला हो और इनसे छुटकारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाने का क्रान्ति के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प न हो तब छात्र-समुदाय को इसके लिए राजनीति में उतरना ही होगा क्योंकि आज तक का इतिहास गवाह है कि क्रान्तियों में सफलता युवकों विशेषकर छात्रों के द्वारा ही मिली है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि छात्र हमारे समाज का अत्यन्त शक्तिशाली अंग है और कोई भी बड़ा कार्य उनके योगदान के बिना शीघ्र सम्पन्न नहीं हो सकता। फिर भी, मैं छात्रों के सक्रिय राजनीति में भाग लेने के पक्ष में नहीं हूँ। इसके कई कारण हैं। एक तो राजनीति के लिए अनुभव, कार्यकुशलता और सन्तुलन चाहिए। छात्रों में आवेश का आधिक्य होता है। उनका मस्तिष्क अभी इतना परिपक्व नहीं होता कि वे समस्या की पर्तों को चीरकर वस्तुसत्य का उद्‌घाटन कर सकें, उसके निराकरण का सही मार्ग अपना सकें और अनुभव के आधार पर कार्य-सरणि के अनुकूल-प्रतिकूल परिणामों का पूर्वानुमान कर सकें। ऐसा इसलिए, क्योंकि उनका ज्ञान अधूरा होता है; चिन्तन-शक्ति अविकसित और बुद्धि भावुकता से ओत-प्रोत रहती है। राजनीति में भाग लेने का मतलब है कि उनका अध्ययन तो अपूर्ण रहेगा ही, राजनीति के क्षेत्र में भी उन्हें वह सफलता नहीं मिल पायगी जो मस्तिष्क का पूर्ण विकास हो जाने पर मिलती। परिणाम यह होगा कि वे न तो पूर्णतया शिक्षित और सभ्य नागरिक बन पाएँगे और न ही सफल राजनीतिज्ञ। ऐसा करने पर उन्हें राजनीति को ही अपनी आजीविका का साधन बनाना पड़ेगा जिससे राजनीति की सफलता के लिए अपेक्षित उनकी नैतिकता बाधित होगी, उनकी दृष्टि संकुचित और प्रवृत्ति स्वार्थपरक बनती जाएगी। यह स्थिति देश और समाज के लिए श्रेयस्कर नहीं होगी। अतः मेरे विचार से छात्रों का अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद ही राजनीतिक जीवन में प्रवेश करना अच्छा रहेगा।

किन्तु दुर्भाग्य से आज तो हमारी शिक्षण-संस्थाओं में भी राजनीति का प्रवेश हो गया है। छात्र राजनीति में खुलकर हिस्सा ले रहे हैं। इसके लिए उत्तरदायी हैं—शिक्षा-संस्थान और विभिन्न राजनीतिक दल। शिक्षा-संस्थान बुरी तरह गुटबन्दी के शिकार हैं। गुटबन्दी प्रबन्धकों में है। गुटबन्दी शिक्षकों में है। परिणाम-स्वरूप छात्र भी गुटबन्दी के शिकार हैं। गुट के हित और प्रभाव के लिए उन्हें मोहरे बनाकर इस्तेमाल किया जाता है। राजनीतिक दल भी छात्रों का अपनी नीतियों की सफलता के लिए भरपूर उपयोग करते हैं। फलतः दलगत राजनीति के दुष्परिणाम छात्रों को भी भुगतने पड़ते हैं। उनमें आपसी ईर्ष्या-द्वेष पनपने लगता है और उनकी एकता और शक्ति विखण्डित होने लगती है। गुटबन्दी के अभिशापों से उनका उज्ज्वल भविष्य आक्रान्त होने लगता है। योग्य छात्रों को वे विशिष्ट स्थान नहीं मिल पाते जिनके वे अधिकारी होते हैं और जो छात्र विशिष्ट स्थान पाने के योग्य नहीं होते, गुट में सम्मिलित होने के कारण उन्हें मिल जाते हैं। नतीजा यह होता है कि उनमें ईर्ष्या, कटुता और कुंठाएँ जन्म लेती हैं। शिक्षा का स्तर गिर जाता है, जिससे राष्ट्रीय जीवन भी प्रभावित होता है। कार्य-कुशलता का अपक्षय होता है और विकास की गति में अपेक्षित तेजी नहीं आ पाती। इस प्रकार शिक्षा संस्थाओं में जीवनोपयोगी व्याव-हारिक और सैद्धान्तिक शिक्षण के स्थान पर गुटबन्दी, सम्बन्धों का निर्वाह और स्वार्थ-वृत्ति अपनाने की शिक्षा दी जाती है।

अतः आज की संकटकालीन परिस्थिति में हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली और शिक्षा-प्रबन्ध के बारे में गम्भीरता और नये सिरे से सोचने की आवश्यकता है। शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन, परिवर्द्धन और संशोधन कैसे किए जायँ ताकि हमारे छात्र अपने देश की माटी से, अपने समाज से, अपनी संस्कृति और स्वस्थ परम्पराओं से प्यार करने लगें, उनका नैतिक और चारित्रिक विकास हो, उनकी रुचि के अनुसार अध्ययन की सुविधा हो, प्रतिभा में निखार आए, विवेक परिष्कृत हो और वे कर्मेन्द्रियों का सृजनात्मक दिशा की ओर प्रयोग करने लगें। नीर-क्षीर विवेकी बुद्धि जागृत हो और वे वस्तु-सत्य की उपयोगिता-अनुपयोगिता के बारे में सही अनुमान कर सकें। हमें ऐसी शिक्षा-व्यवस्था को तिलांजलि दे देनी चाहिए जो छात्रों को अपने देश में और अपने घर में ही विदेशी और अजनबी बना देती हो। आज की शिक्षा-व्यवस्था ने छात्रों को त्रिशंकु की स्थिति में पहुँचा दिया है। शिक्षा के आधार पर न तो उन्हें

[शेष पृष्ठ १२४ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्र-संघों की राजनीति

डॉ० सीताराम जायसवाल
रीडर, शिक्षा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

छात्र राजनीति में भाग लें या नहीं, इसकी चर्चा अक्सर होती रहती है। एक स्वतन्त्र देश के नागरिकों का अपने देश की राजनीति से अछूता रहना किसी भी हालत में अच्छा नहीं है। यदि छात्र चाहें भी कि वे राजनीति से दूर रहें तो राजनीति उन्हें दूर नहीं रहने देगी। इसलिए यह तो मानना ही होगा कि छात्र और राजनीति का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके पूर्व कि हम छात्र और राजनीति के आपसी सम्बन्धों का विश्लेषण करें, यह आवश्यक है कि हम राजनीति के स्वरूप से भी परिचित हो लें।

राजनीति का स्वरूप

राजनीतिशास्त्र में राजनीति के स्वरूप की व्याख्या विभिन्न दृष्टिकोणों से की जाती है। लेकिन राजनीति का मुख्य आधार वह शक्ति है जो किसी देश के शासक वर्ग के पास होना आवश्यक है। राजनीति के माध्यम से विभिन्न राजनीतिक दल सत्ता प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। एक लोकतन्त्रात्मक देश में वास्तविक शक्ति जनता के हाथ में होती है। एक तानाशाही देश में शासक की शक्ति एक व्यक्ति अथवा कुछ इने-गिने लोगों के हाथ में होती है।

भारत एक लोकतंत्रात्मक देश है और लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में जनमत ही शक्ति का स्रोत है। जनता का समर्थन पाने के लिए विभिन्न राजनीतिक दल अपने राजनीतिक कार्यक्रमों का प्रचार करते हैं और जनता को आश्वासन देते हैं कि यदि उन्हें शासन की बागडोर सौंप दी जाय तो वे जनहित में कार्य करेंगे। स्पष्ट है कि जनमत के निर्माण के लिए बहुत बड़े पैमाने पर जन-संपर्क की आवश्यकता होती है। किसी देश का युवा वर्ग इस कार्य के लिए अत्यधिक उपयुक्त है।

हमारे देश में अनेक राजनीतिक दल हैं। जिस प्रकार हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और होते हैं उसी प्रकार इन राजनीतिक दलों की राजनीति दो प्रकार की होती है—एक तो वह राजनीति है जिसे हम सैद्धान्तिक कह सकते हैं। सैद्धान्तिक राजनीति सिद्धान्त रूप में कुछ आदर्शों, जीवन मूल्यों तथा मान्यताओं पर आधारित होती है। व्यावहारिक राजनीति मूलतः दलगत होती है। दूसरे शब्दों में, व्यावहारिक राजनीति किसी राजनीतिक दल को विभिन्न हथकंडों के माध्यम से राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है। आम चुनाव में जितने प्रकार की धाँधलियाँ होती हैं, वे सब दलगत राजनीति से प्रेरित हैं। दलगत राजनीति समाज के विभिन्न वर्गों को अपने प्रभाव में लाना चाहती हैं और उनका इस्तेमाल राजनीतिक सत्ता को येन-केन-प्रकारेण प्राप्त करने में करती हैं।

छात्र-संघों की राजनीति

शायद ही ऐसा कोई महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय हो जिसमें कि छात्र-संघ न हो। प्रत्येक महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में छात्र-संघों की स्थापना अवश्य होनी चाहिए। लेकिन जब इन छात्र-संघों के माध्यम से विभिन्न राजनीतिक दल महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों पर अधिकार जमाने का प्रयास करते हैं तब यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है कि क्या छात्रों को राजनीति से अलग रखा जाय। उत्तर स्पष्ट है। सैद्धान्तिक राजनीति से छात्र अलग नहीं हो सकते। लेकिन दलगत राजनीति के दांवपेचों से छात्रों को अवश्य बचना चाहिए।

लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि छात्र-संघों के पदाधिकारियों का किसी-न-किसी राजनीतिक दल से अवश्य सम्बन्ध होता है। छात्र-संघ का अध्यक्ष कभी जनसंघ द्वारा संचालित विद्यार्थी परिषद् का हो और मंत्री सोशलिस्ट पार्टी का तो आप समझ ही सकते हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस छात्र-संघ के अध्यक्ष तथा मन्त्री के बीच प्रायः वही मतभेद दिखाई पड़ेंगे जो कि छात्र-संघ के बाहर जन-संघ तथा सोशलिस्ट पार्टी में दिखाई पड़ते हैं। इसी प्रकार के उदाहरण अन्य राजनीतिक दलों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

जब महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय का नया सत्र आरम्भ होता है तब छात्र-संघ के नेताओं द्वारा माँगों की एक लम्बी सूची महाविद्यालय के प्रधानाचार्य अथवा विश्वविद्यालय के उपकुलपति के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि इन माँगों में कुछ तो आवश्यक एवं न्यायोचित होती हैं लेकिन अधिकतर माँगें अधिकारियों पर दबाव डालने के लिए रखी जाती हैं।

यह सर्वविदित है कि भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली जर्जर हो गयी है। न तो इसमें प्राण हैं और न किसी प्रकार की शक्ति। तात्पर्य यह है कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली छात्रों के सर्वांगीण विकास में सहायक नहीं होती। जो कुछ उन्हें पढ़ाया जाता है, उसका सम्बन्ध उनके वर्तमान तथा भावी जीवन से नाममात्र का होता है। वर्तमान परीक्षा-प्रणाली अनेक प्रकार के भ्रष्टाचार को फैला रही है। क्या परीक्षक, क्या परीक्षार्थी—सभी इस अनैतिक व्यवस्था के शिकार हैं।

यदि छात्रों की माँग पाठ्यक्रम सुधारने की हो, अध्यापन विधि को गत्यात्मक बनाने की हो, परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन करने की हो तो बात समझ में आ सकती है। लेकिन जिन राजनीतिक दलों के हाथ में शासन नहीं है, वे छात्र-संघों के माध्यम से ऐसी माँगें प्रस्तुत करवाते हैं जो शैक्षिक न होकर दलगत राजनीति से प्रेरित होती हैं। इन माँगों के मूल में प्रायः यह भावना होती है कि सत्तारूढ़ दल को नीचा दिखाया जाय और उनके प्रति जनता के मन में असन्तोष उत्पन्न किया जाय।

पेशेवर छात्र-नेता

उच्च शिक्षा की संस्थाओं में पेशेवर छात्र-नेताओं को पाया जा सकता है। कोई छात्र-नेता छः वर्ष से किसी विश्वविद्यालय में जमा हुआ है तो कोई दस वर्ष से। डिग्री पर डिग्री लेता चला जा रहा है और वह कदाचित् तब तक विद्यार्थी बना रहता है जब तक कि उसे कोई राजनीतिक दल विधान सभा, विधान परिषद् या लोकसभा का टिकट न दे दे। तात्पर्य यह है कि पेशेवर छात्र नेता का काम है—अपने राजनीतिक दल के झंडे को छात्रों के बीच फहराये रखना।

मामूली-सी बात पर हड़ताल करा देना ऐसे पेशेवर छात्र-नेता का काम है। यह हड़ताल किसी न किसी माँग को लेकर तो होती ही है लेकिन इसके मूल में खास बात यह है कि पेशेवर छात्र नेता समय-समय पर अपनी शक्ति का परीक्षण करता रहता है। वह जानना चाहता है कि छात्रों पर उसका कितना प्रभाव है। यदि हड़ताल सफल हो गयी तो पेशेवर छात्र-नेता संतुष्ट होता है। यदि हड़ताल विफल हुई तो पेशेवर छात्र-नेता को उस राजनीतिक दल से ताड़ना मिलती है जिसका कि वह एक अंग है और जिससे वह छात्र-संघ चुनाव के लिए धन प्राप्त करता है।

पेशेवर छात्र-नेताओं की प्रायः अध्ययन में रुचि नाममात्र को होती है। वे अपने राजनीतिक प्रभाव का प्रयोग परीक्षा में सरलता से सफलता प्राप्त करने के लिए करते हैं। परीक्षा से पहले संभावित परीक्षक से मिलकर प्रश्नों की जानकारी के लिए विभिन्न उपायों को काम में लाना, पर्चे 'आउट' करा देना, परीक्षा में नकल करता हुआ छात्र पकड़ा जाय तो उसे छुड़ाने की कोशिश करना, परीक्षा समाप्त हो जाने पर न केवल अपने को ही वरन् अपने समर्थकों को भी अच्छे अंक दिलाने की कोशिश करना आदि पेशेवर छात्र-नेता के प्रमुख कार्य हैं।

शैक्षिक प्रशासन में कमी

पेशेवर छात्र-नेताओं के राजनीतिक प्रभाव को बढ़ाने में शैक्षिक प्रशासकों का भी परोक्ष दायित्व है। छात्रों की जो आवश्यक माँगें हैं, उनकी ओर शैक्षिक प्रशासकों का ध्यान तब जाता है जबकि छात्र उसके लिए आन्दोलन करते हैं। यदि छात्र को कोई सूचना चाहिए तो रजिस्ट्रार के कार्यालय से उसे सूचना बड़ी कठिनाई से मिलती है। यदि उसे कोई फार्म चाहिए तो वह भी उसे सरलता से प्राप्त नहीं होता। सामान्य छात्र हार कर पेशेवर छात्र-नेता के पास जाता है और फिर पेशेवर छात्र-नेता तत्काल रजिस्ट्रार के कार्यालय में जाकर उस सामान्य छात्र का कार्य करा देता है।

यदि उच्च शिक्षा की संस्थाओं का शैक्षिक प्रशासन सुचारु रूप से हो तो पेशेवर छात्र-नेताओं की गंदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति से छात्रों को बचाया जा सकता है। अभी हाल में उत्तर भारत के एक विश्वविद्यालय में बी० ए० (प्रथम वर्ष), बी० एस-सी० (प्रथम वर्ष), बी० कॉम० (प्रथम वर्ष) के छात्रों ने जनरल प्रोमोशन की माँग प्रस्तुत की। यह स्पष्ट है कि जनरल प्रोमोशन की माँग शैक्षिक सिद्धान्तों के अनुसार तर्कसंगत नहीं है। लेकिन जनरल प्रोमोशन का दूसरा विकल्प है— आन्तरिक परीक्षा। आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व तक स्नातक कक्षाओं के प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों की परीक्षा विश्वविद्यालयों द्वारा संचालित नहीं की जाती थी। नाममात्र की आन्तरिक परीक्षा होती थी और उसी के आधार पर छात्रों को द्वितीय वर्ष में प्रोन्नत कर दिया जाता था। यह पुरानी व्यवस्था आज के सन्दर्भ में उपयोगी हो सकती है। देश में आर्थिक संकट है। कागज का अभाव है। क्यों न हम स्नातक कक्षाओं के प्रथम वर्ष में इस पुरानी व्यवस्था को काम में लायें।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में यह स्वीकार किया जा सकता है कि युवा छात्रों को सैद्धान्तिक राजनीति का सम्यक् ज्ञान होना चाहिए क्योंकि राजनीति केवल एक प्रकार का बुद्धि-विलास नहीं है वरन् यह वांछनीय सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त साधन भी है। आज के युग में जीवन का कोई क्षेत्र राजनीति से अछूता नहीं है, यहाँ तक कि धार्मिक क्षेत्र में भी राजनीति ने प्रवेश कर लिया है। इसलिए जो लोग यह कहते हैं कि छात्रों को राजनीति से दूर रखा जाय तो उनका प्रायः तात्पर्य यह होता है कि छात्र दलगत राजनीति से अलग रहें। दलगत राजनीति सत्ता की राजनीति है, उल्टे-सीधे तरीके से शक्ति पाने की राजनीति है, सत्तारूढ़ राजनीतिक दल का विरोधी किसी न किसी आधार पर करते रहने की राजनीति है। स्पष्ट है कि इस दलगत राजनीति से छात्रों को अलग रहना चाहिए। वे अलग रहकर दलगत राजनीति की गन्दगी को समझें और इससे उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों का एक अच्छे नागरिक के रूप में सामना करें।

उच्च शिक्षा की संस्थाओं में पेशेवर छात्र राजनीतिक नेताओं से छात्रों को अलग रहना चाहिए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पेशेवर छात्र-नेता किसी राजनीतिक दल के संकेतों पर कार्य करता है और उसका मुख्य दायित्व शिक्षा के क्षेत्र में अपने राजनीतिक दल के स्वार्थों को सिद्ध करना है। अच्छा हो यदि छात्रों का वह वर्ग जो शिक्षा-संस्थाओं को गन्दी राजनीति से अलग रखना चाहता है पेशेवर राजनीतिक छात्र-नेताओं के विरुद्ध संगठित होकर उन्हें निष्क्रिय कर दे। अब समय आ गया है कि प्रत्येक वर्ग को अपनी सुरक्षा स्वयं करनी होगी। तटस्थ एवं निष्क्रिय रूप से स्थिति को बिगड़ते हुए देखते रहना बहुत बड़ी कायरता है।

आज यूनियन अथवा संघ के कुछ पदाधिकारी बहुमत की इच्छा के विरुद्ध कार्य करते हैं और अपनी इच्छा को बहुमत की इच्छा बतलाते हैं। वे अपने असामाजिक तरीकों से अधिकांश लोगों को आतंकित रखते हैं। यदि कोई सदस्य अपनी यूनियन या संघ से सहमत नहीं है तो उसे डराया, धमकाया और मारा जाता है। जिस लोकतन्त्र में यूनियन अथवा संघ को बनाने की सुविधा है उसी लोकतन्त्र की हत्या उस समय की जाती है जबकि एक सदस्य से असहमति का अधिकार छीन लिया जाता है और उस पर दबाव डालकर उसकी इच्छा के विरुद्ध हड़ताल करने के लिए बाध्य करते हैं।

नये भारत के निर्माण में छात्रों का प्रमुख योगदान होगा। अतः हमारे छात्रों को चाहिए कि वे उस राजनीति को अपनाएँ जिसका आधार सच्चाई और ईमानदारी है, न कि बेईमानी तथा भ्रष्टाचार। सच्चाई और ईमानदारी के रास्ते पर चलकर ही हम अपने राष्ट्र की सही अर्थों में सेवा कर सकते हैं। लेकिन यह ध्यान में रखना होगा कि सच्चाई और ईमानदारी का रास्ता आसान नहीं है। इस रास्ते पर लोग चलने नहीं देंगे, काँटे बिछायेंगे और फिर भी यदि कोई युवा छात्र सच्चाई और ईमानदारी की राजनीति को नहीं छोड़ता तो इसमें सन्देह नहीं कि वह स्वच्छ राजनीति के द्वारा अपने राष्ट्र की ऐसी सेवा कर सकता है जिसकी इस समय अत्यधिक आवश्यकता है। ●

लोकतंत्रवादी कहलाने का अधिकार केवल उसी व्यक्ति को है जो मानव जाति के अत्यन्त दीन प्राणियों के साथ भी आत्मीयता दिखला सके, जो उनसे अधिक सुखमय जीवन बिताने की इच्छा न रखता हो और साथ ही साथ उनकी समता करने का यथाशक्ति प्रयत्न करता हो। —महात्मा गाँधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

कथात्मक जीवनी—साहित्य

- कान्तिकारी सुभाष — शंकर सुलतानपुरी — ७.००
- कान्तिकारी आजाद — ,, — ७.००
- पं० दीनदयाल उपाध्याय — ,, — ७.००
- इन्दिरा गाँधी — ,, — ७.००
- बापू — ,, — ३.५०
- लोकमान्य तिलक — ,, — ७.००
- आजाद हिन्द फौज की कर्नल डा० लक्ष्मीबाई — ,, — ७.००
- क्रांतिकारी भगत सिंह — सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव — ७.००
- रफी अहमद किदवई — ,, — ७.००
- गोवा के क्रान्तिकारी — रामेश्वर अशांत — ७.००
- वीर वन्दा वैरागी — ,, — ७.००
- शेख मुजीबुर्रहमान — रामकृष्ण शर्मा — ७.००
- क्षत्रपति शिवाजी — परमेश्वर प्रसाद सिंह — ७.००
- झाँसी की रानी — ,, — ७.००
- लाला लाजपत राय — ,, — ७.००
- महाराणा प्रताप — परमेश्वर प्रसाद सिंह — ७.००
- सरदार वल्लभ भाई पटेल — ,, — ७.००
- डा० राजेन्द्र प्रसाद — ,, — ७.००
- महामना मालवीय — डा० ईश्वर प्रसाद वर्मा — ७.००
- भारत रत्न — ,, — ७.००
- क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल — ,, — ७.००
- स्वामी रामकृष्ण परमहंस — ओउम् प्रकाश शर्मा — ७.००
- स्वामी विवेकानन्द — ,, — ७.००
- स्वामी दयानन्द — ,, — ७.००
- स्वामी रामतीर्थ — ,, — ७.००
- पूजनीय गुरुजी (गोलवलकर) — डा० ईश्वर प्रसाद वर्मा — ५.५०
- अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी — ,, — ७.००
- डा० भीमराव अम्बेडकर — सूर्य नारायण त्रिपाठी — ५.५०

सामाजिक उपन्यास

- उन्माद — हरि प्रसाद थप्लियाल — १०.००
- एक डाली रजनी गंधा की — डा० नारायण दत्त श्रीमाली — ७.५०
- कहीं उजाला — राजेन्द्र झा — ७.००
- ग्रहण — ,, — ७.००
- गंगा से पवित्र — अभय कुमार यौधेय — ८.००
- मैं अछूती — प्रदीप कुमार 'प्रदीप' — ७.००
- स्वर्ण कमल — कमल शुक्ल — ५.००
- पूर्णिमा — कमलेश सिंह — ४.००
- मैं तुम्हारी — श्यामलाल 'मधुप' — ५.००
- लाल गुलाब — ,, — १२.००
- कसम — ,, — ५.५०
- किसी से न कहना — शंकर सुल्तानपुरी — ७.००
- अड़तीस रुपये में दिल्ली — गोपी कुमार कौशल — ५.००

नोट—(१) सभी पुस्तकें पुस्तकालय में रखने योग्य एवं शिक्षाप्रद हैं। (२) इससे पूर्व के सभी सूचीपत्र आदि रद्द कर दिए गए हैं। (३) पुस्तक विक्रेताओं को अधिकतम कमीशन तथा (४) पुस्तकालयों के लिए १५ प्रतिशत कमीशन प्राप्य है।

साहित्य केन्द्र प्रकाशन

प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

ई ५/२०, कृष्ण नगर, दिल्ली—५१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति और छात्र आन्दोलन

श्री वृन्दावनदास
अध्यक्ष—ब्रजसाहित्य मण्डल, मथुरा

छात्र-जीवन का एक दायित्व है, यदि वह पूरा न हुआ तो जीवन निरर्थक ही समझा जायगा। वह दायित्व है—छात्र का मस्तिष्कीय और शारीरिक निर्माण। छात्र को जीवन में एक अवसर मिलता है। अगर उसने उस अवसर का सदुपयोग करके अपना निर्माण न किया तो उसे जन्म-भर पछताना पड़ेगा। आजकल मनुष्य-जीवन बड़ा संघर्षपूर्ण है, इस संघर्ष में वही टिक सकेगा जो सब प्रकार से योग्य है। यदि छात्र ने अपने विद्यार्थी-जीवन में उस योग्यता को अर्जित न किया तो उस दोष का फल उसे भोगना ही पड़ेगा।

राजनीति कोई हेय वस्तु नहीं है। राजनीति का अध्ययन भी विद्यार्थी को उतना ही हितकर है जितना कि किसी अन्य विषय का परन्तु छात्र को व्यावहारिक रूप से राजनीति में कदापि न पड़ना चाहिये। राजनीति को निर्वाचनों, अभियानों और आन्दोलनों से पृथक् नहीं किया जा सकता। व्यावहारिक रूप से राजनीति की दलदल में फँसने वाले विद्यार्थी के पास स्वाध्याय के लिए समय ही कहाँ रह जाता है?

आजकल सत्ता-प्राप्ति के लिए हमारे देश में एक होड़-सी चल पड़ी है। 'येन-केन-प्रकारेण प्रसिद्धपुरुषो भवेत्' भी बहुत-से लोगों के सोचने का तरीका हो गया है। अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए लोग कभी इस और कभी उस दल में प्रवेश करते हैं। प्रवेश करने का उद्देश्य दल के आदर्शों से प्रेरित होकर देश-सेवा न होकर विशुद्ध व्यक्तिगत उत्कर्ष अथवा आत्मोन्नति ही होता है। देश-सेवा के उद्देश्य में तो सहिष्णुता और सह-अस्तित्व की भावना निहित है ही परन्तु स्वार्थपरता में तो इस प्रकार की भावनाओं का सर्वथा अभाव ही रहता है। वस्तुतः आज राजनीतिक क्षेत्र में स्वार्थपरता का जो नग्न नृत्य हो रहा है, उसने देश को चारित्रिक ह्रास और नैतिक अधःपतन की चरम सीमा पर पहुँचा दिया है। आज राजनीतिज्ञों की स्वार्थपरता के कारण ही भाई-भतीजावाद, काला बाज़ार और भ्रष्टाचार बड़े पैमाने पर पनप रहे हैं और इन दोषों ने देश को पतन के गहरे गह्वर के करीब लाकर खड़ा कर दिया है।

भ्रष्ट राजनीतिज्ञ अपने दलों का स्वर ऊँचा करने के लिए कुछ ऐसे साधनों की खोज में रहते हैं जो उन्हें आसानी से सुलभ हो जायें और जिनके माध्यम से वे जनता को अपनी लोकप्रियता और मान्यता के सम्बन्ध में गुमराह कर सकें। कहना न होगा कि ऐसे सुगम साधन उन्हें विद्यार्थियों के रूप में सुलभ हो जाते हैं। यह तो निर्विवाद है कि विद्यार्थियों का मस्तिष्क अनुभवहीनता के कारण अपरिपक्व होता है और वे स्वार्थी राजनीतिज्ञों के षड्यन्त्रों का बड़ी सुगमता से शिकार बन जाते हैं। राजनीति के दलदल में फँसे विद्यार्थी अपना जीवन तो नष्ट करते ही हैं साथ ही वे उन विद्यार्थियों के लिए जो वास्तव में पढ़ना चाहते हैं, एक अभिशाप का रूप बन जाते हैं। वे न तो पढ़ते हैं, न पढ़ने देते हैं। उच्छृङ्खल छात्रों के प्रेरणास्रोत वे भ्रष्ट राजनीतिज्ञ होते हैं जो अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति के लिए अनेक प्रकार के कुतर्क और कुटिलतापूर्ण संघर्षों का आश्रय लेते रहते हैं। इन स्वार्थी राजनीतिज्ञों से प्रेरणा लेकर कतिपय विद्यार्थियों ने शैक्षणिक वातावरण अत्यन्त दूषित बना दिया है। आज इन कुटिल छात्रों के भय से शिक्षक तो क्या प्राचार्य भी थर-थर काँपते हैं। नक़ल करना, चाकू दिखाना, अध्यापकों को पीट डालना, परीक्षा का बहिष्कार करना, परीक्षा-सामग्री को ध्वस्त करना, विद्यालयों की मेज, कुर्सी खिड़की, दरवाजों के शीशों को तोड़ना, बसों को जलाना आदि इन राजनीति-प्रेमी विद्यार्थियों की नित्य नैमित्तिक प्रक्रियाएँ हो गई हैं। प्रत्येक सत्र का लगभग तीन-चौथाई भाग छुट्टियों

[शेष पृष्ठ १२३ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्रोपयोगी प्रकाशन

- भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र — राजनाथ शर्मा — ८.००
- रत्नाकर और उनका उद्धव शतक — ,, — ५.००
- तुलसीदास और उनकी विनय पत्रिका — ,, — २.००
- पंत और उनका रश्मिबंध — ,, — ५.००
- साकेत की टीका — ,, — ६.००
- साकेत (आलोचनात्मक अध्ययन) — ,, — २.५०
- कामायनी की टीका — ,, — ६.००
- कामायनी (आलोचनात्मक अध्ययन) — ,, — ३.००
- जैनेन्द्र और उनका त्यागपत्र — ,, — ३.५०
- आचार्य चतुरसेन और उनका सोमनाथ — ,, — ४.००
- लोक साहित्य के प्रतिमान — डा० कुन्दनलाल उप्रेती — १०.००
- उभरी गहरी रेखाएँ — डा० कैलाशचन्द भाटिया — ४.००
- हिन्दी साहित्य का मध्यकाल — डा० नित्यानन्द शर्मा एवं डा० राकेश — १५.००
- अन्तर्दर्शन तीन चित्र — श्री उदय शंकर भट्ट — २.००
- डा० नगेन्द्र की साहित्य साधना — श्रीमती टी० वी० सुब्बा लक्ष्मी — ८.००
- केशव काव्य सुधा — डा० कुन्दनलाल उप्रेती (प्रेस में)

भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़

संग्रहणीय अभिनव ग्रन्थ

कागज और मुद्रण संकट के कारण सीमित संस्करण जो कभी भी अप्राप्त हो सकते हैं।

- प्रसाद के नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : डॉ० निरुपमा पोटा — २५.००
- हिन्दी कथा साहित्य में इतिहास : डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग — २५.००
- हिन्दी कृष्णभक्ति साहित्य में मधुर भाव की उपासना : डॉ० पूर्णमासी राय — ४०.००
- नई कहानी : कथ्य और शिल्प : डॉ० सन्तबख्शसिंह — २५.००
- तुलसीदासोत्तर हिन्दी राम साहित्य : डॉ० रामलखन पाण्डेय — २५.००
- उड़िया नाटक और रंगमंच : नीलमणि मिश्र — २५.००
- पर्वत से झाँकता वक्र नयन : डॉ जयशंकर त्रिपाठी — ८.००
- साकेत : एक नव्य परिबोध : डा० रामविनोद सिंह — १०.००
- संस्कृत लोकोक्ति संग्रह — भारत सरकार के वित्तीय सहयोग से

शीघ्र प्रकाश्य
- उत्कलीय राम साहित्य : नीलमणि मिश्र
- हिन्दी कहानी में यथार्थवाद : डा० नूरजहाँ
- तेलुगु नाटक और रंगमंच : डा० कर्ण राजशेषगिरि राव

इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के पुस्तकालयों के लिए

देश भर के श्रेष्ठ प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित महत्त्वपूर्ण शोध प्रबन्धों एवं उच्च संदर्भ ग्रन्थों का विशाल भण्डार हमारे पास है—बड़ी सूची मँगाकर अपने पुस्तकालय की आपूर्ति के लिए हमारी विनम्र सेवाएँ स्वीकारें।

पुस्तक विक्रेताओं को भी हमारे निजी प्रकाशनों एवं बाहरी प्रचारित प्रकाशनों पर विशेष सुविधाएँ

अभिनव भारती

उत्कृष्ट साहित्य के प्रकाशक एवं विक्रेता

४२–सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद–२११००३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्र और शिक्षक : राजनीति की दलदल में

डॉ० एम० खुशदिल
सम्पादक—'समाज उत्थान', मुरादाबाद

●

आज हमारे देश के विश्वविद्यालयों, कालेजों और स्कूलों में उपकुलपतियों, प्राचार्यों, विभागाध्यक्षों, प्राध्यापकों, शिक्षकों, क्लर्कों और चपरासियों तक की नियुक्तियां अधिकतर सिफ़ारिशों, राजनैतिक और व्यक्तिगत सम्बन्धों के आधार पर होती हैं। शैक्षिक योग्यता, क्षमता और नैतिक गुणों की न्यूनतम परवाह की जाती है। रिश्तेदारी, जान-पहचान, लेन-देन, दबाव और धमकी का अंश ही प्रायः निर्णायक रहता है। कभी-कभी रिश्वत और सौदेबाज़ी से भी काम बन जाता है। यदा-कदा ही कोई योग्य, दक्ष और कार्य-कुशल व्यक्ति चुना जाता होगा। बहुधा शिक्षा-मन्दिरों में मूर्तियां सूरत देख कर स्थापित की जाती हैं। यही नहीं, उनकी पूजा और दर्शन करने वालों को भी शक्ल देखकर मन्दिर में प्रवेश करने दिया जाता है, उनकी योग्यता, सफलता, श्रद्धा, उत्सुकता, चरित्र और बुद्धि देखकर नहीं। इसलिए हमारे देश के प्रायः सभी शिक्षा-मन्दिर छोटे-बड़े राजनैतिक अखाड़े बन गये हैं। भ्रष्टाचार के साथ-साथ दलबन्दी, साम्प्रदायिकता और अराष्ट्रीयता भी इनमें अपनी जड़ें जमाती जा रही हैं।

कालेजों में विद्यार्थी-सभा

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश में सहकारी समितियों और यूनियनों की बाढ़-सी आ गई है। समाज में हर वर्ग के लोगों की यूनियनें बनती जा रही हैं। वकीलों, डाक्टरों, इंजीनियरों, राजपत्रित अथवा अराजपत्रित कर्मचारियों, मजदूरों, किसानों—यहां तक कि जीवन का कोई पक्ष ऐसा नहीं बचा है, जहां काम-काजी अथवा निठल्ले आदमियों तक ने अपनी-अपनी यूनियनें न बना ली हों। विश्वविद्यालयों, कालेजों और स्कूलों में, छात्रों, शिक्षकों, प्राचार्यों और मैनेजरों तक ने यूनियनें बना ली हैं। अपने-अपने लाभों की सुरक्षा और सुविधाओं का सबको ख्याल रहता है। हर स्तर पर लोग असुविधाएं घटाने और सुविधाएं बढ़ाने की मांग करने लगे हैं। देश, समाज और संस्था के नाम, यश और प्रगति के लिए सोचने और कार्य करने की अब उन्हें फुर्सत नहीं है। हर ओर से शतरंज की चालें लगती रहती हैं। मोहरा मारना उनका लक्ष्य बन गया है।

देखते-देखते इन्हीं चन्द-सालों में इन यूनियनों के द्वारा स्कूल और कालेजों में कितनी अशान्ति, असुरक्षा, अपव्यय और अनुशासनहीनता फैल गई है, उसकी कल्पना मात्र से ही दिल कांपने लगता है। छात्रों ने परीक्षा में नकल करने के लिए यूनियनें बना ली हैं। छात्रों को परीक्षा में नक़ल करने, नक़ल कराते हुए पकड़े जाने वाले विद्यार्थियों को छुड़ाने तथा अंक बढ़वाने के लिए परीक्षकों के पास चक्कर लगाने वालों की भी यूनियनें बन गई हैं। यूनियन में वही छात्र अधिक वोट प्राप्त करके प्रधान, उप-प्रधान, मन्त्री, उपमन्त्री अथवा कोषाध्यक्ष चुना जाता है जो पहले इस बात का वादा कर लेता है कि वह विद्यार्थियों के लाभों का पूरा-पूरा ध्यान रखेगा। उदाहरणार्थ, कक्षा में विद्यार्थी चाहे अनुपस्थित हों, मगर उसकी 'प्रेजेन्ट' लग जानी चाहिए। उसकी 'अटेंडेन्स' 'शार्ट' नहीं होनी चाहिए। सिनेमाओं में छात्रों की सीट रिजर्व होनी चाहिए। बिना टिकट सफ़र करने, जंजीर खींचने, लड़कियों को छेड़ने, होटल वालों का बिल न देने अथवा किसी अध्यापक से झगड़ा होने पर विद्यार्थी-सभा के पदाधिकारी सदैव छात्रों का पक्ष लेंगे। कहीं और किसी भी संकट में वे छात्रों की सहायता करेंगे। चुनाव के समय वोट देने से पहले प्रत्याशियों से ये सब वादे करा लिए जाते हैं। इसीलिए विश्वविद्यालयों और कालेजों की यूनियनों में प्रेसीडेंट का पद एक महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया है। इसके चुनाव में बड़े जोड़-तोड़ चलते हैं। बड़े-बड़े राजनैतिक नेता अपना-अपना जोर लगाते हैं। हज़ारों रुपये खर्च करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। समाचारपत्रों में भी कालेज यूनियन के प्रधान को ऊँचा स्थान दिया जाता है। उसके वक्तव्य छापे जाते हैं। राष्ट्र की समस्याओं पर उनके विचार पूछे जाते हैं।

छात्र-नेताओं की उत्पत्ति

एक प्रजातन्त्रीय देश में शिक्षा के क्या उद्देश्य होने चाहिए, इस विषय में शिक्षाशास्त्रियों के विभिन्न मत हैं। इन उद्देश्यों की सूची भी दिन-व-दिन बढ़ती जा रही है। समाज की प्रगति के साथ साथ इन उद्देश्यों में परिवर्तन भी आता जा रहा है। इस बात में दो राय नहीं हैं कि आज की परिस्थितियों में हमारे देश में प्रजातन्त्रीय नेतृत्व के विकास की अत्यन्त आवश्यकता है। गांव-गांव और शहर-शहर में हमें अच्छे नागरिकों और नेताओं की आवश्यकता है। अच्छे नेतृत्व की उत्पत्ति कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में ही सम्भव है। इसलिए छात्रों को नेता बनने के लिए प्रेरित करना जरूरी है। यही छात्र जब जीवन में प्रवेश करेंगे तो अपनी सूझ-बूझ से अपने-अपने क्षेत्रों को उन्नत कर सकेंगे। हमारी शिक्षा-संस्थाओं में छात्रों को नेता बनने के लिए अवश्य बढ़ावा मिलना चाहिए।

गुजरात का आन्दोलन

आज हर आदमी यह सोचने को मजबूर हो गया है कि देश की निरन्तर पतन की ओर बढ़ती है गति को कैसे रोका जाय? घूम-फिर कर उसकी निगाह छात्र-वर्ग पर ही जाती है। झूठ, बेईमानी, चालाकी और मक्कारी से जिनकी आत्मा धूमिल हो चुकी है, उनसे कुछ आशा नहीं की जा सकती। वे देश के लिए कोई जोखिम उठा सकेंगे, यह सोचना ही बेकार है। वही नौजवान जिनकी भुजाओं में बल है, हृदय में संकल्प है और मन में त्याग है, अपने जीवन को दाँव पर लगाकर भ्रष्टाचार, पक्ष-पात, अन्याय और अनैतिकता को मिटा सकते हैं। भ्रष्टा-चारी राक्षसों को तो कोई राम ही मार सकता है जो सिंहासन का मोह छोड़कर वनवासी बनने को तैयार हो। सत्ता के दास मन्त्री और प्रधानमन्त्री तो बन सकते हैं मगर देश को स्वच्छ प्रशासन नहीं दे सकते क्योंकि उनके अपने दिल काले हैं।

थोड़े दिन पहले ही गुजरात में क्या हुआ? जब भ्रष्टाचार पराकाष्ठा पर पहुँच गया, मँहगाई आसमान को छू गई, लोग भूखों मरने लगे, विधान-सभा से चिपटे हुए ये नये राजा अपनी गद्दी छोड़ने को तैयार न हुए, 'दुनियाँ मरती है मरने दो, हम से आग बहुत दूर है', तो उस समय छात्रों ने ही आग में कूद कर आग बुझाई और बा-आवाज बुलन्द कहा, "शासको! अगर तुम जनता को रोटी और काम नहीं दे सकते, मँहगाई दूर नहीं कर सकते, भ्रष्टाचार नहीं मिटा सकते तो तुम्हें शासन करने का कोई अधिकार नहीं है। तुम अपनी गद्दी छोड़ दो। विधान-सभा कोई मन्दिर नहीं है जिसमें विधायकों की मूर्तियां स्थापित करना आवश्यक हो।" शर्मदार विधायकों ने तुरन्त इस्तीफ़े दे दिये। जो गद्दी नहीं भी छोड़ना चाहते थे, उन्हें भी अपनी सीट खाली करनी पड़ी।

बिहार का आंदोलन

बिहार की अवस्था भी शोचनीय होती जा रही है। वहाँ भी क्रान्ति के अंकुर फूट आये हैं। आये दिन बन्द और हड़तालें होती रहती हैं। पथराव, घेराव, अश्रु-गैस, लाठी और गोली साधारण-सी बात हो गई है। दो-चार विद्यार्थी और दो-चार साधारण व्यक्ति हर रोज पुलिस की गोली का शिकार हो जाते हैं। हालात तेज़ी से कानून के हाथ से निकलते जा रहे हैं। ऐसा लगता है थोड़े दिनों में सारा देश जंगल बन जायेगा। असुरक्षा और अनिश्चितता की दुमुँही नागरिक-जीवन को लीले जा रही है।

कल क्या होगा? मँहगाई कितनी बढ़ जायगी, कौन-सी और वस्तु बाजार से गायब हो जायेगी? राशन की दूकानों पर कतारों की लम्बाई कहाँ तक पहुँचेगी? कितनी रेलगाड़ियां चलनी और बन्द कर दी जायेंगी? कब कौन किसी को लूट लेगा? कौन किसी को कत्ल कर देगा? कुछ मालूम नहीं। ये आशंकाएँ हर वर्ग और हर आयु के स्त्री-पुरुषों को सता रही हैं। छोटे-छोटे बच्चे पूछते हैं—"पापा! हमारा स्कूल कब खुलेगा?" पापा क्या जवाब दे। उसे अपने कालेज का ही पता नहीं कि वह कब खुलेगा और कब अचा-नक बन्द हो जायेगा। सब कुछ बिखर-सा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि आदमी की समझ बौरा गई है। उसके सोचने की शक्ति समाप्त हो गई है जैसे विचारों के रेगिस्तान में परमाणु बम फट गया हो।

राजनीति की दलदल में

जो लोग यह कहते हैं कि छात्रों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए, उन्हें किनारे पर खड़े होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ़ डूबते हुओं का तमाशा देखना चाहिए, हमारे विचार में उनका यह दृष्टिकोण व्यावहारिक नहीं है। छात्र वर्ग को सम्पूर्ण समाज से अलग नहीं रखा जा सकता। छात्र, अध्यापक, प्राध्यापक, आचार्य, उपकुलपति, क्लर्क, चपरासी तथा शिक्षा और उससे सम्बन्धित संस्थाओं में कार्य करने वाले लोग—सभी समाज के अंग हैं। इसलिए वे राजनैतिक प्रभाव से अछूते नहीं रह सकते। अपने अस्तित्व को जीवित और सुरक्षित रखने के लिए उन्हें संघर्ष करना ही पड़ेगा। आप उन्हें केवल उनकी पाठ्य-पुस्तकों से बाँधकर नहीं रख सकते। उन्हें अपनी शक्तियों के प्रदर्शन के लिए अवसर देने ही पड़ेंगे। फिर भी इतना प्रयत्न अवश्य होना चाहिए कि छात्र और शिक्षक राजनीति को अवश्य प्रभावित करें मगर राजनीतिज्ञों के हाथ का खिलौना न बनें। राजनीति की गंगा में स्नान अवश्य करें मगर दलदल में न फँसें। इसके लिए छात्रों को एक प्रगतिशील, न्यायप्रिय, निर्भीक और स्वच्छ जीवन-दर्शन अपनाना पड़ेगा। वास्तव में विश्वविद्यालयों के उपकुलपति, कालेजों के प्राचार्य और प्राध्यापक ही उनका सही मार्ग-दर्शन कर सकते हैं और उन्हें राजनैतिक दलों के चंगुल में फँसने से बचा सकते हैं।

अतः वर्तमान युग की माँग है कि छात्रों में से भी वही छात्र राजनीति में भाग लें जिनमें ईमानदारी, सद्‌चरित्रता, त्याग-भावना, लगन, संकल्प और देश-प्रेम के भाव विद्यमान हों; एक शायर ने युवा पीढ़ी की गति-विधि को दृष्टि में रखकर ठीक ही कहा है—

"ओक़ाबी रूह जब बेदार होती है जवानों में,
नज़र आती है उनको अपनी मंज़िल आसमानों में।
नहीं तेरा नशेमन क़स्रे सुलतानी की गुम्बद पर,
तू शाहीं है, बसेरा कर पहाड़ों की चटानों में।"

[पृष्ठ ११९ का शेषांश]

और हड़तालों में निकलता है। जो कुछ रह जाता है, उसमें पढ़ाई पूरी नहीं हो पाती है। यदि ये विद्यार्थी किसी प्रकार डिग्री लेकर कालेज से निकलते हैं तो फिर इनका अभियान किसी सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लिए शुरू हो जाता है। जिस विभाग में ये प्रवेश पा जाते हैं उसी में एक अभिशाप बनकर रह जाते हैं। वहाँ भी काम न करना, उद्दण्डतापूर्वक राजनीति में लिप्त रहना—यही इनका तरीका रहता है।

भारत में स्वतन्त्रता का जितना दुरुपयोग किया जा रहा है, उतना इतिहास में भी अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। आज प्रत्येक व्यक्ति जितना अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है उतना कर्तव्यों के प्रति नहीं। परिणामस्वरूप स्वेच्छाचारिता और भ्रष्टाचार का सर्वत्र बोलबाला है। बोलने और लिखने की स्वतन्त्रता का अर्थ हो गया है—अनर्गल प्रलाप और मिथ्याचार।

विद्यार्थियों को राजनीति में झोंककर राजनीतिक दलों के नेता अपना काम तो निकाल लेते हैं लेकिन वह विद्यार्थियों को बड़ा मँहगा पड़ता है। वे अपना समय व्यर्थ ही बरबाद कर देने के कारण उस ज्ञान से वंचित रहते हैं जो यदि वे अर्जित कर लेते तो उन्हें भावी जीवन में काम आता। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है, "श्रद्धावान् लभते ज्ञानं।" उपनिषदों में लिखा है कि शिष्यों को सम्बोधन करते हुए आचार्य ने अनुशासन के रूप में कहा था—"मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव" आदि। परन्तु आज आचार्य को देवतुल्य मानने के बजाय शिष्यगण उन्हें मार डालने को भी तत्पर हैं। कैसी विडम्बना है?

आज का विद्यार्थी-आन्दोलन भारतीय संस्कृति एवं चिन्तन दर्शन के सर्वथा प्रतिकूल है। मँहगाई, अभाव आदि छात्र के नहीं अपितु उसके अभिभावक के सिरदर्द हैं। पाठ्यक्रम क्या हो, यह शिक्षाविद् जानें, विद्यार्थी को उससे कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। विद्यालय की व्यवस्था कैसी है, उसमें क्या सुधार होना चाहिए? यह प्राचार्य और प्रबन्ध-समिति के सोचने का विषय है। शिक्षक कौन है या कैसा, इसकी चिन्ता छात्र को क्यों? शिक्षकों पर तो नियन्त्रण प्राचार्य और प्रबन्ध-समिति का है। विद्यार्थी को इस सम्बन्ध में कुछ करना नहीं है। शुल्क अधिक है या न्यून, इसका असर विद्यार्थी पर नहीं, अभिभावक पर है। विद्यार्थी का काम केवल पढ़ना है और पढ़-लिखकर वह सामर्थ्य अर्जित करनी है जिससे वे अच्छे नागरिक बन सकें और अपना भावी जीवन सफल बना सकें।

विद्यार्थियों के उपद्रव का अर्थ है—पुलिस को निमन्त्रण। विद्यार्थीगण उपद्रव करते ही क्यों हैं जिससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके सामने पुलिस को डटने का अवसर मिले। कानून और व्यवस्था की दृष्टि से पुलिस को अपने कर्तव्य का पालन करना ही होता है, फिर उससे संघर्ष करने से क्या लाभ ? कोई भी शासन अराजकता कभी सहन नहीं करेगा। विद्यार्थियों को ये सभी बातें सोचनी हैं। उनको प्रत्येक देशवासी के प्रति भ्रातृत्व की भावना रखकर आचार-व्यवहार करना है। पुलिस वाले भी अपने ही देशवासी हैं। शासन वह है जिसे हमने अपने मताधिकार से ही चुना है। निश्चित अवधि के उपरान्त हमें उसे बदलने का भी अधिकार है।

यदि विद्यार्थी ठण्डे दिमाग़ से सोचेंगे तो आज की राजनीति से पृथक् रहकर ही उन्हें अपना कल्याण दृष्टिगोचर होगा। ●

[पृष्ठ ११४ का शेषांश]

ऐसा मनचीता काम मिल पाता है जिससे उनकी रोजी-रोटी चल सके, और न ही वे आजीविका के अपने पैतृक साधन अपना पाते हैं। वे अपने को असहाय, किंकर्तव्यविमूढ़ और असमजस की स्थिति में जकड़ा हुआ अनुभव करते हैं। शिक्षा-प्रबन्ध में भी कुछ ऐसी व्यवस्था लाई जाय ताकि गुटबन्दी और छिछली राजनीति का परिहार हो तथा उसका सारा ध्यान छात्रों के सर्वतोमुखी विकास की ओर ही केन्द्रित हो।

हमारे देश में अनेक राजनीतिक दल हैं जिनकी विचारधाराएँ अलग-अलग हैं। ये दल अपने राजनीतिक स्वार्थ की सिद्धि के लिए जनता का उपयोग तो करते ही हैं, छात्रों को भी नहीं बख्शते। उन्होंने शिक्षा-संस्थाओं को दलगत राजनीति का अखाड़ा बना दिया है। छात्रों को भी वही दाँव पेच और पैंतरेबाजी सिखा दी है जिनका वे स्वयं प्रयोग करते हैं। छात्र-संघों के चुनाव में क्या कुछ नहीं किया जाता। विभिन्न राजनीतिक दल अपना प्रचार-तंत्र सक्रिय करते हैं, उम्मीदवारों को समर्थन और सहायता देते हैं और जब पदाधिकारियों का चुनाव हो जाता है, तब कार्यकारिणी को आन्दोलन, संघर्ष और हड़ताल के लिए प्रेरित करते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय में प्रत्येक वर्ष हड़ताल अवश्य होती है जिससे संघर्ष का वातावरण तैयार होता है। छात्र अपना पूरा समय अपने अध्ययन में नहीं दे पाते। परीक्षा की पूरी तैयारी नहीं हो पाती, इसलिए रियायतों के प्रश्न उठाए जाते हैं।

अभी तक तो छात्रों की राजनीतिक गतिविधियाँ विश्वविद्यालयों और कालेजों तक ही सीमित थीं किन्तु अब वे देश की राजनीति में भी खुलकर भाग लेने लगे हैं। गुजरात और बिहार के कार्यकलाप इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इसके पक्ष में तर्क यह दिया जाता है कि चूँकि छात्र भी समाज के अंग हैं और महँगाई और अभावों का प्रभाव उनके ऊपर भी पड़ा है इसलिए उनका राजनीति में भाग लेना अनुचित नहीं है।

मैं यह नहीं कहता कि छात्रों को राजनीति में भाग लेना ही नहीं चाहिए। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि छात्र-समाज के सबसे अधिक सशक्त और जीवन्त अंग हैं। उन्हें राजनीतिक उद्देश्य के लिए अपनी शक्ति और जीवन्तता का उपभोग उन्हीं परिस्थितियों में करना चाहिए जबकि ऐसा करना नितान्त अनिवार्य और अपरिहार्य हो। महात्मा गांधी ने भी छात्रों से स्वतंत्रता संग्राम में अपना सक्रिय योगदान करने की अपील की थी और उनके आह्वान पर हजारों छात्र अपनी पढ़ाई छोड़कर राजनीति में उतरे थे तथा आन्दोलनों को सफल बनाने में अपूर्व सहायता दी थी। जब देश पर बाह्य आक्रमण का संकट आ जाए और उसकी प्रतिष्ठा पर बन आए तो मातृभूमि तथा उसके गौरव की रक्षा के लिये वे आपत्ति काल में पढ़ाई छोड़कर भी मैदान में आ सकते हैं। अन्य स्थितियों में उन्हें सक्रिय राजनीति से अलग ही रहना चाहिए तथा अपना समस्त ध्यान, अपनी समस्त शक्ति तथा अपनी प्रतिभा और प्रज्ञा का प्रयोग अपने भावी जीवन के लिए उपयोगी ज्ञान और कुशलता प्राप्त करने में लगानी चाहिए।

उन्हें अपने जीवन के स्वर्णिम समय छात्र-जीवन में अपने व्यक्तित्व का सर्वतोमुखी विकास करने के लिए चेष्टारत रहना चाहिए। सच्ची निष्ठा से सही दिशा में किया गया कोई भी उद्यम व्यर्थ नहीं जाता। कार्य में सफलता निश्चित रूप से मिलती है। कहा भी गया है कि—

उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशंति मुखे मृगाः॥ ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्र-वर्ग और राजनीति

श्री जय कुँवर वर्मा
प्रकाशन विभाग, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

'शिक्षा' और 'राजनीति', राजनीति' और 'शिक्षा'—दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है; एक ऐसा सम्बन्ध, जिसे यदि सही रूप में समझ लिया जाय तो एक नए विकास-पथ का अनुसरण किया जा सकता है। पर आज 'शिक्षा' और 'राजनीति' को लेकर बहस जारी है—एक ऐसी बहस, जिसका निष्कर्ष संभवतः अभी बहुत करीब नहीं, पर इतना दूर भी नहीं कि उस तक पहुँचा न जा सके।

जहाँ तक बहस की बात है—**एक ओर** राजनीतिज्ञ व उनके हमजोली शिक्षा-क्षेत्र में छात्रों के हस्तक्षेप को आज अच्छी दृष्टि से नहीं देखते और उसे 'विरोधी दल की चाल' की संज्ञा देकर कहते हैं—"छात्रों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए।" यह एक ऐसा कथन है जो आज गले से नीचे नहीं उतरता।

दूसरी ओर, छात्र-वर्ग का कहना है—"जब सरकार (सत्तारूढ़ दल) जनता को रोजी-रोटी नहीं दे सकती तो उसे सत्ता में रहने का कोई अधिकार नहीं है।" यह एक ऐसा कथन है, जिसकी अनदेखी कोई वर्ग, समुदाय, व्यक्ति—यहाँ तक कि एक साधारण नागरिक भी नहीं कर सकता। स्पष्ट है कि फरेबी व दलगत राजनीति ने शिक्षा के अतिरिक्त, छात्रों के सामाजिक जीवन पर भी प्रभाव डाला है। इसी कारण आज का छात्र-वर्ग शिक्षा-क्षेत्र व उसके ढांचे में परिवर्तन चाहता है; एक ऐसा परिवर्तन, जो फरेबी और दलगत राजनीति से रंचमात्र भी प्रभावित न हो।

वर्तमान युग में छात्र-वर्ग ही एकमात्र ऐसा विकल्प है, जो आज के राजनीतिज्ञों, उनके 'चमचों' और इन दोनों के प्रभाव में आने वाले लोगों को सही सबक़ देने की क्षमता रखता है। फलस्वरूप, अपना दबदबा बरकरार रखने के लिए आज के राजनीतिज्ञ कुर्सी से चिपके रहने व अन्य स्वार्थों की पूर्ति के लिए छात्रों को अपने हाथ की कठपुतली बनाने हेतु नए-नए हथकण्डे काम में लाते हैं। फलतः आज का छात्र-वर्ग अपने उद्देश्य से विचलित हुआ जा रहा है; वही छात्र-वर्ग, जो कल के भारत का निर्माणकर्त्ता है। यदि गंदी राजनीति के दलदल में आज का छात्र-वर्ग पूर्णतः फँस जायगा, अपने उद्देश्य से विचलित हो जायगा, तो क्या होगा—कल के भारत का ? यही प्रश्न एक चुनौती के रूप में आज के राजनीतिज्ञों के समक्ष विचारणीय है।

यहाँ एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि 'राजनीति के लिए शिक्षा जरूरी है', या 'शिक्षा के लिए राजनीति'—इन दोनों में से प्रथम विकल्प ही औचित्यपूर्ण व हितकर है, विशेषकर छात्रों के लिए। यदि शिक्षा में राजनीति जैसी कोई चीज है, तो उसका स्वरूप सैद्धान्तिक हो, व्यावहारिक नहीं; क्योंकि व्यावहारिक राजनीति के लिए अनुभव और कार्य-कुशलता की आवश्यकता है। और उसकी अपेक्षा छात्र-वर्ग से की जाय, इसे स्वीकारने में संकोच लगता है। अस्तु, राजनीति के सैद्धान्तिक स्वरूप को समझने और उसे व्यवहार में लाने के लिए शिक्षा ही एकमात्र साधन है। 'शिक्षा के लिए राजनीति' का तो कोई औचित्य ही नहीं है। हाँ, वांछनीय सामाजिक परिवर्तन हेतु राजनीति एक अमोघ अस्त्र है, एक सशक्त साधन है—इसमें दो रायें नहीं।

आज शिक्षा मन्दिर, छात्र-वर्ग, अभिभावक, अध्यापक फरेबी व दलगत राजनीति से दुखित हैं। जिस तरह की शिक्षा-प्रणाली व प्रशासन-व्यवस्था आज शिक्षा-क्षेत्र में व्याप्त है, उसकी अनुपयोगिता के बारे में मतभेद नहीं है, पर सफेदपोश राजनीतिज्ञ व उनके पिट्ठुओं के कामचलाऊ स्वभाव के अनुसार सब ठीक चल रहा है। एक ओर सुनने में आता है—'कड़े-क़दम उठाए जा रहे हैं'; 'ठोस परिवर्तन किए जा रहे हैं'

[शेष पृष्ठ १३३ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य भवन, आगरा द्वारा प्रकाशित

अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य के प्रमुख प्रकाशन

COMMERCE

Company Law and Secretarial Practice
(Fifth Edn. 1974)
Dr. Chauhan & Dr. Sharma 30.00

Business Administration and Management (Fifth Edn. 1974)
Dr. S. C. Saksena 35.00

Inome-tax Law and Accounts
Dr. H. C. Mehrotra 25.00

Management Accounting
Dr. Man Mohan & Goyal 27.50

Institutional Financing in India
Dr. Tarkeshwar Pd. Maitin 35.00

Commercial Practice
(Third Edn. 1974)
Dr. Chauhan and Gupta 10.00

Practical Problems in Advanced Accounts Dr. S. M. Shukla 22.00

Current Economic & Commercial Essays
Dr. Mamoria & Dr. Chauhan 8 50

Industrial Economics
Dr. Mamoria & Dr. Srivastava 25.00

Cooperation in India
Dr. B. S. Mathur 35.00

Economics of Labour and Social Welfare Dr. T. N. Bhagoliwal 25.00

Investment Pattern of the Life Insurance Corporation of India
(First Edn 1974) Dr. S. P. Singh 20.00

Control of Commercial Banks in India Dr. Mohammad Quddas 35.00

Business Leadership in India
Ed. by Dr. Om Prakash & Others 30.00

Income-tax Law & Practice
(First Edn. 1974)
Dr. H. C. Mehrotra 40.00

CRIMINOLOGY

Pathology of Crime & Delinquency
Paripurnanand Varma 40.00

The Crime and Police in India
(First Edn. 1974) Dr. A. S.Gupta 50.00
[Foreword by Smt. Indira Gandhi Prime Minister of India]

वाणिज्य एवं अर्थशास्त्र

व्यवसाय प्रशासन एवं प्रबन्ध
(चतुर्थ संस्करण १९७४) डा. एस. सी. सक्सेना २५.००

भारतीय उद्योगों का संगठन, प्रबन्ध एवं वित्त
(चतुर्थ संस्करण १९७४) डा. बी. एन. गुप्ता ३०.००

प्रबन्धकीय लेखाविधि डा. एस. पी. गुप्त २५.००
(तृतीय संस्करण १९७४)

सांख्यिकी डा. बी. एन. गुप्ता ३५.००
(द्वितीय संस्करण १९७४)

वित्तीय लेखांकन डा. एस एम. शुक्ल २०.००
(द्वितीय संस्करण १९७४)

सहकारिता (देश एवं विदेशों में)
डा. बी. एस. माथुर २५.००

आधुनिक परिवहन डा० शिवध्यानसिंह चौहान २५.००
(सप्तम संस्करण १९७४)

आय-कर विधान तथा लेखे
डा. एच. सी. मेहरोत्रा ३०.००

निगम वित्त प्रबन्ध रघुवीर सहाय कुलश्रेष्ठ ३०.००

कम्पनी अधिनियम तथा सचिवीय पद्धति
(नवम् संस्करण १९७४) डा. एस. एम. शुक्ल २२.५०

कम्पनी राजनियम तथा प्रबन्ध एवं प्रशासन
बी. एन. अग्रवाल १५.००

सांख्यिकी के सिद्धान्त डा. एस. एम. शुक्ल,
(नवम् संस्करण १९७४) डा. शिवपूजन सहाय ३०.००

मौद्रिक अर्थशास्त्र डा. हरिश्चन्द्र शर्मा २५.००
(द्वितीय संस्करण १९७४)

भारतीय एवं व्यावहारिक सांख्यिकी
(चतुर्थ संस्करण १९७४) डा. हरिश्चन्द्र शर्मा,
प्रो. पी. एन. गुप्ता २०.००

बाजार व्यवस्था डा. तुलसीराम शर्मा,
(द्वितीय संस्करण १९७४) डा. सुगनचन्द जैन २०.००

विपणन प्रबन्ध डा. सुगनचन्द जैन २५.००

परिव्यय लेखांकन एम. एच. अग्रवाल २५.००

आर्थिक नियोजन—सिद्धान्त एवं समस्याएँ
डा. शर्मा एवं वार्ष्णेय २५.००
(तृतीय संस्करण १९७४).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औद्योगिक अर्थशास्त्र डा. बी. एन. गुप्ता ३०.००
(चतुर्थ संस्करण १९७४)
औद्योगिक अर्थशास्त्र डा. मामोरिया, डा. श्रीवास्तव
(प्रथम संस्करण १९७४) एवं डा. वार्ष्णेय २५.००
सेविवर्गीय प्रबन्ध डा. मामोरिया एवं दशोरा २५.००
आर्थिक सिद्धान्त डा. आर. बी. मिश्रा २५.००
(प्रथम संस्करण १९७४)
प्रबन्धकीय अर्थशास्त्र डा. आर. बी. मिश्रा २५.००
(प्रथम संस्करण १९७४)
श्रम-अर्थशास्त्र एवं सामाजिक सुरक्षा
डा. टी. एन. मगोलीवाल २५.००
(प्रथम संस्करण १९७४)
विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन
डा. शर्मा एवं वार्ष्णेय २५.००
(तृतीय संस्करण १९७४)
विकास का अर्थशास्त्र डा. शर्मा एवं वार्ष्णेय २०.००
(तृतीय संस्करण १९७४)
भारत में लोकउद्योग डा. बी. एन. त्रिपाठी २०.००
(तृतीय संस्करण १९७४)
औद्योगिक सम्बन्ध डा. मामोरिया एवं दशोरा २०.००
(प्रथम संस्करण १९७४)
जनांकिकी एवं जनसंख्या अध्ययन
(प्रथम संस्करण १९७४) डा. दुबे एवं मिश्रा ३५.००
एडवांस्ड एकाउण्ट्स डा. एस. एम. शुक्ल २५.००
(दसवाँ संस्करण १९७४)
अंकेक्षण डा. टी. आर. शर्मा १५.००
(नवम् संस्करण १९७४)
आर्थिक संसाधन डा. चतुर्भुज मामोरिया २०.००
(द्वितीय संस्करण १९७४)
आर्थिक संगठन तेला, श्रीवास्तव एवं पारिख १५.००
(द्वितीय संस्करण १९७४)
बैंकिंग विधि एवं व्यवहार डा. हरिश्चन्द्र शर्मा १६.८७
(चतुर्थ संस्करण १९७४)
मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व डा. हरिश्चन्द्र शर्मा २०.००
(नवम् संस्करण १९७४)
औद्योगिक सन्नियम प्रो. बी. के. कुमावत १५.००
(चतुर्थ संस्करण १९७४)
व्यापारिक सन्नियम डा. एस. एम. शुक्ल,
(बारहवाँ संस्करण १९७४) प्रो. रघुवीर नरायन १६.८७

अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के. पी. जैन २५.००
भारत का आर्थिक विकास डा. शर्मा एवं सिंह २०.००
(नवम् संस्करण १९७४)
भारतीय अर्थशास्त्र डा. शर्मा एवं सिंह २०.००
(नवम् संस्करण १९७४)
नियोजन एवं आर्थिक विकास
(प्रथम संस्करण १९७४) आर. एस. कुलश्रेष्ठ २५.००

समाजशास्त्र

समाजशास्त्र जी. के. अग्रवाल १२.५०
(सप्तम संस्करण १९७४)
भारतीय सामाजिक संस्थाएँ जी. के. अग्रवाल १५.००
(पंचम संस्करण १९७४)
सामाजिक विघटन डा. एस. पी. आर्य १२.५०
(द्वितीय संस्करण १९७४)
मानव समाज गोपाल कृष्ण अग्रवाल १२.५०
(षष्ठम संस्करण १९७४)
भारतीय समाज तथा समस्याएँ
(चतुर्थ संस्करण १९७४) जी. के. अग्रवाल १२.५०
सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन
(तृतीय संस्करण १९७४) जी. के. अग्रवाल १४.००
सामाजिक सर्वेक्षण की पद्धतियाँ
(द्वितीय संस्करण १९७४) डा. एस. पी. आर्य १२.५०

भूगोल

भारत का भूगोल डा. चतुर्भुज मामोरिया २५.००
(चतुर्थ संस्करण १९७४)
एशिया का भूगोल डा. मामोरिया
(तृतीय संस्करण १९७४) एवं डा. अग्रवाल २०.००

राजनीति-शास्त्र

विश्व के प्रमुख संविधान पुखराज जैन १६.००
(द्वितीय संस्करण १९७४)
राजनीतिक विचारक
(प्रथम संस्करण १९७४) पुखराज जैन १०.००
राजनीति विज्ञान के सिद्धान्त पुखराज जैन १०.००
(चतुर्थ संस्करण १९७४)
आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ
(तृतीय संस्करण १९७४) पुखराज जैन १०.००

साहित्य भवन, हास्पिटल रोड, आगरा–३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ लेखकों का रचना-संभार

आलोचना एवं शोध

□ मुक्तिबोध का गद्य साहित्य	मोतीराम वर्मा	१८.००
□ लक्षित मुक्तिबोध	मोतीराम वर्मा	१२.००
□ गजानन माधव मुक्तिबोध	लक्ष्मणदत्त गौतम	३०.००
□ गढ़वाली लोकगीत : एक सांस्कृतिक अध्ययन	डा० गोविन्द चातक	४०.००
□ स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य	डा० शेरजंग गर्ग	४०.००

उपन्यास

□ बात एक औरत की	कृष्णा अग्निहोत्री	१२.५०
□ वैसाखियों वाली इमारत	रमेश वक्षी	१०.००
□ किस्से ऊपर किस्सा	रमेश वक्षी	८.००
□ मरने की जगह	विश्वेश्वर	५.००
□ प्रतिनायक	विश्वेश्वर	५.००
□ लालबाई (बँगला से अनूदित)	रमापद चौधरी	१५.००

कहानी

□ बर्फ के रंग का शरीर	प्रणवकुमार बन्द्योपाध्याय	८.००
□ समीकरण	सुरेश ऋतुपर्ण : पवन माथुर	८.००

नाटक

□ देवयानी का कहना है	रमेश वक्षी	८.५०

कविता

□ अशक्त जनपद तथा अन्य कविताएँ	सतीशकुमार	७.००
□ काली कविताएँ	प्रणवकुमार वन्द्योपाध्याय	१०.००

बाल साहित्य

श्री व्यथित हृदय कृत : फूल जो सदा महकते ही रहेंगे (४.००), दीप जो सदा जलते ही रहेंगे (३.००), प्रेरक जीवन की प्रेरक कहानियाँ (३.००), **श्रीकृष्ण कृत :** महकते जीवन फूल (२.००), **संतराम वत्स्य कृत :** लोक व्यवहार (२.००), सीख की कहानियाँ (२.५०), ज्ञान की कहानियाँ (२.००), सदाचार की कहानियाँ (३.००), मानव धर्म की कहानियाँ (३.५०), **राम कृष्ण शर्मा कृत :** बाल बोध कथाएँ (३.००)।

विद्यार्थी प्रकाशन

के–७१, कृष्ण नगर, दिल्ली–110051

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षक राजनीतिज्ञ

श्री महेश देऊस्कर
व्याख्याता—विश्वविद्यालयीन शिक्षा महाविद्यालय, सागर (म० प्र०)

शिक्षा प्रत्येक राष्ट्र के लिए एक आधार-शिला है। शिक्षा देने का कार्य शिक्षक करता है। शिक्षक शिक्षा-प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है। कहा भी गया है कि "शिक्षक राष्ट्र-निर्माता है।" यदि इस कथन को प्राचीन एवं वर्तमान भारतीय सभ्यता के सन्दर्भ में देखा जावे तो उपर्युक्त कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध होगा।

प्राचीन भारतीय सभ्यता के अन्तर्गत वैदिक काल में शिक्षक समाज में अग्रणी स्थान प्राप्त करता था। तत्कालीन समाज में शिक्षक का महत्व नीचे लिखे श्लोक से जाना जा सकता है :—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परंब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

इसके अतिरिक्त भी उस समय शिक्षकों को राजाओं की ओर से भी सम्मान प्राप्त होता था। शिक्षकों का स्वागत राजा अपने सिंहासन से उठकर करते थे जिसके उदाहरण नारद, वशिष्ठ और विश्वामित्र हैं। राजा अपने विद्यार्थी-जीवन में इन्हीं गुरुओं के पास राज-नीति और युद्ध सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करते थे और आगे चलकर राजकाज में समय-समय पर इन गुरुजनों से सलाह आदि भी लिया करते थे। महाभारत काल के गुरु द्रोणाचार्य और कौरव एवं पाण्डव इसके उत्तम उदाहरण हैं। मराठा साम्राज्य के महान् व्यक्ति छत्रपति शिवाजी ने दादा जी कोणदेव के पास धनुर्विद्या और युद्धविद्या सीखी थी और स्वामी रामदास शिवाजी को उनके राजकाज में नीति-विषयक सलाह दिया करते थे। राजदरबार में जो राजपुरोहित होते थे, वे भी कभी-कभी राजाओं को राजकाज में सलाह दिया करते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य के शिक्षक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ व अर्थशास्त्री चाणक्य थे जो उसे राजकार्य में सलाह दिया करते थे। इस प्रकार प्राचीन काल में शिक्षकों को एक राजनीतिक विशेषज्ञ के रूप में सम्माननीय स्थान प्राप्त था।

मुगलकाल और ब्रिटिश शासनकाल में शिक्षक का राजनीतिज्ञ स्वरूप बहुत कुछ अस्पष्ट-सा रहा है। ब्रिटिश शासन के उत्तरार्द्ध में जब कांग्रेस द्वारा ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष छेड़ा गया तो कई महान् व्यक्तियों ने इसमें अपना सक्रिय सहयोग दिया; जैसे—लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, महात्मा गांधी, डा० ज़ाकिर हुसैन, डा० राधाकृष्णन् आदि। ये महान् नेता किसी-न-किसी रूप में शिक्षक कहे जाते हैं।

इन राष्ट्रीय नेताओं का शिक्षक के रूप में राज-नीतिज्ञ स्वरूप सर्वप्रथम उस समय सामने आया जब महात्मा गांधी ने १९२० में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया और सभी शिक्षकों और छात्रों को ब्रिटिश शासन द्वारा संचालित शिक्षण-संस्थाओं का बहिष्कार करने को कहा गया। शिक्षकों द्वारा राजनीति में खुले आम सक्रिय रूप से भाग लेने का यह प्रथम अवसर था। इस समय से शिक्षक सक्रिय रूप से निरन्तर राजनीतिक आन्दोलनों में देश को स्वतन्त्रता प्राप्त कराने के लिए सक्रिय रूप से भाग लेते रहे हैं। शिक्षक निजी स्वार्थों और हितों के ऊपर उठकर सम्पूर्ण समाज के हितों से एकाकार होता प्रतीत होता है। राजनीति जैसी कि वह सामान्य अर्थों में समझी जाती है, उससे परे विशुद्ध राजनैतिक चिन्तन व राजनैयिक (स्टेट्स-मेनशिप) स्वरूपों में अभिव्यक्त होती है। यह स्वरूप जो विकसित हुआ, उसकी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए डा० राधाकृष्णन् और डा० जाकिर हुसैन जैसे महान् शिक्षाविदों ने प्लेटो के दार्शनिक राजा की संकल्पना को चरितार्थ कर दिया। राजनीतिक व्यक्तित्व जैसा कि इन महान् शिक्षकों का विकसित हुआ था, एक आदर्श

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप था। इस स्वरूप के पीछे शिक्षकों का पवित्र उद्देश्य विदेशी शासन से देश को स्वतन्त्रता प्राप्त कराना था।

स्वतंत्रता के बाद भारत में प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था स्थापित की गई। संविधान ने व्यक्ति के प्रति सम्मान और उसकी नैसर्गिक प्रतिभा में विश्वास स्थापित कर उन्हें मतदान का अधिकार सौंपा। प्रतिनिधित्व सरकार की स्थापना हेतु यह आवश्यक हुआ कि प्रत्येक नागरिक चाहे वह शिक्षक हो या सिपाही, सबसे प्रथम नागरिक होने के नाते प्रतिनिधि शासन के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाये। संविधान ने जो स्वतन्त्रता का अधिकार सौंपा, वह भारतीय नागरिक को मौलिक अधिकार के रूप में प्राप्त हुआ। उनका प्रयोग प्रारम्भ होने लगा। स्वतन्त्रता के अधिकार के अन्तर्गत नागरिक अधिकार, भाषण की स्वतन्त्रता, अपने अधिकारों के लिए लड़ने, संघर्ष करने की स्वतन्त्रता व्यावहारिक रूप में सामने आई जबकि विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्तियों ने अपनी मांगों की पूर्ति हेतु संघों का निर्माण एवं संगठन प्रारम्भ किया। इस पर शिक्षण-व्यवसाय में कार्यरत शिक्षकों ने अपनी आवश्यकताओं और मांगों को शासन के समक्ष अभिव्यक्त करने के लिए शिक्षक संघों एवं सगठनों का निर्माण किया। इन संघों का उद्देश्य शिक्षक समुदाय के सदस्यों का वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक और वृत्तिक हित देखना और उस सम्बन्ध में कार्यक्रम आयोजित करना व क्रियान्वित करना था। इस सम्बन्ध में कोठारी आयोग ने लिखा है—"संसार-भर के अध्यापक संगठनों ने लगभग एक ही पद्धति से प्रगति की है और कर रहे हैं। ये संगठन आरम्भ में भौतिक लाभ के लिए संघर्ष करने वाले 'कार्मिक संघ' के रूप में स्थापित होते हैं और धीरे-धीरे अपने सदस्यों के जीवन की बहुत-सी बातों में रुचि लेने लगते हैं। उदाहरण के लिए, १८७० में इंग्लैंड का राष्ट्रीय अध्यापक संघ अध्यापकों का वेतन बढ़ाने और कार्य की स्थिति सुधारने के लिए स्थापित हुआ था। यद्यपि यह संस्था आज भी अपने सदस्यों के भौतिक लाभ के लिए सक्रिय और उत्तरोत्तर सफलता के साथ कार्य कर रही है फिर भी तब से उसने अपना कार्य-क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत कर लिया है। भारत में भी शिक्षक संगठन इन्हीं स्थूल सिद्धान्तों के आधार पर विकसित हो रहे हैं। आजकल इनमें अधिकांशतः जैसा कि उचित भी है, अच्छा वेतन और कार्य की स्थितियों को सुधारने की दिशा में काम कर रहे हैं।" कुछ शिक्षक संघ जो कि भारत में बहुत पहले से इस दिशा में कार्य कर रहे हैं, अपने स्थापना-वर्ष के साथ निम्न प्रकार से हैं—

साउथ इण्डियन टीचर्स एसोसियेशन (१९०८); बंगाल टीचर्स एसोसियेशन (१९२१); वेस्ट बंगाल कालेज एण्ड यूनीवर्सिटी टीचर्स एसोसियेशन (१९२६); महाराष्ट्र स्टेट फेडरेशन आफ हैडमास्टर्स एसोसियेशन (१९४४); ओडिसा सेकेण्डरी स्कूल टीचर्स एसोसियेशन (१९४४); इण्डियन एसोसियेशन आफ टीचर एजुकेशन (१९५०); आल इण्डिया साइंस टीचर्स एसोसियेशन (१९५६); यू० पी० माध्यमिक शिक्षक संघ (१९५६); और केरला गवर्नमेण्ट प्राइमरी टीचर्स एसोसियेशन (१९५९)।

इस प्रकार देश के प्राइमरी, माध्यमिक, महाविद्यालयीन एवं विश्वविद्यालयीन स्तर के अध्यापकों में राजनैतिक सक्रियता बढ़ी और शिक्षक-संघों का प्रसार हुआ। वर्तमान में स्थानीय स्तर, नगर के स्तर, जिले, प्रदेश एवं राष्ट्र के स्तर पर कई प्रकार के शिक्षक संघों का निर्माण एवं गठन प्राथमिक, माध्यमिक, महाविद्यालयीन—इसमें शासकीय महाविद्यालयीन शिक्षक संघ और ग़ैर-शासकीय महाविद्यालयीन शिक्षक संघ और विश्वविद्यालयीन शिक्षक संघ का गठन हुआ। अभी हाल में मार्च, १९७४ में मध्य प्रदेश में पहली बार विश्वविद्यालयीन स्तर के अध्यापक सागर विश्वविद्यालय में सामूहिक रूप से एकत्रित हुए और मध्य प्रदेश विश्वविद्यालय शिक्षक संघ का गठन किया। इसी प्रकार अखिल भारतीय स्तर पर विभिन्न विश्वविद्यालयों के अध्यापक पहली बार दिल्ली में फरवरी, १९७४ में बजट सत्र के समय अपनी मांगों को अभिव्यक्त करने हेतु एकत्रित हुए थे। इन सभी संघों ने अपने कार्य को आगे बढ़ाने के लिए अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव, उपसचिव, कार्यकारिणी परिषद् और आवश्यकता पड़ने पर संघर्ष समिति आदि की नियुक्ति व गठन किया है। इन पदों के लिए जनतांत्रिक प्रणाली पर आधारित चुनाव-पद्धति को संघों ने अपने कार्यरूप में अपनाया। संघों में इन पदों को प्राप्त करने के लिए शिक्षकों में आपस में प्रतिस्पर्द्धा प्रारम्भ हुई, उनमें आपस में राजनीतिक संघर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भ हो गए। एक-दूसरे के विरुद्ध मोर्चे खड़े किये जाने लगे और इस प्रकार शिक्षक इन पदों को प्राप्त करने हेतु अपने आप में अपने स्तर पर सक्रिय राजनीतिज्ञ के जामे में दृष्टिगत होने लगे।

इस प्रकार के व्यक्तित्व को उभारने में राजनीतिक दलों ने भी अपना योगदान किया। राजनैतिक मान्यताएँ शिक्षक-विशेष को प्रभावित करती हैं। उसकी आस्था व विचार वैसे ही हो जाते हैं। इनकी अभिव्यक्ति वह शिक्षक-संघों के माध्यम से करने का अवसर ढूंढ़ता है जो कि इन व्यावसायिक संगठनों में आकर और भी अधिक मुखरित हो उठता है।

शिक्षकों की राजनीति के प्रति यह प्रवृत्ति वर्तमान में इतनी अधिक विकसित हो चुकी है कि अब वह न केवल राष्ट्रीय स्तर पर और प्रादेशिक स्तर पर वरन् शालेय स्तर पर, महाविद्यालयीन एव विश्वविद्यालयीन स्तर पर भी प्रारम्भ हो गई है। प्रत्येक शाला, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय के अन्दर वर्तमान में अध्यापक वर्ग में गुटबन्दी, दलगत राजनीति, जातिवाद आदि की भावना अत्यधिक मात्रा में विकसित हो चुकी है और हो रही है जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक शिक्षक एक-दूसरे को नीचा दिखाने के चक्कर में रहता है। शिक्षकों की इस राजनैतिक प्रवृत्ति का प्रभाव शिक्षा स्तर पर एवं छात्रों के आचरण पर हानिकारक रूप में पड़ता है।

दूसरे दृष्टिकोण से यदि शिक्षकों की इस वृत्ति को देखा जावे तो आज शिक्षक देश की राजनीति में भी रुचि लेने लगा है। विचारधारा की दृष्टि में वह अपने को किसी-न-किसी राजनैतिक दल से सम्बद्ध कर लेता है। यह सब व्यावहारिक रूप में उस समय ग्रहण करता है जब देश में विधानसभा और संसद के चुनाव होने जा रहे होते हैं। ऐसे समय में ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से शिक्षक व्यवहार में अपने राजनीतिज्ञ स्वरूप का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, जब वे किसी एक पक्ष की विजय के लिये और दूसरे पक्ष की हार के लिये अपनी सेवाओं को अर्पित करते हैं। इस जागरूकता का विशिष्ट कारण शिक्षकों का वैयक्तिक जीवन है। उनके जीवन का वैयक्तिक पक्ष उन्हें एक नागरिक की भी संज्ञा देता है। इस नाते उसे नागरिकता के आदर्श गुणों को भी परिलक्षित करना होता है। यह निश्चय ही विवादास्पद है कि शिक्षक नागरिक होने के नाते क्या किसी राजनीतिक दल से सम्बद्ध हो? राजनैतिक मान्यताएँ रखें? यदि ऐसा है तो क्या उसका प्रभाव दैनिक शालेय कार्यों व अध्यापन कार्य में भी परिलक्षित होगा। सभी यह स्वीकार करते हैं कि अवश्य उनकी राजनैतिक निष्ठा व मान्यता हो, किन्तु यह बालकों के प्रति व्यवहार और अध्यापन में परिलक्षित न हो। इस सन्दर्भ में शिक्षा-आयोग (१९६४-६६) ने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है—"अध्यापकों के नागरिक स्वातन्त्र्य को हम बहुत अधिक महत्त्व देते हैं। हम समझते हैं कि अध्यापकों का सामाजिक और जनजीवन में भाग लेना वृत्तिक और समग्र रूप से शिक्षा-सेवा के हित में होगा। इस प्रकार भाग लेने से देश का सामाजिक और राजनैतिक जीवन समृद्ध होगा। अध्यापकों को सभी नागरिक अधिकारों के उपभोग की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। उन्हें स्थानीय, जिला, राज्य अथवा राष्ट्रीय स्तर पर राजनैतिक पद प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए। चुनाव में भाग लेने के लिए उन पर कोई वैधानिक प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए और जब वे ऐसा करें तो उन्हें छुट्टी पर चला जाना चाहिए और यदि जनक्षेत्र में मिले पद के कारण कार्य के उचित सम्पादन में विघ्न आता है तो उन्हें अध्यापन सम्बन्धी अपना दायित्व अस्थायी तौर पर त्याग देना चाहिए। राजनैतिक अथवा सामाजिक कार्यों में इस प्रकार भाग लेना पूर्ण रूप से वैयक्तिक आधार पर होना चाहिए और इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि जिस संस्था में वह अध्यापन-कार्य कर रहा है, वह और उसके छात्र इसमें नहीं फँसें।

वर्तमान में शिक्षकों की आवश्यकतानुसार बढ़ती हुई माँगों को शासन से पूर्ण कराने के लिए जो शिक्षक संघ माध्यम के रूप में प्रयुक्त होते हैं, वे अपने कार्यक्रम को शासन के पास उचित और अनुचित तरीके से रखने का प्रयास करते हैं। अपने कार्यक्रमों को उचित तरीके से शासन के समक्ष रखने की यह शिक्षा उन्हें गांधी जी व अन्य तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं से विरासत में प्राप्त हुई है; जैसे—मेमोरेन्डम देना, माँगपत्र पेश करना, चाक डाउन स्ट्राइक, पूर्ण सांकेतिक हड़ताल, असहयोग आन्दोलन आदि। यदि इन सब माध्यमों से उन्हें सफलता प्राप्त न हुई या सफलता प्राप्त होने में शंका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही तो वे इससे भी एक कदम आगे बढ़ जाते हैं और वह है छात्र राजनीति का अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सहारा लेना अथवा किसी राजनैतिक दल से सम्बद्ध होकर आन्दोलन करना। इस सबका कुल परिणाम यह होता है कि शिक्षकों में अपने कर्तव्यों के प्रति लापरवाही जन्म लेती है, छात्रों में शिक्षकों के प्रति श्रद्धा का भाव कम होता है, छात्रों में अनुशासनहीनता बढ़ती है—और वे शैक्षणिक व्यवस्था में बाधक सिद्ध होते हैं। इस सबका परिणाम होता है शिक्षा स्तर ऊपर उठने की बजाय नीचे गिरने लगता है।

शिक्षकों की इस राजनीतिक प्रवृत्ति की पिपासा जो कि आधुनिक समय में तीव्र गति से बढ़ रही है, जानने हेतु कुछ कारणों की खोज करनी होगी। वे कारण इस प्रकार हैं—

(१) **जनतांत्रिक सिद्धान्तों के प्रति जागरूकता**—चूंकि विश्व के अधिकांश देशों में प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था लागू है और इस आधार पर प्रत्येक देश की शासन-व्यवस्था कार्य कर रही है। इस जनतांत्रिक व्यवस्था को जीवित रखने और व्यावहारिकता बनाये रखने के लिए उदीयमान पीढ़ी को शिक्षा के माध्यम से जनतांत्रिक सिद्धान्त शिक्षकों द्वारा प्रदान किए जाते हैं और शिक्षक ही इन सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए उपयुक्त होते हैं। उनके अपने क्या मौलिक अधिकार हैं? उन मौलिक अधिकारों को किस प्रकार व्यवहार में प्रयुक्त किया जा सकता है? इस सबके सम्बन्ध में सोचने-विचारने और व्यवहार में प्रयुक्त करने की शक्ति शिक्षक जैसे बौद्धिक प्राणी में ही है।

(२) **राजनैतिक व सामाजिक सम्मान**—राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने पर जनता के बीच एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। चुनावों में विजय प्राप्त होने पर राजनैतिक व सामाजिक सम्मान प्राप्त होता है। राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति होती है, सुख-सुविधाएं उपभोग करने का अवसर प्राप्त होता है। ये सब मिलकर समाज में भी अग्रणी स्थान प्रदान करवाते हैं। कई सामाजिक संस्थाओं के संरक्षक, अध्यक्ष बनने का सुअवसर प्राप्त होता है और अपने विचारों के आधार पर कार्य करने का मौका मिलता है।

(३) **सुविधाओं की लालसा के कारण**—कई शिक्षक अपने सेवाकाल में अधिक से अधिक सुख सुविधाएँ प्राप्त करने हेतु राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय होते हैं। अपने साहब की हाँ में हाँ मिलाना, उनके आगे-पीछे करना, राजनीतिक नेताओं से मित्रता स्थापित करना व गठबंधन करना जिससे इस सबका प्रभाव प्रयुक्त करके छुट्टियों की सुविधा प्राप्त करना, अपने से जूनियर को 'सुपरसीड' कर उन्नति प्राप्त करना, आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त करना आदि।

(४) **स्वार्थपरता**—मनुष्य स्वभाव से ही स्वार्थी होता है। अन्तर सिर्फ इतना है कि कोई कम होता है और कोई अधिक। इस स्वार्थपरता के कारण भी शिक्षक राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय रहते हैं। किसी-न-किसी गुट के सदस्य होते हैं, किसी-न-किसी दल के समर्थन में होते हैं, कुर्सी के पक्ष या विपक्ष में सक्रिय होते हैं और इस प्रकार अपने स्वार्थों को सिद्ध करने का हर सम्भव प्रयास करते हैं।

(५) **शासन की नीतियाँ**—वर्तमान में आए-दिन प्रदेशों में शासन सम्बन्धी परिवर्तन देखने को मिले हैं, चाहे वे कांग्रेस के अपने ही शासन में हुए हों, या दूसरे दलों का शासन में अधिकार हुआ हो। इस आधार पर शासन की नीतियों में परिवर्तन होता रहता है और यह नीतियों में परिवर्तन शिक्षकों को और शिक्षा-क्षेत्र को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। परिवर्तन के नाम पर कभी शासन द्वारा शिक्षा-विभाग में होने वाली नियुक्तियों, पदोन्नतियों, अवकाश प्राप्त करने, सेवामुक्ति की अवधि के सम्बन्ध में नियमों में परिवर्तन होते रहते हैं जिससे शिक्षक वर्ग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम में परिवर्तन, पाठ्यपुस्तकों में परिवर्तन, परीक्षा-पद्धति में परिवर्तन आदि कार्यों से शिक्षक वर्ग प्रभावित होता है। जब इन परिवर्तनों से उसे किसी प्रकार की वैयक्तिक या सामूहिक असुविधा होती है तो वे संघों के माध्यम से अपनी असुविधाओं को शासन के समक्ष रखने का प्रयास करते हैं और इच्छुक परिवर्तन की आकांक्षा रखते हैं।

(६) **बढ़ती महँगाई**—आज के समय में समाज के हर वर्ग को बढ़ती हुई महँगाई का सामना करना पड़ रहा है। रुपये का बाजार-मूल्य घट गया है। अधिक रुपयों में कम वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं। आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती। शिक्षक एक अल्प वेतन कर्मचारी होता है, उसकी आय के अन्य स्रोत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं होते। फलस्वरूप सीमित आय में अपनी, स्वयं की, परिवार के सदस्यों की सभी आवश्यक जरूरतों को पूर्ण करने में असमर्थ रहता है। बाजार से उधार लेकर, कर्ज लेकर इन आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करता है। अधिक परेशानी की हालत में वह अपने संघों के माध्यम से बढ़ती हुई महँगाई के अनुरूप वित्तीय सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए शासन के समक्ष अपनी माँगें प्रस्तुत करता है, जिनकी पूर्ति न होने पर वह सामूहिक रूप से शासन के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन छेड़ता है, परीक्षा का बहिष्कार करता है, शाला कार्यक्रम में सहयोग न देकर शासन को सचेत करता है। इस प्रकार बढ़ती हुई महँगाई भी शिक्षक को राजनीति में सक्रिय होने, राजनीतिज्ञ बनाने में एक कारण सिद्ध हुई है।

(७) **आयोगों की अनुशंसाओं का क्रियान्वयन**—शासन द्वारा स्थापित आयोगों की अनुशंसाओं को क्रियान्वित कराने के लिए सभी शिक्षक-संघ अपने कार्यक्रमों के माध्यम से आगे आते रहते हैं। जैसे कोठारी आयोग द्वारा प्रस्तावित वेतनमानों को लागू करने व अन्य सेवा सम्बन्धी सुविधाओं को प्राप्त करने हेतु समय-समय पर विश्वविद्यालयीन शिक्षक संघों, महाविद्यालयीन शिक्षक संघों द्वारा किए गए आन्दोलन इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि उपर्युक्त वर्णित तथ्य शिक्षकों को राजनीति में रुचि लेने व सक्रिय करने के लिए उत्तरदायी हैं। शिक्षक अपने व्यक्तिगत स्वार्थों और संकुचित रुचियों के कारण सीमित और स्वार्थी राजनीति में फँसकर रह जाते हैं। शाला, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय के शिक्षकों का अधिकांश समय उनके अपने सीमित एवं संकुचित उद्देश्यों के सम्बन्ध में चर्चा करने व योजना बनाने में जाता है। बालकों के विकास पर शिक्षकों व शालाओं के प्रभाव का एक गम्भीर पक्ष है।

राजनीति को एक तरफ नहीं रखा जा सकता। शिक्षकों को इसमें रुचि लेनी चाहिए, परन्तु कक्षा में इसको प्रयुक्त करने से उन्हें अपने आपको रोकना व प्रतिबन्धित नहीं करना चाहिए। शिक्षक अपने मस्तिष्क में इस तथ्य को अधिक-से-अधिक स्पष्ट रखे कि उसका प्राथमिक कर्तव्य शिक्षण करना है और इसके साथ-साथ बालकों के विकास और सीखने में प्रेरणास्पद तत्व बनना है। उसके लिए 'राजनीति गौण रूप में होना चाहिए। दूसरा उसका राजनीति का क्षेत्र विस्तृत, आदर्शात्मक और अन्तरराष्ट्रीय मामलों तक सम्बन्धित रहे, न कि शालेय या विश्वविद्यालयीन व्यवसाय तक या कुर्सी की राजनीति तक शिक्षक राजनीतिज्ञ की सेवा को प्राप्त न करे। उसका राजनीति में दखल निःसन्देह स्वाभाविक है। उसे छात्रों के समक्ष स्वस्थ राजनीतिक चिन्तन और तुलनात्मक विचारधारा को प्रस्तुत करना चाहिए। शिक्षा का प्रजातन्त्र में यह भी कार्य है कि व्यक्तियों को ऐसी समझ व योग्यता दे कि वे 'प्रोपेगेण्डा' में न पड़ें और किसी भी विषय व प्रसंग पर स्वस्थ चिन्तन व तर्कपूर्ण निर्णय ले सकें। यदि नागरिकता की शिक्षा हेतु यह गुण आवश्यक है तो शिक्षकों का राजनैतिक पक्ष प्रशस्त होना चाहिए किन्तु रोक यही हो कि वे स्थानीय राजनीति में पड़, छात्रों के जीवन से न खेलें। छात्रों को अपने राजनैतिक हितों की सिद्धि में न घसीटें। ●

[पृष्ठ १२५ का शेषांश]

और दूसरी ओर खद्दरधारियों व उनके चमचों की जेबें भारी हो रही हैं और तोंदें बढ़ती जा रही हैं। क्योंकि 'ठोस परिवर्तन' और 'कड़े क़दम' तो दिल बहलाने या दम साधे हुए नज़ारा देखने की बात है। अगर परिवर्तन होना है, तो कौन-से मुहूर्त्त की प्रतीक्षा है; जब सारी-की-सारी युवापीढ़ी पतन के गर्त में चली जायगी, तब होगा यह परिवर्तन, या युवापीढ़ी को एक और क्रान्ति के लिए अपने आपको तैयार करना पड़ेगा।

इससे पहले कि जयप्रकाश नारायण कुछ और आगे आकर छात्रों का मार्गदर्शन करें, आज के राजनीतिज्ञों को, विशेषकर सत्तारूढ़ दल को, कोई प्रभावपूर्ण क़दम, समय रहते उठा लेना चाहिए, अन्यथा—'का बरसा, जब कृषी सुखाने'। ●

राजनीति वेश्या के समान अनेक प्रकार से व्यवहार में लायी जाती है। कहीं झूठी, कहीं सच, कहीं कठोर और प्रियभाषिणी होती है, कहीं हिंसक और दयालु होती है, कहीं कृपण और कहीं उदार होती है, कहीं अधिक द्रव्य व्यय करने वाली और कहीं बहुत संचय करने वाली होती है।

राजनीति कहती है, हाथ आये दुश्मन का छोड़ना और अपनी हार खरीदना एक ही चीज के दो नाम हैं।

—अज्ञात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ हिन्दी पुस्तकें

शोध-ग्रन्थ-आलोचना-संस्मरण

- हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव
  डा० भारत भूषण अग्रवाल 60.00
- भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य में लोक तत्व
  डा० विमलेश कान्ति वर्मा 60.00
- पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र कहानीकार : उपन्यासकार
  डा० मोहनलाल रत्नाकर 20.00
- नन्ददास और उनका भँवरगीत
  डा० स्नेहलता श्रीवास्तव 15.00
- उदात्त के विषय में डा० निर्मला जैन 20.00
- सावित्री सिन्हा : स्मृति लेख
  डा० दशरथ ओझा 20.00

कथा साहित्य

- मन्दिर-दीप ऋषभचरण जैन 15·00
- चम्पाकली ,, 7.50
- जनानी सवारियाँ ,, 7.50
- परीक्षा-गुरु श्रीनिवासदास 16.00
- कीर्तन तथा अन्य कहानियाँ
  राजेन्द्रराव 11.00
- अंधेरे के साथ इब्राहीम शरीफ 7.00

काव्य

- मुट्ठियों में बन्द आकार
  डा० सावित्री सिन्हा :
  डा० रामदरश मिश्र 25.00
- उमंग गोपालसिंह नेपाली 8.00
- शब्दयान डा० सुषमा प्रियदर्शिनी 10.00
- पंखहीन गुणानन्द थपलियाल 4.00

आगामी प्रकाशन

- प्रेमचन्द युग का हिन्दी उपन्यास
  डा० मोहनलाल रत्नाकर
- हिन्दी भाषा का वर्णनात्मक परिचय
  डा० कैलाशचन्द्र भाटिया
- पाश्चात्य काव्य शास्त्र के कीर्तिमान
  सं० डा० सुषमा प्रियदर्शिनी
- महाकवि दिनकर और उनकी उर्वशी
  सं० डा० निर्मला जैन
- मुक्तिबोध का काव्य सुरेश ऋतुपर्ण
- दान तथा अन्य कहानियां
  ऋषभचरण जैन

विशेष प्रचारित पुस्तकें

- हिन्दी क्रियाओं का अर्थपरक अध्ययन
  डा० कृष्णगोपाल रस्तोगी 40.00
- काव्यांग दर्पण
  डा० विजय बहादुर अवस्थी 40.00
- रंग दर्शन नेमीचन्द्र जैन 30.00
- तिरुवल्लुवर एवं कबीर का तुलनात्मक अध्ययन
  डा. रवीन्द्रकुमार सेठ 30.00
- अनाम स्वामी जैनेन्द्र कुमार 16.00
- जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ ,, 10.00
- प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प-विधान डा० कमल किशोर गोयनका 50.00
- भक्तिकाव्य में प्रकृति चित्रण
  डा० सुखदेव 45.00
- नागार्जुन : जीवन और साहित्य
  डा० प्रकाशचन्द्र भट्ट 35.00
- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास
  डा. ज्ञानचन्द गुप्त 36.00

देश भर में प्रकाशित अन्य हिन्दी पुस्तको के लिए भी

ऋषभचरण जैन एवं सन्तति

21 दरियागंज, दिल्ली–110006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षक की शैक्षिक स्वतन्त्रता

श्री जमनालाल बायती
सुराणा हाउस—कुचीलपुरा, बीकानेर (राज०)

शिक्षक को कक्षाध्यापन के समय कक्षागृह में कितनी स्वतन्त्रता है ? यह प्रश्न कई बार पूछा जाता है। मान लीजिए, भूगोल विषय के कालांश में ताँबा खनिज का पाठ पढ़ाया जा रहा है। अध्यापन के समय बच्चे के मन में खेतड़ी ताँबा परियोजना के बारे में कई जिज्ञासाएँ उठीं। बच्चे के द्वारा प्रश्न पूछने पर शिक्षक को इस सम्बन्ध में उत्तर देना चाहिए या नहीं और यदि हाँ, तो किस सीमा तक ?

खेतड़ी ताँबा परियोजना में कितने व्यक्ति किस-किस योग्यता वाले, किस प्रकार के अनुभव वाले रोजगार प्राप्त कर सकते हैं ? रिक्त स्थानों के लिए इस आशय की विज्ञप्तियाँ समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। यदि शिक्षक के पास ऐसी सूचनाएँ तत्काल उपयोग के लिए हैं तो उनका उपयोग किया ही जाना चाहिए। पर यदि कोई बच्चा यह पूछ बैठे कि इस परियोजना में रोजगार प्राप्त कर लूँ तो जीवन में आगे चलकर रोजगार के क्षेत्र में संतोष व सफलता मिलेगी या नहीं ? ऐसी स्थिति में शिक्षक क्या करे ? उत्तर दे या न दे। उसकी स्थिति बड़ी असमंजस पूर्ण हो जाती है। स्पष्ट है कि इस स्थिति का हर शिक्षक सामना करने को तत्पर नहीं होता है। शिक्षक बच्चों की मनोवृत्ति का अध्ययन करता है, निर्देशन की तकनीक जानता है एवं इस क्षेत्र में उच्च प्रशिक्षण प्राप्त है, बाल-मनोविज्ञान का ज्ञाता है, साधनों तथा अन्य विधियों से बच्चों की अभिरुचि परीक्षण कर सकता है, रोजगार में सफलता के लिए आवश्यक बुद्धि का स्तर निश्चित कर सकता है, बच्चों को सलाह-मशविरा देते-देते दक्ष हो गया है तो वह प्राप्त ज्ञान व तकनीक का उपयोग कर बच्चों की उस क्षेत्र में सफलता का अनुमान लगा सकता है। बच्चों को सलाह-मशविरा के द्वारा शिक्षक सफलता की सम्भावना ही बता सकता है, शत-प्रतिशत रूप से सफलता या असफलता की भविष्यवाणी नहीं करेगा। पर आज स्थिति यह है कि हर शिक्षक न तो रुचि या अभिरुचि परीक्षण दे सकता है, न बुद्धि-लब्धि ज्ञात कर सकता है तथा न ही वह निर्देशन तकनीक में विशेषज्ञ होता है। ऐसी स्थिति में उसे चुप रहना चाहिए। यदि शिक्षक किसी भी धन्धे के लिए आवश्यक बुद्धि स्तर का पता नहीं लगा सकता, बच्चे की माली हालत नहीं जानता, प्रवेश के लिए न्यूनतम शैक्षिक योग्यता का ज्ञान नहीं है, व्यक्तित्व के लक्षणों का सही अनुमान नहीं लगा सकता, किसी विशिष्ट तकनीक की बाजार में माँग व पूर्ति का ज्ञान नहीं है तो उसे तटस्थ ही रहना चाहिए। जितनी सूचनाएँ उसके पास हों, वह वस्तुनिष्ठ रूप से बिना घटाए-बढ़ाए बच्चों को दे दे तथा शेष के लिए उसे विशेषज्ञ के पास भेज देना ही श्रेयस्कर होगा। अपनी विशेषज्ञता के क्षेत्र से बाहर न तो शिक्षक को बोलना चाहिए तथा न ही शैक्षिक स्वतन्त्रता का सहारा लेकर उसे ऐसा करने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

इस उदाहरण से जरा दूर हटकर सोचें। कुछ उदाहरण ऐसे हो सकते हैं जिनका शिक्षण निरापद नहीं है। विषय का प्रस्तुतीकरण, सम्भव है, शिक्षक एकांगी रूप में कर दें जो शैक्षिक दृष्टि से वांछनीय न हो, ऐसा करने से बालकों को लाभ के स्थान पर हानि होने की सम्भावना रहती है। ऐसे चर्चित विषय पर शिक्षक द्वारा ऐसे विचार कक्षा में व्यक्त कर देना जो समाज को स्वीकार्य नहीं है या स्वय शिक्षक के कार्य तथा व्यवहार में अन्तर है या उन विचारों को बच्चे पसन्द नहीं करते हैं या शिक्षक की उन विचारों के प्रति आस्था नहीं है तो ऐसे विचार विद्यार्थियों की हानि कर सकते हैं। यह प्रजातान्त्रिक तरीका नहीं है कि बच्चों को चिन्तन, तर्क करने, अनुमान लगाने या तथ्यों के प्रस्तुतीकरण करने, निर्णय लेने से रोक दिया जाय। यदि शिक्षा का उद्देश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अन्य कई उद्देश्यों के साथ) बच्चों में चिन्तन शक्ति का विकास करना है तो बच्चों के सामने विवादास्पद पहलू भी प्रस्तुत करने ही होंगे। इसके लिए सबसे अच्छा तरीका यह है कि शिक्षक पहलू के पक्ष-विपक्ष के सभी बिन्दुओं को वस्तुगत रूप से विद्यार्थियों के सामने रख दें, स्वयं कोई पक्ष न लें, अपना कोई निर्णय न दें तथा विद्यार्थियों को स्वयं निर्णय लेने दें, निर्णय लेने में उनकी मदद करें।

शिक्षक विद्यार्थियों से योग्यता, उम्र, अनुभव तथा ज्ञान में श्रेष्ठ होने से कक्षा में विद्यार्थियों द्वारा नेता माना जाता है तथा उसका स्थान कक्षा में अधिकारी के रूप में रहता है पर शिक्षक को हर समय यह बात दिमाग में नहीं रखनी चाहिए। ऐसी स्थिति में वह अपना कहना मानने के लिए कक्षा में विद्यार्थियों से कहे या न कहे, विद्यार्थी तो उसका कहना मानेंगे ही, उसकी वाणी को देववाणी मानेंगे। परम्परा से ही शिक्षक कक्षा में ऐसे स्थान पर रहता आया है कि उसका कहना विद्यार्थी स्वतः ही मानते हैं, जिसके फलस्वरूप शिक्षक तथा शिक्षार्थी के प्रभावी तथा मधुर सम्बन्धों का विकास होता है। कुछ शिक्षाविदों के अनुसार शिक्षक नेतृत्व करे, निर्णय ले तथा छात्र शिक्षकों की आज्ञा का पालन करें। इसीलिए Dr. Karl Menninger के अनुसार शिक्षण व्यवसाय में प्रवेश करने वाले नवयुवक भाग्यशाली हैं क्योंकि वे मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वस्थ हैं तथा चिकित्सालयों में चिकित्सा के लिए बहुत कम आते हैं। पर कुछ अन्य विचारकों का ऐसा भी कहना है कि शिक्षक सदैव अपरिपक्व मस्तिष्क की संगति में रहते हैं, वे बालकों के बीच रहते हैं। अतः कोई निर्णय लेने की स्थिति में नहीं रहते, या उनके द्वारा लिया गया निर्णय कोई वजन नहीं रखता, उनका निश्चय या निर्णय सूझ-बूझपूर्ण या न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता, इसलिए उनकी आवाज को महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए। चूँकि बच्चे सोच-विचार व व्यवहार में अपरिपक्व होने से शिक्षक के मार्गदर्शन में कक्षा-व्यवहार व कार्य करते हैं अतः कैसा पाठ्यक्रम हो, इसके लिए वे शिक्षक पर निर्भर रहना शुरू कर देंगे। शिक्षक कक्षा में बच्चों को उतना अधिक पढ़ाने के लिए स्वतन्त्र होना चाहिए, जितना बच्चे पढ़ने के लिए तत्पर हों। इसी भाँति शिक्षक को अध्यापन की तथा विद्यार्थियों को सीखने के लिए उपयुक्त स्वच्छन्दतापूर्ण मुक्त वातावरण के चयन की स्वतन्त्रता होनी चाहिए जिससे वे विद्यालय में उपयुक्त गति से प्रगति करते रहें।

सोचने-विचारने की प्रक्रिया में सुधार हो, यह बहुत सीमा तक अध्ययन-विधि पर निर्भर करता है। शिक्षक व्याख्यान विधि से पढ़ाते हैं या स्रोत विधि से। व्याख्यान विधि की अपेक्षा स्रोत विधि में बच्चों की पहल करने की प्रवृत्ति का लाभ उठाया जा सकता है, उनको सोचने की प्रक्रिया में इस विधि के माध्यम से स्वनिर्भर बनाया जा सकता है, जबकि व्याख्यान विधि से बच्चे शिक्षक पर निर्भर रहना सीख सकते हैं। पर साथ ही शिक्षकों को पूर्वाग्रहों या अन्धानुकरण के द्वारा शिक्षण से भी बचना चाहिए, क्योंकि कक्षाध्यापन में इसकी पूरी-पूरी सम्भावना रहती है। विद्यार्थी बजाय अपनी बुद्धि से स्वतन्त्रतापूर्वक सोचे, दूसरों की बुद्धि पर आश्रित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में होना यह चाहिए कि विद्यार्थी का निर्णय शिक्षक के निर्णय से सम्पूरित किया जाय। बालक को ज्ञात कारणों, आधारों एवं तथ्यों के प्रकाश में निर्णय लेने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। शिक्षण-संस्थाओं से बाहर आने वाले विद्यार्थी किसी एक राजनैतिक दल के अनुयायी न बनें और न हो सरकार को किसी एक मत या विचारधारा पर दृढ़ रहकर प्रचार-प्रसार करना चाहिए बल्कि राजनीति की जगह अकादमिक आधारों पर आग्रह करना चाहिए, जिससे पढ़े-लिखों पर पृथक्कीकरण की छाया न पड़े। ऐसी स्वतन्त्रता से बच्चों को जो जन्म से अनन्य विलक्षण क्षमताएँ मिली हैं, उनको अधिकतम विकसित होने का अवसर मिलता है। इस प्रकार शिक्षक बच्चों की वैयक्तिक स्वतन्त्रता का रक्षक है। एक शिक्षित नवयुवक स्पष्ट चिन्तन की ओर अग्रसर तथा नये विचारों को खुले मस्तिष्क से स्वीकार करने को तत्पर रहना चाहिए। समझ-बूझ का विकास, उदार दृष्टिकोण, स्वतन्त्रता के मौलिक मूल्य का विकास करने के लिए शिक्षकों को विद्यार्थियों की मदद करनी चाहिए। स्वतन्त्र समाज में सही व उपयुक्त आलोचना के प्रति झुकाव या लगाव का विकास करना चाहिए।

प्रभावी शिक्षण विधि का फल चिन्तन में सुधार की योग्यता का विकास करना है। अध्यापन में कक्षा का आकार भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, कम विद्यार्थियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कक्षा में सभी विद्यार्थियों को बोलने तथा अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के अधिक अवसर मिलते हैं। ऐसी कक्षाओं में विद्यार्थियों को अधिक सीखने, अधिगम कार्य व्यापार में भाग लेने की सम्भावना रहती है। इससे कक्षा में विद्यार्थी के कार्य बढ़ते हैं तो उनकी चिन्तन शक्ति को अग्रसर करने में सहायक होते हैं। हाँ, बड़ी कक्षाओं अर्थात् अधिक छात्रों वाली कक्षाओं में ऐसा नहीं हो पाता। चरित्र तथा नैतिक आचरण चिन्तन तथा आदत की उपज है। व्यवहारों के प्रतिफल के रूप में अधिक सामंजस्य है।

निजी शिक्षा-संस्थाओं में कार्यरत शिक्षक शिक्षा के सुधार के लिए अधिक योगदान कर सकते हैं, वे सहमति या असहमति के लिए स्वतन्त्र हैं। यदि मानविकी संकाय में पढ़ा-लिखा शिक्षक अपने सम्पूर्ण साधनों का प्रयोग करके भौतिकी अधिक दक्षता से पढ़ा सकता है, विज्ञान विषय के छात्रों को अधिक लाभ पहुँचा सकता है तो उसे ऐसा करने की तत्काल स्वीकृति मिल सकती है जबकि राजकीय विद्यालयों में ऐसा नहीं किया जा सकता, ऐसे शिक्षकों का विद्यालय के लिए यह बहुत बड़ा योगदान है। दक्ष कर्मचारियों को समान प्रकार का कार्य करने वाले पदों पर रोकने के दृष्टिकोण से निजी संस्थान अच्छे हैं, वे अपने कर्मचारियों की विशिष्ट सेवा का मूल्य समझते हैं। ऐसा करने से विद्यालय की अर्थ-व्यवस्था पर भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। शिक्षा के गुणात्मक सुधार के लिए शिक्षक की शैक्षिक स्वतन्त्रता बहुत ही अर्थपूर्ण है। इस भाँति वैयक्तिक योग्यता पर आधारित यह सुरक्षा तथा स्वतन्त्रता अच्छी शिक्षा का बीमा है।

चिन्तन में स्वतन्त्रता प्रजातान्त्रिक पद्धति का जनक है। शिक्षा पर सरकार के नियन्त्रण के दुष्परिणामों की अभी कल्पना नहीं की गई है। राज्य शिक्षा को प्रचार तथा अन्धानुकरण का साधन बना सकता है तथा नागरिक सीमित क्षेत्र में ही सोच-विचार कर सकते हैं। ऐसी शिक्षा-व्यवस्था जिसमें शिक्षक को सोचने-विचारने की स्वतन्त्रता है, प्रयोग करने, शिक्षण की नई तकनीक काम में लेने को स्वतन्त्र है, शोध करके निष्कर्षों को प्रकाशित करने, सत्य को परख कर पढ़ाने को पूर्ण स्वतन्त्र है, जो अपने गुणों के अनुसार पहल करने को स्वतन्त्र है, ऐसा ही शिक्षक स्वतन्त्र एवं आलोचनात्मक चिन्तन को अग्रसर करता है।

अध्यापन के दौरान उस वक्त और भी कठिनाई उपस्थित होती है जब शिक्षक उस विवादास्पद पहलू के प्रति उदासीन हो या भिन्न हो। शिक्षक के व्यक्तित्व को उसके शिक्षण से पृथक् नहीं किया जा सकता। शिक्षक उसके प्रति कितनी ही उदासीनता शिक्षण के समय दिखाए, पर व्यवहार में, संभव है, ऐसा न लगे। शिक्षक अपना व्यक्तित्व अपने शब्दों से छिपा नहीं सकता। शिक्षक चाहे मुँह से न बोले, पर उसका शान्त व्यवहार उससे भी ज्यादा प्रभावी होता है। कई बातों में से शिक्षक का व्यक्तित्व भी महत्त्वपूर्ण है जो बालक की विचारधारा, उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। बालक के व्यक्तित्व का विकास उपयुक्त राह पर होता हुआ देखकर शिक्षकों को प्रसन्नता होती है। इस भाँति यह कहना कि बिना अपना निर्णय दिए पहलू की सत्यासत्य स्थिति बच्चों के सामने रखना उपयुक्त है, अधिक वजनदार तर्क नहीं है।

यदि शिक्षक अपने विचारों को छिपाता है तो विद्यार्थी उसे पाखण्डी समझेंगे क्योंकि वे जिस बात पर विश्वास करते हैं, उसे न पढ़ाकर दूसरी बात पढ़ाते हैं या वे जिस बात पर आग्रह करते हैं, वह उनके व्यवहार में नहीं है या उसके अनुसार वे स्वयं व्यवहार नहीं करते हैं। यदि ऐसा होता है तो शिक्षक बच्चों तथा स्वयं में अविश्वास का विकास करता है। वास्तविकता यह है कि शिक्षक का बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ेगा तथा प्रभाव भी कहने की अपेक्षा करनी का अधिक स्थायी होगा। साथ ही वह उस पहलू पर अधिकारी-विद्वान् के विचार भी बच्चों के सामने प्रस्तुत कर सकता है। भय से शिक्षक पर कहने-सुनने की पाबन्दी नहीं लगाई जानी चाहिए। महत्त्वपूर्ण तो यह है कि बच्चों को सीखने की स्वतन्त्रता हो। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि जो भी तथ्य या सूचना या विचार प्रस्तुत किया जाय वह स्पष्ट हो, सही हो, संगत तथा संक्षिप्त हो। शिक्षक विवादास्पद मामलों के सभी पक्षों को निष्पक्ष ढंग के प्रस्तुत करे तथा इस बात की सतर्कता बरते कि स्वयं शिक्षक या शाला कोई एक पक्ष ग्रहण न करे। ऐसा होने पर भी एक भय तो बना ही रहेगा कि पक्ष तथा विपक्ष दोनों समान रूप से वस्तुगत प्रस्तुत किये गये हैं तो बालक कोई निर्णय ही न कर सकेगा क्योंकि उसे हर तर्क सन्तुलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीत हो रहा है। यदि ऐसा हुआ तो उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधा पहुँचेगी या व्यक्तित्व का वांछित विकास न हो सकेगा।

कई बार एक ही शिक्षक का दो कक्षाओं में शिक्षण भिन्न-भिन्न रूप में लिया जा सकता है, क्योंकि सम्भव है, एक कक्षा के बालक दूसरे से भिन्न सम्प्रदाय के हों। इसी भाँति दो शिक्षकों का अध्यापन भी भिन्न-भिन्न रूपों में लिया जा सकता है। ऐसी स्थिति जब भी पैदा हो, तत्काल विचार-विमर्श कर स्पष्टीकरण कर लिया जाना चाहिए। ऐसा न करने पर दोनों शिक्षकों में अविश्वास पनप सकता है जो हानिकारक है। इससे भी अधिक बुरा यह होगा कि विद्यार्थी अपने ऐसे शिक्षकों का विश्वास खो देंगे, सम्मान गँवा बैठेंगे।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यदि विवादास्पद विषयों का शिक्षण बिना पूर्व योजना के छोड़ दिया गया तो शिक्षण के समय अवश्य ही शिक्षक अपने निजी विचारों से प्रभावित होंगे। विवादास्पद विषयों का निर्णय एकाध दिन या सप्ताह में नहीं होता—इस प्रकार के निर्णयों में दीर्घ अवधि की जरूरत पड़ती है—ऐसे विषयों की प्रारम्भिक जानकारी विद्यार्थियों को दी जाए जिससे वे उस विषय की प्रकृति से परिचित हो सकें तथा स्थिति का उपयुक्त ज्ञान प्राप्त कर सकें। सामाजिक शक्तियों तथा विचारधाराओं के निष्कर्षों पर आधारित ऐसे विवादास्पद पहलुओं की जानकारी यदि विद्यार्थियों को दी जाए तो बच्चों को समाज की गतिविधियों, रीति-रिवाजों की जानकारी होगी तथा उनको उत्तरदायी नागरिक बनाने के लिए शिक्षक को प्रशिक्षण देने में मदद मिलेगी। उत्तरदायित्व न होने से तो शिक्षकों में भी अप्रसन्नता का विकास होता है। एक सही शिक्षक ही वह है जो अपने विद्यार्थियों में समाज-सम्मत मूल्य एवं सामाजिक व्यवहारों का विकास करता है। विद्यार्थियों को परखने, आलोचना एवं प्रत्यालोचना के ढंग से सोचने-विचारने को अग्रसर करता है जिससे वे साहसपूर्ण कार्यों को करने के लिए आगे बढ़ें।

शोध पर आधारित तथा उपयुक्त तथ्यों के प्रकाश में तर्कसंगत निर्णय लिये जाने चाहिए। तर्कपूर्ण, उपयुक्त व सन्तुलित निर्णय लेने में विद्यार्थियों की मदद के क्षेत्र में या इस कार्य के लिए उनको प्रशिक्षण देने के सम्बन्ध में शिक्षकों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। भावी समाज के लिए शिक्षकों को आवश्यक साधन सम्पन्न बनाने के लिए शिक्षक शिक्षा की संस्थाओं की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण है, इसी महत्त्व को ध्यान में रखते हुए उन्हें अपना शिक्षक कार्यक्रम पुनर्नियोजित करना चाहिए।

विश्वास—

स्वतन्त्रता की नींव विश्वास पर जमी हुई है। यदि शिक्षक का शिक्षण में स्वतन्त्रता पर विश्वास है तो वह घोर संकटों का सामना भी करेगा। यदि उसे अपनी परिवर्तित शिक्षण तकनीक में विश्वास है तो कितनी ही कठिनाइयाँ आने पर भी उनके अनुसार ही शिक्षण करेगा। ऐसे दृढ़ निश्चय वाले शिक्षक स्वेच्छा एवं गर्व के साथ अपने मार्ग पर चलते रहेंगे। किस प्रकार वह अपने प्रयत्नों में सफल होता है, यह बहुत कुछ शिक्षक के व्यक्तित्व पर निर्भर करेगा।

शिक्षण की स्वतन्त्रता से जुड़ा दूसरा घटक उत्तरदायित्व–

शिक्षण की स्वतन्त्रता में विश्वास के साथ ही जिम्मेदारी भी जुड़ी हुई है। शिक्षक यदि उत्तरदायित्व का भार वहन कर सके तभी उसे स्वतन्त्रता का आनंद मनाने की सोचना चाहिए। जो स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते हैं, उसे अपने व्यवसाय का भी पूरा ज्ञान होना चाहिए। यदि शिक्षक को शिक्षण तकनीक का अद्यतन ज्ञान नहीं है, पाठ्यक्रम-रचना की नवीन दिशाओं का ज्ञान नहीं है तो वह कक्षा-शिक्षण के समय न्याय नहीं कर पाएगा। अतः स्वतन्त्रता का उपयोग करने के लिए व्यवसाय सम्बन्धी ताजा जानकारी की पूर्व आवश्यकता है।

कई शिक्षकों को व्यवसाय का ज्ञान तो है पर कार्य करने की इच्छा नहीं है। स्वतन्त्रता में इच्छा पूर्व कल्पना है। उदासीनता तथा स्वतन्त्रता साथ-साथ नहीं चल सकतीं। किसी विद्यालय में प्रयोग करने से पहले उस विषय का गहन एवं विस्तृत ज्ञान ही काफी नहीं है पर साथ ही साथ शिक्षक, प्रधानाध्यापक, अभिभावक को भी सन्तुष्ट कर सकने का गाढ़ा विश्वास होना चाहिए। ऐसे कार्यों में बड़े साहस की जरूरत है। तनिक-सी कठिनाई के समय सभी विरोधी उठ खड़े होंगे तथा साथी शिक्षक का मनोबल गिराने की कोशिश करेंगे।

शैक्षिक स्वतन्त्रता पर सभी शिक्षाविद् मतैक्य नहीं हैं। कुछ विचारक शैक्षिक स्वतन्त्रता की मात्रा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीखने वाले की परिपक्वता से जोड़ना चाहते हैं। स्पष्ट है कि महाविद्यालय या विश्वविद्यालय का स्नातक अधिक शैक्षिक स्वतन्त्रता का उपयोग करेगा जबकि प्राक् विश्वविद्यालय का छात्र उससे कम तथा विद्यालयी बालक उससे भी और कम।

नागरिक स्वाधीनता तथा शैक्षिक स्वतन्त्रता—

यह नहीं भुलाया जाना चाहिए कि शिक्षक, शिक्षक होने के साथ-साथ नागरिक भी है। शिक्षकों को उसी प्रकार स्वतन्त्र रहने का अधिकार है जिस प्रकार अन्य नागरिकों को। जिस प्रकार अन्य नागरिक धर्म, पूजा-पाठ, विश्वास, वेशभूषा, नाच-गान, खान-पान के सम्बन्ध में स्वतन्त्र हैं, ठीक उसी प्रकार शिक्षक भी स्वतन्त्र रहना चाहते हैं। जब तक शिक्षक अपने समाज के लोकाचारों, आशाओं और आदर्शों का पालन करता रहेगा, तब तक उसके सामने कोई कठिनाई नहीं होगी। पर ज्योंही वह इन सामाजिक मर्यादाओं से दूर हटा नहीं कि उस पर आपत्तियाँ आ सकती हैं।

यहाँ नागरिक स्वाधीनता तथा शैक्षिक स्वतन्त्रता को सही अर्थों में लिया जाना चाहिए तथा इसी भावना से इनका अन्तर भी समझ लिया जाना चाहिए। नागरिक स्वाधीनता के दृष्टिकोण से यदि शिक्षक कोई ऐसा कार्य जो समाज के रीति-रिवाजों के अनुकूल नहीं है, कर लेते हैं तो समाज उनसे अपने पद से त्यागपत्र की माँग कर सकता है। यदि ऐसा हो तो शिक्षक शैक्षिक स्वतन्त्रता का नागरिकों द्वारा अतिक्रमण बताते हैं। यदि कोई व्यवसाय प्रबन्ध में स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण प्रधानाचार्य विद्यार्थियों को परीक्षा में सफलता के सूत्र पर व्याख्यान देता है तो वह आचार्य के रूप में अनुभव-सिद्ध उपयोगी बातें बताता है जिनका उसने आजीवन अध्ययन किया है तथा इस विषय पर सामान्य व्यक्ति नहीं बोल सकता है। इस स्थिति में वह अपनी नागरिक स्वाधीनता की (न कि शैक्षिक स्वतन्त्रता की) आशा कर सकता है। पर यदि प्रधानाचार्य अपने विशिष्टता के क्षेत्र से बाहर भी अधिकारपूर्वक बोलता है तो भी न उन्हें दण्डित किया जा सकता है तथा न ही पद मुक्त। समाज का कर्त्तव्य है कि वह प्रधानाचार्य के छोटे-मोटे दायित्वों को स्वयं वहन कर ले जिससे वह अपना कार्य समाज हित में और अच्छी प्रकार कर सके।

न्यायपालिका की स्वतन्त्रता लोकतांत्रिक स्वतन्त्रता की आधारशिला है। पर राज्य द्वारा प्रबन्धित शिक्षा के खतरों को आज तक नहीं सोचा गया है। राज्य शिक्षा का प्रचार एवं अन्धानुकरण के रूप में प्रयोग कर सकती है तथा नागरिकों को तकलीफ में डाल सकती है। ऐसी शिक्षा-व्यवस्था जहाँ शिक्षक की स्वतन्त्रता है, शिक्षा में स्वतन्त्रता जन्मदायिनी है तथा उसी के परिणामस्वरूप मूल विचार अग्रसर होते हैं। प्रथम स्थान पर स्वतन्त्रता को प्रभावी रूप से प्रयोग करने के योग्य बनाती है। शैक्षिक स्वतन्त्रता प्रतिकूल वातावरण में फल-फूल भी नहीं सकती। सही अर्थों में शैक्षिक स्वतन्त्रता को सुदृढ़ एवं समृद्ध बनाने के लिए अध्ययन में रुचिशील, निर्भय तथा समर्पित शिक्षक व विद्यार्थी वर्ग का सहयोग अपेक्षित है। शैक्षिक स्वतन्त्रता के क्षेत्र में प्रशासकों की ओर से फिर भी एक भय बना ही रहेगा। प्रशासक जब तक मुख्यतः सरकारी विद्यालयों में हस्तक्षेप की नीति के समर्थक रहेंगे तब तक शैक्षिक स्वतन्त्रता आकाश-कुसुम ही बनी रहेगी। कल्पना कीजिए—किसी विशेष विद्यालय में कार्यानुभव पर कोई कार्य नहीं हुआ तो विद्यालय प्रधान को विद्यालय निरीक्षक की ओर से चेतावनी मिल जाएगी. दूसरी बार ऐसा न करने के लिए स्पष्टीकरण माँगा जाएगा। तीसरी बार स्पष्ट लिख दिया जायगा कि ऐसा न होने पर सम्बन्धित अधिकारी को अपराधियों की सूची में अंकित कर दिया जाएगा।

ऊपर दिये विवेचन से विशुद्ध विशिष्ट ज्ञान रहित जनसाधारण तथा शिक्षाविद् विचारकों के दो सम्प्रदाय स्पष्ट होते हैं। प्रथम सम्प्रदाय के अनुसार विद्यालय को परम्परा से चली आई शिक्षा-व्यवस्था का पालन करना चाहिए, शिक्षकों को उस स्थिति का बिना प्रतिवाद किये अन्धानुकरण करना चाहिए तथा उन्हें अपनी स्वतन्त्रता का मर्यादित उपयोग भी परम्परा के अनुसार ही करना चाहिए। शिक्षक का कार्य ऊपर से निर्धारित नीतियों का पालन, प्रचार व प्रसार करना मात्र हो जाता है। ऐसी स्थिति में प्रेरणा तथा आलोचनात्मक चिन्तन के विकास का प्रश्न स्वतः ही समाप्त हो जाता है। इसी भाँति विचारकों के दूसरे सम्प्रदाय के अनुसार विद्यालय को सामाजिक प्रगति का अग्रदूत बनाना चाहिए, उसको समाज की गतिहीन स्थिति की आलोचना करनी चाहिए। शिक्षक को अपने शिक्षण में आलो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चनात्मक भावना ग्रहण करने में अधिक स्वतन्त्र होना चाहिए। विद्यालय सामाजिक प्रगति का आलोचनात्मक अध्ययन करे, उनके अनुसार विद्यालय अग्रदर्शी होना चाहिए, विद्यालय को परम्परागत व्यवस्था से ऊपर उठकर सोचना चाहिए तथा नये प्रयोग करने के लिए स्वतन्त्रता होनी चाहिए एवं इस स्वतन्त्रता का क्षेत्र भी विस्तृत होना चाहिए। कुछ विचारकों का कहना है कि शिक्षकों को परम्परा से हटकर बातें कहने में शैक्षिक स्वतन्त्रता की सुरक्षा होनी चाहिए। पर दूसरे सम्प्रदाय के विचारक कहते हैं कि जनसाधारण से अधिक सुरक्षा नहीं होनी चाहिए क्योंकि जैसा ऊपर कहा गया है, शिक्षक-शिक्षक होने से पहले नागरिक है तथा वह नागरिक स्वाधीनता का भी उपयोग करता है।

भारत में वर्तमान स्थिति—

आज स्वतन्त्र भारत में शैक्षिक स्वतन्त्रता का अर्थ लिया जाता है कि प्रजातांत्रिक विधियों से शिक्षक को अध्यापन की, शोध छात्र को अनुसन्धान की, वैज्ञानिक को प्रयोग करने की, शिक्षार्थी को सीखने की स्वतन्त्रता है। इन सबकी स्वतन्त्रता समाजवादी समाज में प्रजातंत्र की स्वतन्त्रता से भिन्न है। प्रजातन्त्र में स्वतंत्रता थोड़ी मर्यादित हो जाती है। प्रजातन्त्र में व्यक्ति-व्यक्ति के विचारों में भिन्नता हो सकती है, विचारों में भिन्नता होते हुए भी जीवन के लिए उसके योगदान की भी प्रशंसा की जानी चाहिए, उसके व्यक्तित्व का आदर किया जाना चाहिए तभी सम्मान के साथ उनका जीवनक्रम चलता रह सकता है।

पाठ्यक्रम—

आज स्थिति यह है कि शीर्षस्थ व्यक्ति द्वारा मनोनीत या चयनित व्यक्ति पाठ्यक्रम तैयार करते हैं तथा यह आशा की जाती है कि अन्य शिक्षक उसका अनुगमन करेंगे। क्या इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि केवल कुछ ही शिक्षकों को सोचने-विचारने की आवश्यकता है? यदि ऐसा ही है तो शैक्षिक स्वतन्त्रता कहाँ है? समाज में बेकारी बढ़ी तो पाठ्यक्रम बदलो। शिक्षा के पाठ्यक्रम में उद्योग या कार्यानुभव जोड़ो। इसी भाँति समाज में अनैतिकता, भ्रष्टाचार या धोखाधड़ी बढ़ी तो पाठ्यक्रम बदलो, पाठ्यक्रम को इस प्रकार समृद्ध करो, उसमें नैतिक शिक्षा जोड़ो, जिससे बालकों में, आने वाली पीढ़ी में नैतिकता का विकास हो। सामान्य शिक्षकों से कुछ भी नहीं पूछा जाता तथा अधिकारी ही सब निर्णय ले लेते हैं। यदि पाठ्यक्रम की रचना आवश्यक ही हो तो शिक्षकों के मार्गदर्शन के लिए सुझाव के रूप में कुछ आधारभूत बिन्दु दे देने चाहिए तथा पाठ्यक्रम की रचना स्वयं शिक्षक पर छोड़ देनी चाहिए। ऐसा पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं को अधिक अच्छी तरह से पूरी कर सकेगा, क्योंकि वह अनुभव की हुई आवश्यकताओं पर आधारित होगा। इस प्रकार की कोई स्वतन्त्रता शिक्षकों को आज तक नहीं दी गई।

अध्यापन-विधि—

आज के वातावरण में शिक्षक को विधियों पर प्रयोग करने, विधियों में परिवर्तन, संशोधन, परिवर्द्धन करने की भी व्यवहारतः कई कारणों से स्वतन्त्रता नहीं है, उसे केवल परम्परा से चली आई विधियों के अनुसार ही पढ़ाना है, दूसरे शब्दों में शिक्षण-विधियों में गत्यात्मकता नहीं है। बच्चों से प्रश्न पूछे ही नहीं जाते। यदि पूछे जाते हैं तथा विद्यार्थी विस्मयकारी उत्तर देते हैं तो वे शिक्षक के कोप-भाजन बन जाते हैं। घूम-फिर कर उसके उत्तरों को स्वीकार कर बालकों में सृजनात्मकता का विकास किया जा सकता है। शिक्षकों को स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि आवश्यकता के समय शिक्षण-विधि में परिवर्तन कर शिक्षण को अधिक प्रभावी बना सके जिससे विद्यार्थी अधिकाधिक लाभान्वित हो सके। मूल्यांकन के लिए भी यही कहा जा सकता है।

पाठ्यपुस्तकें—

इस क्षेत्र में भी शिक्षकों का कोई स्थान नहीं है। पाठ्यपुस्तकें शिक्षा-निदेशक तय करता है। लगभग सभी राज्यों में पाठ्यपुस्तकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है, ऐसी स्थिति में राष्ट्रीयकरण के सभी दोष यहाँ भी घर कर गये हैं। इस व्यवस्था में किस प्रकार पुस्तकों का स्तर गिरा है, किसी से छिपा नहीं है। इस सम्बन्ध में भी राज्य विषय की एक से अधिक पुस्तकें प्रकाशित करवाकर शिक्षकों को चयन का अवसर दे सकती है। शिक्षकों को इतनी स्वतंत्रता तो होनी ही चाहिए कि वे अपने बच्चों के लिए उपयुक्त पुस्तकों का चयन कर सके। इसमें डर यह है कि शिक्षक या प्रकाशन भ्रष्ट हो जाएँगे। पर यह तो व्यवस्था का दोष है, न कि स्वयं सिद्धान्त का।

[शेष पृष्ठ १४८ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आज का अध्यापक पलायनवादी हो रहा है ?

श्री कामता कमलेश
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, जे० एस० कॉलिज, अमरोहा (उ० प्र०)

जुलाई में कालेज खुलते ही गत वर्ष के तीखे और मीठे अनुभवों पर अनुशासन के कड़े नियम बनते हैं जिन्हें तोड़ने पर कठोर दंड-विधान भी बनाया जाता है। क्योंकि छात्रों की अनुशासनहीनता शिक्षा-जगत् की एक ऐसी गम्भीर समस्या है जिसके निराकरण के उपाय खोजते-खोजते शिक्षाशास्त्रियों के मस्तिष्क विकृत हुए-से प्रतीत होते हैं। छात्रों की अनुशासनहीनता अधिकतर जुलाई से फ़र्वरी तक सरकारी अधिकारियों के मध्य आँख-मिचौली खेलती रहती हैं। किन्तु मार्च-अप्रैल में तो वह एकमात्र केन्द्रित होकर अध्यापक वर्ग पर छा जाती है। फलतः परीक्षा-भवन में छुरे, चाकू, बन्दूकें आदि की भरमार होकर निरीक्षकों (इनविजिलेटर्स) को आतंकित करके उन्हें कर्तव्य-पालन करने से मना किया जाता है। जो निरीक्षक इससे तनिक भी भयभीत नहीं होते और अपने कर्तव्यों को प्राणों से अधिक महत्त्व देते हैं, उन्हें छात्रों द्वारा मारा-पीटा जाना, घायल कर दिया जाना, यहाँ तक कि जान से भी मार डालने की नौबत आ जाती है। इन विषम परिस्थितियों में अध्यापक क्या करें ? बेचारा यदि 'ड्यूटी' के समय नकल करते हुए छात्र को न पकड़े तो अनैतिकता को तो प्रश्रय मिलेगा ही, किन्तु साथ ही यदि विश्वविद्यालय के अधिकारियों की दृष्टि उस पर पड़ गई तो वह दो-तीन साल के लिये परीक्षा कार्य से वंचित (डिबार) किया जा सकता है जिससे उसे आर्थिक हानि तो होगी ही, किन्तु समाज के सामने लज्जित भी होना पड़ेगा और साथ ही 'इनएफीसियन्सी' का 'चार्ज' भी लग सकता है। इस धर्म-संकट में बेचारा प्राध्यापक क्या करे ? उसके सामने क्या विकल्प है ? परीक्षा का बहिष्कार, अर्थ को चाहते हुए ठुकराव या कायरता अथवा अन्त में असम्मान का जीवन या मृत्यु। वह किसे अपनाये ? कहाँ जाये ?

मैं स्वयं जिस कालेज में प्राध्यापक हूँ, उसमें विगत दो-तीन साल पूर्व आगरा विश्वविद्यालय की एम० ए० की परीक्षा में प्रथम दिन ही ऐसी सामूहिक नकल हुई जिसे देख अधिकांश निरीक्षकों एवं अधिकारियों ने अपने-अपने जुए रख दिये। तुरन्त ही प्राचार्य ने पुलिस-अधिकारियों से फोन मिलाया और अपने हरकारे को आगरा भेजा। फलतः दूसरे ही दिन विश्वविद्यालय से कुछ अनुभवी तथा 'तथाकथित' साहसी निरीक्षक आये और यही नहीं, जिलाधीश, एस० पी०, डी-वाई० एस० पी तथा पुलिस के जवानों से विद्यालय-प्रांगण भर गया। छात्रों की तलाशियाँ शुरू हुईं। परीक्षार्थियों के पास से किताबों के साथ छुरे और चाकू भी मिले। भला बताइये कि ऐसी विकट स्थिति में जब अध्यापक वर्ग की सुरक्षा का प्रश्न सामने हो और उस समय अधिकारीगण छात्रों की विशाल क्रान्ति के समक्ष असमर्थ हों, प्रबन्ध-समिति के सदस्यों को अपनी दुकान से फुरसत नहीं तब असहाय अध्यापक क्या करें ? उसका रास्ता किधर है ? जबकि उसके समक्ष दिग्भ्रान्ति, घुटन, संत्रास, जीने का द्वन्द्व, संघर्ष सभी एक साथ मुँहबाये खड़े हों।

आज छात्रों का असन्तोष उभर कर विद्रोह के रास्ते पर है। भारत ही क्या समस्त विश्व के छात्र इसी परिवेश में साँस ले रहे हैं। चाहे अमरीका हो या जापान, चाहे इण्डोनेशिया हो या बर्मा, फ्रांस, इंग्लैंड, चेकोस्लोवाकिया या जर्मनी या पाक। हर जगह छात्र तिलमिलाकर उठ खड़े हुये हैं। उनके विद्रोह के नारे, झण्डे और सन्दर्भ भले ही भिन्न-भिन्न हों लेकिन उनकी मनःस्थिति समान ही हैं। पाकिस्तान में अय्यूब शासन का परिवर्तन हो जाना, छात्रों की ही विक्षुब्ध दशा का प्रमाण है और भारत में पिछले आम चुनाव में एक महान नेता को दक्षिण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में एक साधारण से छात्र से करारी मात खा जाना; गुजरात विधानसभा का भंग होना, क्या इस बात का द्योतक नहीं है ? इतने पर भी लोग आज के छात्रों को दुर्विनीत, पराङ्मुख, कृत्रिम, जड़, दिशाहीन आदि न जाने क्या-क्या कह देते हैं। यह एक ऐसा भाववाचक अनुभव समर्थित वायवीनाम, जिसमें एक ही साथ कई बोध जुड़ जाते हैं। साथ ही तर्कातीत, विनयशीलता, विवशता, प्रश्नरहित आज्ञाकारिता, आत्म-प्रतिष्ठा शून्य अनुशासनप्रियता, निजत्वहीन अनुमोदनप्रियता तथा सर्वथा आरोपित मर्यादावाद की 'बदबू' पर 'सेन्ट' की फुहारें पड़ती हैं।

इससे बड़ा हमारे देश का क्या दुर्भाग्य हो सकता है कि उस शिक्षक के साथ जिसे 'राष्ट्र-निर्माता' की संज्ञा दी जाती है, जिस पर देश के कर्णधार निर्माण करने का महान् दायित्व हो, जिसकी दी हुई शिक्षा और जिसके बताये हुये सन्मार्ग एवं आशीर्वाद से महापुरुषों का जन्म होता है, उसके साथ छात्रों के कातिलाना हमले आये-दिन होते रहें एवं 'अँगूठा टेप' पट-व्यवसायी रोब पेलें। जो अध्यापक छात्रों के जीवन को उज्ज्वल एवं सुखद बनाने के सपनों को साकार करता है। उसकी महान् मान-प्रतिष्ठा को धूल में मिला देना और कभी-कभी उसकी जीवन-लीला को समाप्त कर डालना, कितनी बड़ी कृतघ्नता है, कितना महान्..........जघन्य अपराध। काश....... !

आज अध्यापक जब घर से कालेज जाता है तो शाम को घर लौटने पर पत्नी (यदि है तो) आरती उतारती है, माँ बलैया लेती है। परीक्षा के दिनों में तो पत्नी एवं बच्चे भी 'इनविजिलेशन-ड्यूटी' से पलायन करने को प्रेरित करते हैं। वे भगवान के लिए 'परसाद' बोलते हैं। देवी-देवताओं की मनौतियाँ करते हैं; जैसे कि वह किसी लाम पर जा रहा है। लेखक स्वयं इसका भुक्त-भोगी है। जब पिछले कुछ साल पूर्व हमारे कालेज की खुली नकल से उत्पन्न गम्भीर परिस्थितियों में कालेज का 'परीक्षा-केन्द्र' उपकुलपति द्वारा तुरन्त ही तोड़ दिया गया तब तुरन्त ही छात्रों को अदालत की शरण लेनी पड़ी। किन्तु वहाँ भी छात्रों की हार होने पर उन्हें विवश होकर परीक्षा देने के लिये अमरोहा से रामपुर जाना पड़ा। तब मुझे भी विभागीय कार्य एवं 'इनविजिलेशन' के सम्बन्ध में रामपुर जाना पड़ा। जाते समय पत्नी ने हाथ जोड़ कर कहा—"आप वहाँ मत जाइये। मुझे ऐसे पैसे नहीं चाहिए।" तब मैंने कहा—"देवी जी ! पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं, नौकरी करना है तो सब कुछ करना पड़ेगा। चाहे जान जाये या रहे।" और जब मैंने जाने के लिये बिल्कुल निश्चय कर ही लिया तब उन्होंने रूखे गले से निर्देश दिया—"आप जा तो रहे हैं, ईश्वर आपकी मदद करे, पर आप किसी छात्र से कुछ मत कहना। जैसा सब लोग वहाँ करें वैसा आप भी करना।" मैंने मौन रहकर इसका उत्तर एवं आश्वासन दिया। फिर भी ड्यूटी देते समय अत्याचार को अधिक न देखा गया और परीक्षा के अन्तिम चरणों में एक परीक्षार्थी की चपेट में आना ही पड़ा। उसका केस अधिकारियों को 'फारवर्ड' करते ही तत्काल मेरे सामने छुरे, चाकू तथा कत्ल का खूनी दौर नृत्य करने लगा। चेतावनी..........धमकी....... के मध्य जीवन और मृत्यु के बीच सहसा आँख-मिचौनी होने लगी, पर ईश्वर की कृपा से अभी तक तो कुछ नहीं हुआ। आगे राम मालिक।

इन भीषण परिस्थितियों में भारत का 'गुरु-समाज' क्या करे ? भला कबीर जैसे अक्खड़ ने ऐसा किस आधार पर कहा—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय ।।

गुरु-ऋण मनुष्य के तीन ऋणों में से एक बताया जाता है, उसके उद्धार के बिना मुक्ति नहीं। देवता के समान पदवी रखने वाला गुरु आज न जाने कैसे 'गुरु घंटाल' की नवीन परिभाषा से परिभाषित किया जा रहा है। फलतः गुरु ऐसे पवित्र शब्द का अर्थ भी बदल कर चालबाज, पैंतरेबाज, अखाड़ेबाज, दग़ाबाज आदि—ऐसे घृणित पर्याय हो रहे हैं। चौराहों पर काफी हाऊस में, होटलों में, पार्कों में, सड़कों पर, गली, मुहल्ले आदि सर्वत्र—'बड़े गुरु हैं आप', 'कहो गुरु, क्या हाल है ?' ऐसी बेतुकी फबतियों का सामना करना पड़ता है। शायद उसी कारण अब कुलीन एवं सीधे-साधे लोग इस पेशे में आना भी पसन्द नहीं करते। तभी सोचना पड़ता है कि तुलसी जैसे महान् कवि किस आधार पर यह कह गये—

गुरु बिनु भव निधि तरै न कोई।
जो विरंचि शंकर सम होई ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे दिन भी क्या थे कि जब लोग अपने नाम के आगे 'अध्यापक' शब्द लगाना गौरव समझते थे। 'अध्यापक पूर्णसिंह' इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं पर आज ……………काश !……………वे होते ! वे भी क्या दिन थे जब स्वाधीन चिन्तन का एक वातावरण विश्व-विद्यालय में पर्याप्त मात्रा में पाया जाता था। महामना मदनमोहन मालवीय जैसे कुलपति; डा० अमरनाथ झा, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डा० धीरेन्द्र वर्मा जैसे उपकुलपति; आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्याम सुन्दर दास, पं० देवी प्रसाद शुक्ल, जैसे विद्वान् अध्यापक एक नहीं अनेक थे. जिन्होंने छात्रों के चरित्रों को विशिष्ट मोड़ दिया। वे सोचते थे कि सच्चा छात्र वही है जो गुरु के चारों ओर छत्र के समान लगा रहे जिसकी छाया में गुरु की महत्ता जाज्वल्यमान रहे और जिस पर बाहरी संकट न आ सकें। सदैव अध्यापक समाज ने अपनी कुर्बानी से शिष्यों की रक्षा की पर आज—'गुरु गुरु ही रह गया, चेला शक्कर हो गया' की उक्ति चरितार्थ होती जा रही है।

पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमकर रात-दिन बनाती रही। समय ने करवट ली। युग बदला। मानव बदला। छात्र बदला। गुरु बदला और अंत में शासन भी बदला। हम स्वतन्त्र हुये। गुलामी की जंजीरें गांधी जी की साँसों से गल गईं। सत्ता अपने हाथों में आई। लोग मस्ती से झूमकर नाचने लगे। फलतः विश्वविद्यालय, कालेज, गुरुकुल के चिन्तन-स्थल की शान्तमयी आभा में भी झंकारें सुनाई पड़ने लगीं। उनका स्वाभिमान भरा अस्तित्व शनैः-शनैः स्खलित होने लगा। शिक्षा के अनुदानों पर 'तथाकथित' शिक्षा-प्रेमी, दानशील, समाज-सेवियों की शनि-दृष्टि पड़ने लगी। सन्देह एवं शंका का जन्म हुआ। फिर इन 'राहु-केतु' ने मिलकर सूर्य और चन्द्र रूपी ज्ञान-प्रकाश देने वाले शिक्षालय एवं गुरु को प्रतिवर्ष ग्रसना प्रारम्भ कर दिया। फलतः अध्यापकों, बुद्धिजीवियों और विद्वानों के स्थान पर झोंपड़ी से लेकर महल तक, गाँव से लेकर शहर तक में राजनीति के कुटिल खेल खेलने वाले, शिक्षा एवं संस्कारों से रहित, जड़ एवं कुंठित बुद्धि वाले मिट्टी में बुत ऐसे नेता और उनके अटैची, नुमाइंदे, धीरे-धीरे सीनेट, ऐकेडेमिक काउन्सिल, एक्जीक्यूटिव काउन्सिल, गवर्निंग बॉडी, सेलेक्शन बोर्ड, मैनेजिंग कमेटी की गद्देदार कुर्सियों पर बैठे दिखायी पड़ने लगे, तदर्थ विद्वानों की जगह चाटुकारों का सम्मान बढ़ा। कर्त्तव्य-पूजा के स्थान पर 'नवनीतवाद' का दीप जलने लगा। सरस्वती के स्थान पर लक्ष्मी और उनके वाहन की पूजा होने लगी।

एक समय वह भी था जब कि उत्तर प्रदेश के एक विश्व-प्रसिद्ध एवं पुराने विश्वविद्यालय में जहाँ का विद्यार्थी स्वयं लेखक भी रह चुका है। 'नोट्स', 'कुंजी' आदि लिखने वाले को नियुक्ति नहीं मिलती थी किन्तु कालान्तर में नवनीतवाद के आधार पर एक ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति हुई जो कि 'नोट्स' के बल पर तृतीय श्रेणी के छात्रों में काफी लोकप्रिय थे। अब तो अधिकांश विश्वविद्यालयों तथा कालेजों में ऐसे 'होनहार लेखक' सहज ही मिल जाते हैं। इसी सन्दर्भ में 'नोट्स' लिखने वाले एक प्राध्यापक मित्र से मेरी बातचीत हुई और मैंने जब उनसे घटिया किस्म की कुंजी लिखने का कारण पूछा तो उन्होंने अपेक्षित भावमुद्रा में बताया कि क्या करूँ ? जब कालेज से चार-चार, पाँच-पाँच महीने तक वेतन नहीं मिलता तो क्या खाऊँ और बीबी-बच्चों को क्या खिलाऊँ ? यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि ऐसे 'नोट्स' आठ आने से डेढ़ रु० प्रति पृष्ठ तक के पारिश्रमिक पर ही लिखे जाते हैं, और मैंने पूछा, "इससे तो अच्छा है कि आप अच्छी स्तरीय पुस्तकें लिखें जिससे यश और धन दोनों मिलें।" तब उन्होंने तपाक से कहा—"कमलेश जी ! यह आपका भ्रम है। आज का प्रकाशक चाहता है कि पुस्तक बाजार में आये नहीं कि उसकी ऐसी धुआंधार बिक्री हो कि थोड़े ही समय में उसकी तिजोरी भर जाय।" और विद्यार्थी भी कुंजी, नोट्स, गाइड इत्यादि इस प्रकार की पुस्तकें पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं। मेरा दीर्घ-कालीन अनुभव है कि छात्र सदैव अध्यापक से अच्छी गाइड, नोट्स, कुंजी के नाम जानकर परीक्षा के दिनों में 'हनुमान-चालीसा' सा उसे रटकर परीक्षा-वैतरिणी को पार करना चाहता है। जब समाज में ऐसी पुस्तकों की माँग है और अध्यापक अर्थ-पीड़ित है तब आज का अध्यापक पुनीत मार्ग से पलायन न करे तो और क्या करें ? उदर-पूर्ति की भयंकर समस्या को येन-केन-प्रकारेण उसे भी सुलझाना है।

इसी सामाजिक कुंठा के कारण आज के अध्यापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ग का सामाजिक जीवन ही नहीं है। कुंठा, भय, संत्रास, असुरक्षा, आत्मग्लानि तथा आक्रोश की भावना से ग्रस्त आज का अध्यापक कचहरियों, पाठ्य-पुस्तकों के स्थान पर स्थानीय अवसरवादी नेताओं, समाज-सेवियों के अभिनन्दन-ग्रन्थों के सम्पादन में व्यस्त, जाति एवं क्षेत्रीयता की संकीर्णता में अपनी जीवित कब्र खोदने में तल्लीन, स्वाधीन चिन्तन-मनन के स्थान पर कुंजी, बाजारू नोट्स, गाइड एवं प्रश्नोत्तरी लिखने में संलग्न, कर्त्तव्य-सेवा के स्थान पर कालेज अधिकारियों के बेटे-बेटियों की शादी का सेहरा लिखकर मुफ्त में भाट, चारण तथा वैतालिक की सम्मानित पदवी से विभूषित हो रहा है।

आखिर यह सब क्यों ? क्या उसके मस्तिष्क में···· जिजीविषा का द्वन्द्व उसे खाये जा रहा है। इसलिये अपनी जीविका के स्थायित्व हेतु आज के अध्यापकों को अभिनन्दन-पत्रों का लिखना बहुत ही आवश्यक हो गया है। मेरे एक मित्र एक स्थल पर डिग्री कालेज में इन्टरव्यू देने गये तो उनसे सबसे पहले प्रश्न किया गया कि आप अच्छा-सा अभिनन्दन-पत्र भी लिख सकते हैं। तब उन्होंने कहा—'वीर को वीर कहने में मुझे कोई आपत्ति नहीं पर कायर को वीर कहना, कुरूप को सुन्दर कहना मेरे वश के बाहर है।' इस अप्रत्याशित उत्तर से तथाकथित चयन-समिति के योग्य सदस्य नाक-भौं सिकोड़ने लगे। फलतः उनका चुनाव प्रथम श्रेणी का होते हुए भी न हो सका।

आज का प्राध्यापक दिग्भ्रमित है। चुनाव समिति में लोग नियत विषय को तो छोड़ देते हैं और प्रश्न इस प्रकार करते हैं जिसका सम्बन्ध न तो पाठ्य-पुस्तक से होता है और न विद्यालय या छात्र से। लेखक को स्वयं एक बार इन्टरव्यू देते समय चयन-समिति के एक सदस्य ने एक दवा का नाम पूछा। कुछ देर तक तो मैं उस प्रश्न को सोचता रहा, किन्तु थोड़ी देर में मैंने तीर-तुक्का लगाकर कहा—"साहित्य में तो इस नाम का कोई तत्त्व ही नहीं है। पर जहाँ तक मैं समझता हूँ कि यह किसी औषधि का नाम है जिसका कि यदा-कदा मैं प्रयोग भी करता हूँ।" मेरे इतना उत्तर देते ही वे इतने प्रसन्न हुए कि मेरी नियुक्ति की संस्तुति कर बैठे। कितनी बड़ी विडम्बना है। गया था हिन्दी के प्राध्यापक का इन्टरव्यू देने और प्रश्न हुआ 'मेडिकल रिप्रेजेन्टेटिव' का। यही क्या, इसे तो कुछ अंशों तक परिहास की सीमा में लाया जा सकता है। पर जहाँ कालेज शिक्षा के ठेकेदार, महान् दानशील, भले ही वह पैसा ब्लैक से लाया हो, डी० फिल०, डी० लिट्० को न समझकर उसे 'पी-एच०डी०' नहीं मानते और अयोग्य करार कर एम० ए० को बड़ा मानते हैं; इसका स्पष्ट कारण है कि आज अधिकांशतया कालेज की प्रबन्ध-समितियों में दायित्वहीन, अनुभवहीन, निरक्षर भट्टाचार्य, उलूकवाहिनी के पुजारी, लम्बी तोंद वाले सेठ, साहूकार, सफेदपोश खद्दरधारी तथाकथित नेता अपनी बपौती बनाये बैठे हैं। जिन्हें शिक्षा के महत्त्व का तो ज्ञान है, किन्तु उसकी दासता स्वीकार करना उन्हें बिलकुल पसन्द नहीं। इसलिये आज का अध्यापक उनका मुफ्त का जय-जयकार करने वाला, माला पहनाने वाला तथा विद्यालय भवन उनके बेटी-बेटों की बारात ठहराने एवं जनवासे का निरापद स्थान है। यह ही 'तथाकथित विद्वान् मंडली' जब अध्यापक कक्षा में गोप-गोपी, कृष्ण-राधा का प्रेम वर्णन तथा पद्मिनी का नख-शिख वर्णन पढ़ाता है तो प्रबन्ध-समिति के दावेदार सम्मानित सदस्य उस अध्यापक से घर बुलाकर प्रश्न करते हैं—"आप लड़के-लड़कियों को प्रेम की बातें पढ़ाते हैं ? आप उनसे 'स्टाफ रूम' में बातें करते हैं ? आपके घर पर लड़कियाँ क्यों आती हैं ?" भला इन लक्ष्मी-वाहनों के पुजारियों को कैसे समझाया जाय कि कृष्ण और राधा का प्रेम आज के गली-कूँचों का वासनात्मक प्रेम नहीं है। पद्मिनी के कुचों का वर्णन अश्लीलता के लिये नहीं वरन् उसमें परम सत्ता की अलौकिक सुन्दरता का वर्णन है। फिर अध्यापक अपने छात्र-छात्राओं से बात नहीं करेगा तो क्या वह किसी ताँगे वाले, खोमचे वाले, रिक्शे वाले, फेरी वाले से बात करेगा ? ठीक ऐसे ही छात्र-छात्राएँ अपने गुरुजन से शंका-समाधान नहीं करेंगे तो क्या चौराहों पर खड़े हुये मजनुओं से करेंगे अथवा इन प्रबन्ध-समितियों के निरक्षर भट्टाचार्यों या उनके एजेन्टों से बात करें जो आये-दिन अपनी लुब्ध-दृष्टि के लिये कालेज में सदैव मँडराया करते हैं। आज की इन्हीं विषम परिस्थितियों में कालेज का अध्यापक वर्ग इतना जकड़ा है कि उसे अपनी रोटी-रोजी बचाने के लिये सत्यासत्य का कुछ भी एहसास नहीं। बेवशी, भय, अंकुश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अराजकता के भ्रमजाल में—"ज्यों-ज्यों भज्यो चहत सुरफ त्यों-त्यों उरजत जात" से चरितार्थ होती है।

आज का छात्र प्राध्यापकों से आकर तपाक से कहता है कि मैं आपके कालेज के प्रबन्ध-समिति के फलाँ सदस्य का फलाँ रिश्तेदार हूँ, पुत्र हूँ, पुत्री हूँ, भाई हूँ, बहिन हूँ, नाती, धेवता, धेवती न जानें क्या-क्या वह हैं। कृपया "अटेन्डेन्स" का ध्यान रखियेगा। मैं कालेज कभी-कभी ही आ पाऊँगा। इन्हीं थोड़े से 'धमकी भरे वाक्यों' में अध्यापक की नौकरी की सुरक्षा निहित है और दूसरी तरफ उसकी समदर्शी कर्तव्य-परायणता। वे जब कभी ईद की चाँद की तरह क्लास में आये तो आप धूप-दीप से आरती उतारें तथा किताब-नोट्स के फूल अर्पित कीजिये। हो सके तो कभी-कभी उनके घर जाकर स्वामिभक्ति का अर्घ्य भी दें आयें तो सोने में सुहागा हो जाय। क्लास में या कालेज में आप इन्हें टोकिये नहीं। चाहें वह शरारत करें, चाहें चिल्लायें, चाहे क्लास में पीछे के दरवाजे से निकल जाये अथवा परीक्षा में नकल करें। परीक्षा में तो आप, हो सके तो, संकेतों अथवा यथासुविधा उन्हें कुछ बता दीजिये। यदि यह न हो सके तो अपने पैसे से अटैची उठा 'परीक्षक' से नम्बर बढ़वा ही दें तो कहना ही क्या! अगर आप यह सब नहीं कर सकते तो निश्चय ही आप पर 'इनएफीसियन्सी' का चार्ज लगाकर 'डिस्चार्ज' किया जा सकता है। और कहीं आप 'प्रोवेशन' पर हैं तो आप का 'प्रोबेशन पीरियड' तो बढ़ा ही दिया जायेगा। साथ ही वार्षिक बढ़ोत्तरी ही हड़प ली जायेगी। अध्यापक जीवन की इन बानगियों में कितना दमघोंट कोहरा छाया है जिसका सहज अनुमान लगाना कठिन है।

बेचारा अध्यापक-समाज जो कि चार-चार महीने में एकाध महीने का वेतन 'एहसानी कृपा' से पा जाता है, आज ट्यूशन, गैस पेपर, गाइड, नोट्स, कुंजी-लेखन तथा दरबारी भाषा बोलने में व्यस्त न रहें तो क्या करें? और यही नहीं, कभी-कभी तो पूरे वेतन के स्थान पर आधा वेतन या कम वेतन देना तो साधारण-सी बात है तथा विश्वविद्यालय द्वारा निश्चित पीरियड्स अधिक पढ़वाने का तो प्रबन्ध-समिति अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझती है। क्योंकि उसे इसका अतिरिक्त भत्ता नहीं देना पड़ता तथा एक अध्यापक की नियुक्ति से बचना भी संभव हो जाता है। स्वयं लेखक जब अपनी एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर विश्वविद्यालय में प्रथम आया तो नौकरी की तलाश में कई जगह इधर-उधर प्रार्थनापत्र भेजना प्रारम्भ कर दिया तभी उसे परेशान देख एक सहानुभूति रखने वाले शिक्षा-प्रेमी ने कहा—"तुम फलाँ स्थान पर एक डिग्री कालेज में मेरा यह पत्र लेकर चले जाओ। वहाँ तुम्हें नौकरी मिल जायेगी। किन्तु वहाँ तुम्हें ३०० रुपये मिलेंगे। पर हस्ताक्षर ४१० रु० पर करना पड़ेगा।" यह सुनते ही मैंने कहा—"श्रीमन्! आपके इस परामर्श एवं कष्ट के लिये बहुत-बहुत धन्यवाद। पर चाहे मैं भूखा मर जाऊँ पर अपने पसीने की कमाई से दूसरों को मौज़ नहीं करने दूँगा। इस काला-बाजारी से तो अच्छा है २ रु० की मूँगफली बेचना।" यह सुन उनके मन में क्या उथल-पुथल हुई, इसे तो ठीक से नहीं कहा जा सकता पर मैंने देखा कि यह तो बहुत अच्छा नुस्खा था क्योंकि किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर कम वेतन देने और लेने के लिये जमकर सौदेबाजी होती है। जहाँ विद्वसमाज की यह दशा हो, अध्यापक की विवशता का इस तरह मोल किया जा रहा हो, वहाँ उसका भविष्य क्या होगा? कभी किसी ने सोचा? या उसके उपकार का कोई मार्ग भी है? या यह अध्यापक-वर्ग दूसरों को रोटी कमाने के लायक बनाकर स्वयं को भूखों रखकर अत्याचार का यह बोझ गधे की भाँति ढोता रहे? यही प्रश्न आज मन को सदैव उद्वेलित करता रहता है। साथ ही ये घटनाएँ भी स्वतः स्मरण हो जाती हैं कि आज इसी कारण विद्यादान ऐसे पुनीत कार्य को छोड़कर कुछ लोकप्रिय अध्यापक कोई अन्य पेशा अपना रहे हैं। कुछ प्रकाशक, कुछ मैनेजर, कुछ नेता, मंत्री और कुछ व्यापारी बन गये हैं। क्या अध्यापक वर्ग की यह 'पलायन वृत्ति' सरस्वती के पावन मन्दिर को दिन-प्रतिदिन अन्दर ही अन्दर खोखला नहीं कर देगी? या उसकी साख को न गिरा देगी जिससे कि लोग इस पेशे में कभी भूलकर भी न आयें! आज इसी का घना कोहरा सारे समाज को शनैः-शनैः आच्छादित करता जा रहा है। अतः इसके विच्छेदन के लिये प्रखर सूर्य-रश्मियों की प्रतीक्षा है जबकि वह सुप्रभात हो जिसमें सभी नर-नारी, पशु-पक्षी स्वस्थ साँस लेकर शुक-संवाद सुन सकें। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लायब्रेरियों एवं छात्रों के लिए श्रेष्ठ प्रकाशन

शोध-प्रबन्ध

प्रेमचन्द और हरिनारायण आप्टे डॉ० प्रमिला २५.००
हिन्दी में शब्दालंकार विवेचन डॉ० भाटी २०.००
राहुल सांकृत्यायन का कथा-साहित्य : डॉ० प्रभाशंकर २५.००
हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास डॉ० सिन्हा ३०.००
आधुनिक काव्य में वात्सल्य रस डॉ० श्रीनिवास १२.५०
बंगला पर हिन्दी का प्रभाव डॉ० ब्रह्मानन्द १५.००
जायसी की बिम्ब-योजना सुधा सक्सेना २५.००
प्रेमचन्द के साहित्य सिद्धान्त नरेन्द्र कोहली २५.००
प्रयोगवाद और अज्ञेय प्रो० शैल सिन्हा १५.००
कामायनी की भाषा प्रो० रमेशचन्द्र गुप्त ७.५०

काव्यशास्त्रीय

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त : डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त १४.००
पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र २०.००
पाश्चात्य साहित्यशास्त्र डॉ० जे० पी० शर्मा २०.००
भारतीय साहित्यशास्त्र प्रो० राजेश शर्मा १२.००
भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त कृष्णदेव झारी १२.००
समीक्षाशास्त्र के भारतीय मानदण्ड त्रिपाठी १५.००
समीक्षाशास्त्र के भारतीय एवं पाश्चात्य मानदण्ड ३०.००
भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र : डॉ० देशराज सिंह भाटी ८.००
भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन : चौधरी एवं गुप्त २०.००
पाश्चात्य काव्य-समीक्षा ब्रजभूषण शर्मा ४.००
भारतीय काव्य-समीक्षा डॉ० श्रीनिवास ४.००
भाषा विज्ञान डॉ० देवदत्त कौशिक १२.००

साहित्यिक

अज्ञेय की काव्य-चेतना डॉ० कृष्ण भावुक २५.००
हिन्दी उपन्यास : महाकाव्य के स्वर : डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त १०.००
हिन्दी काव्य के आलोक-स्तम्भ ,, १०.००
लोक साहित्य डॉ० कृष्णदेव शर्मा ५.००
आधुनिक कथा साहित्य मान और मूल्य प्रो. राजेश शर्मा ८.००
भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच डॉ० त्रिपाठी १२.००
हिन्दी साहित्य : प्रकीर्ण विचार : डॉ० शान्तिस्वरूप ८.००
प्रसाद के नाटक एवं नाट्यशिल्प ,, ६.००
कल्पना तत्व ,, १०.००
उपन्यासकार प्रेमचन्द डॉ० सुरेशचन्द १२.५०
बिहारी-मीमांसा डॉ० रामसागर त्रिपाठी १०.००
हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : डॉ० शिवकुमार शर्मा १२.००
युगकवि निराला डॉ० कृष्णदेव झारी १०.००
संस्कृत साहित्य का इतिहास श्याम मिश्र ५.००
गोदान पुनर्मूल्यांकन डॉ० राजपाल शर्मा १०.००

निबन्ध

बृहत् साहित्यिक निबन्ध त्रिपाठी एवं गुप्त २०.००
साहित्यिक निबन्ध डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त १२.००
संस्कृत निबन्ध रत्नाकर डॉ० शिवप्रसाद शास्त्री १२.००
संस्कृत निबंध रत्नावली डॉ० रामचन्द्र ५.००
अशोक निबन्ध सागर प्रो० विजयकुमार ७.००

सटीक काव्य

सूर का कूट काव्य डॉ० देशराज सिंह भाटी १५.००
बिहारी सतसई भाष्य डॉ० देशराज सिंह भाटी १५.००
कबीर ग्रन्थावली प्रो० पुष्पपाल सिंह १५.००
जायसी ग्रन्थावली डॉ० श्रीनिवास शर्मा १५.००
केशव और उनकी रामचन्द्रिका प्रो० भाटी ८.००
मीराबाई पदावली प्रो० देशराज सिंह ६.००
विद्यापति पदावली प्रो० कृष्णदेव शर्मा ६.००
रसखान ग्रन्थावली प्रो० देशराज सिंह ६.००
बिहारी सतसई प्रो० विराज, एम० ए० ४.००
घनानन्द कवित्त प्रो० लक्ष्मणदत्त गौतम ४.००

टीकाएँ

साकेत की टीका प्रो० ब्रजभूषण शर्मा ७.००
कामायनी की टीका देशराजसिंह भाटी ६.००
दिनकर और उनकी उर्वशी ,, ७.५०
पन्त और उनका रश्मिबन्ध ,, ५.००
पंत और उनका तारापथ ,, ६.००
निराला और उनकी अपरा ,, ५.००

अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति : शिक्षा : अध्यापक

प्रो० रवीन्द्र अग्निहोत्री
वनस्थली विद्यापीठ, जयपुर

शिक्षा औपचारिक हो या अनौपचारिक, व्यक्ति का संस्कार करने का एकमात्र साधन है। इसी कारण धर्म और राजनीति—दोनों ही शिक्षा को अपने नियंत्रण में रखने की कोशिश करते रहे हैं ताकि वे व्यक्ति का अपने ढंग से संस्कार कर सकें। धर्म और राजनीति के सम्प्रत्यय को भी इतना व्यापक बनाने की कोशिश की गई है कि मानव जीवन के लगभग सभी व्यापार उनमें समाविष्ट हो गए हैं। जिस प्रकार केवल पूजा-पाठ धर्म नहीं है उसी प्रकार केवल चुनाव, वोट, संसद, राजनैतिक दल आदि ही राजनीति नहीं हैं। जिसे हम साधारणतया सामाजिक और नैतिक सिद्धांत कहते हैं, पाश्चात्य देशों में उसका भी अध्ययन राजनीति के अन्तर्गत किया जाता है। वर्तमान भारत का जो पाश्चात्यीकरण हुआ है और आधुनिक युग में उसका प्रभाव जिस प्रकार से गहराता चला गया है, उसे देखकर यह लगने लगा है कि जिस प्रकार अतीत में हमारे जीवन की समस्त क्रियाएँ धर्म के अधीन थीं, उसी प्रकार अब वे राजनीति के अधीन हैं। स्वीडी अर्थशास्त्री **गुन्नार मिरडल** ने अपनी नयी पुस्तक 'अगेन्स्ट द स्ट्रीम' में लिखा है कि अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों का अध्ययन राजनैतिक सम्बन्धों पर इतना अधिक निर्भर हो चुका है कि अब वह कहने भर को ही आर्थिक अध्ययन है। मिरडल की चिन्ता के मूल में इस युग में राजनैतिक सत्ता को प्राप्त हुई व्यापकता ही है। सम्भवत: इसी व्यापकता को ध्यान में रखकर स्विस दार्शनिक **कार्ल यास्पर्स** ने टिप्पणी की थी कि मनुष्य का कोई कार्य ऐसा नहीं है जो राजनैतिक अर्थवत्ता से नितान्त शून्य हो।

तथापि निष्पक्ष विद्वान् सर्वदा यह स्वीकार करते रहे हैं कि शिक्षा का कार्य बालकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण एवं सन्तुलित विकास करना है। यह किसी वाद-विशेष के संस्कारों को पल्लवित किए बिना किया जाए। यह उनकी अनुभव ग्रहण क्षमता और उनके आत्मविश्वास को पुष्ट करे। **तैत्तिरीयोपनिषद्** (प्रपा० ७, अनु० ११) में वैदिक ऋषि शिष्य को उपदेश देते हुए कहता है—

'यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।'

जो हमारे सुचरित्र हों अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हों, उन्हें ही ग्रहण करना; इससे भिन्न यदि पापाचरण हों तो उन्हें ग्रहण मत करना। आचार्य अपने व्यक्तित्व को शिष्य पर आरोपित नहीं करता, उसे स्वविवेक के प्रयोग करने की छूट देता है। 'स्वस्य च प्रियमात्मनः' (मनुस्मृति, २/१२)—जो अपनी आत्मा को भी प्रिय लगे—कहकर महाराज **मनु** ने भी व्यक्ति की इसी आज़ादी का समर्थन किया है। शिक्षा पर कठोर नियन्त्रण रखने वाले साम्यवादी देशों के चिंतन के जनक **कार्ल मार्क्स** ने भी यही स्वीकार किया है—"वास्तव में, सरकार और चर्च—दोनों के किसी भी प्रकार के प्रभाव से विद्यालय को मुक्त रखा जाना चाहिए।"

पर ऐसा लगता है कि शिक्षा—राजनीति और धर्म के नियन्त्रण से मुक्त रह कर स्वतन्त्र चिन्तन को विकसित करे, और व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करे—शिक्षा के इतिहास में यह एक नारा ही बनकर रह गया है। इस इतिहास में काफ़ी दूर तक चले जाने पर भी यह सन्देह बना ही रहता है कि क्या व्यवहार में भी शिक्षा इसी उद्देश्य को पूरा करती थी। शिक्षा के इतिहास का अध्ययन करने पर आप प्राय: यह पाएँगे कि शिक्षा द्वारा स्वतन्त्र चिन्तन का विकास करने के बजाय किसी उद्देश्य-विशेष की पूर्ति के लिए एक लीक में बँधे चिन्तन को ही प्रोत्साहित किया गया है। बौद्ध शिक्षा और मुसलिम शिक्षा का उद्देश्य ही था, धर्म-विशेष की शिक्षा देकर उसमें दीक्षित करना, उसका प्रचारक बनाना। कालान्तर में शिक्षा का उद्देश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'व्यावसायिक' हो गया और वह उच्च एवं लाभदायक पदों पर पहुँचने का साधन बन गई। प्राचीन ग्रीस के स्पार्टा में शिक्षा का उद्देश्य था—शारीरिक बल बढ़ाना, साहसी बनाना, राज्य के प्रति अटूट श्रद्धा उत्पन्न करना। रोग में शिक्षा के व्यावहारिक एव उपयोगी स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित किया गया। जर्मनी, इटली आदि कुछ देशों में अभी कुछ ही दशक पूर्व एक विशिष्ट राजनैतिक विचारधारा का पोषण करना शिक्षा का उद्देश्य मान लिया गया था। आज़ भी, साम्यवादी देशों में शिक्षा का उद्देश्य साम्यवाद की जड़ों को सींचना है; दूसरी ओर जनतन्त्रीय देशों में शिक्षा द्वारा जनतन्त्र का प्रचार किया जा रहा है। हमारे देश की स्थिति और भी भिन्न है। यहां जनतन्त्र की आड़ में एक विशेष राजनैतिक दल का प्रचार किया जाता है। स्वाधीनता-संग्राम का जो इतिहास छात्रों को पढ़ाया जाता है, पंचवर्षीय योजनाओं का जो विवरण प्रस्तुत किया जाता है, और तो और, पांच हज़ार साल बाद तक के लिए जो इतिहास, देश के विद्वानों तक से छिपाकर, कालपात्र में सुरक्षित करके रख दिया गया है, वे सब इसी के उदाहरण हैं। संक्षेप में, काफ़ी अरसे से किसी-न-किसी संकीर्ण विचार की सेवा में शिक्षा का विनियोग किया जाता रहा है।

ऐसी स्थिति में आज राजनीति के मठाधीश कभी तैयार नहीं होंगे कि शिक्षा को अपने शिकंजे से मुक्त कर दें क्योंकि शिक्षा पर उनका नियन्त्रण उनके स्वार्थों की सिद्धि का प्रमुख साधन है। अतः शिक्षा पर सत्ता की राजनीति के नियंत्रण के रहते अन्ततः यह **शिक्षक** पर निर्भर है कि वह अपने बच्चों को किस सीमा तक किसी वाद-विशेष के संस्कारी प्रभावों से मुक्त रख सकता है। इस कथन में किसी को आदर्शवादिता की बू आती हो तो दूसरी बात है अन्यथा शिक्षक की सही भूमिका यही है। **स्वामी दयानन्द सरस्वती** ने अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका में लिखा है :–

"विद्वान् आप्तों का यही **मुख्य काम** है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे (अर्थात् मनुष्य) स्वयं अपना हित-अहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।"

वस्तुतः किसी भी राज्य से यह आशा रखना ही गलत है कि वह शिक्षक के विवेक और जीवन दृष्टि का सम्पूर्ण समर्पण पाए बिना उसे सरकारी संरक्षण देगा। अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने का उत्तर-दायित्व स्वयं शिक्षक का कर्त्तव्य है, राज्य का नहीं। शिक्षक की सजगता ही शिक्षा को घिनौनी राजनीति के हाथ की कठपुतली बनने से रोक सकती है। ●

[पृष्ठ १४० का शेषांश]

पाठ्यपुस्तकें ऐसी होनी चाहिए कि वह केवल तैयार व बने-बनाए निष्कर्षों को ही प्रस्तुत नहीं करें, वरन् निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए विद्यार्थियों को स्वतन्त्रता भी प्रदान करें। इसमें विद्यार्थी आगे चलकर नागरिक के रूप में व्यावहारिक समस्याओं के श्रवण, मनन व निदिध्यासन के माध्यम से समाधान ढूंढने में सक्षम होंगे।

प्रश्न उठता है कि शिक्षक स्वतन्त्रता क्यों चाहता है? उच्चाधिकारियों के संकेतानुसार काम करके वह सन्तोष क्यों नहीं कर लेता? स्वतन्त्रता शिक्षक का जन्मजात अधिकार, सहजवृत्ति एवं बुनियादी आवश्यकता है। स्वतन्त्रता से मनाही का अर्थ है—आत्मानुभव के अवसरों व समाज-सेवा से दूर होना। प्रश्न यह नहीं है कि बिना स्वतन्त्रता के भी कुछ शिक्षक अच्छा कार्य कर रहे हैं, यह कोई कृपा नहीं है पर ऐसा करना तो उन शिक्षकों के स्वभाव में है। स्वतन्त्रता में ही रह कर शिक्षक अधिकतम विकास कर सकता है। क्या कभी अन्तरराष्ट्रीय तनाव व भय समाप्त होंगे? क्या कभी व्यक्तियों की हत्या करने तथा सार्वजनिक सम्पत्ति को जलाने के बजाय तर्क व प्यार से भी बात होगी? क्या कभी सम्पूर्ण विश्व को कुटुम्ब के रूप में पिरोया जा सकेगा? इस विचार का विकास किया जाना चाहिए। इस प्रकार के विश्व की रचना के लिए शिक्षक का स्थान महत्त्वपूर्ण है। क्या शिक्षक अपने तुच्छ राजनैतिक स्वार्थों तथा अपनी पाशविक इच्छाओं के वशीभूत होकर स्वतन्त्रता, समानता, अहिंसा तथा सत्य पर आधारित अपना कर्त्तव्य भूल जायगा? क्या शिक्षक सत्य के लिए आग्रह करेगा तथा विद्यार्थियों को भी सत्य पर आग्रह के लिए तत्पर बनायेगा? इन सब प्रश्नों के उत्तर पर ही भावी सभ्यता निर्भर करती है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठ्यपुस्तकों का प्रश्न और राजनीति

श्री कृष्ण कान्त अवस्थी
विश्वविद्यालयीन शिक्षा महाविद्यालय, सागर (म० प्र०)

प्राचीन काल में पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता आधुनिक समय की भाँति न थी क्योंकि गुरु-मुख के द्वारा दी गई मौखिक शिक्षा को सुनकर छात्र कण्ठस्थ कर लिया करते थे। उस समय शिक्षा का रूप अधिकांशतः व्यक्तिगत था, परन्तु वर्तमान समय में शिक्षा का रूप सामूहिक हो गया है। फलतः पाठ्य-पुस्तकों की उपादेयता अधिक बढ़ गई है।

पाठ्य-पुस्तक शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण साधन है किन्तु पुस्तकें शिक्षकों का स्थान नहीं ले सकती। वर्तमान समय में शिक्षा-विशेषज्ञों ने बालकों को पुस्तकीय ज्ञान देने का प्रबल विरोध किया है। कुछ विद्वानों ने शालाओं से पुस्तकों को हटा देने के ही पक्ष में तर्क दिए हैं। उनके विचार से उसका स्थान स्वयं शिक्षकों को ले लेना चाहिए। फिर भी दिनोंदिन शालाओं मे पुस्तकों की संख्या बढ़ती जा रही है। अमरीका की संस्थाओं में एक नवीन प्रकार की पुस्तकों का प्रसार हुआ है जिन्हें कार्य-पुस्तक (वर्क बुक) कहते हैं। इन पुस्तकों में विषय से सम्बन्धित सामग्री रहती है और समस्याओं तथा क्रियाओं के निराकरण हेतु रिक्त स्थान रहता है। ऐसी पुस्तकों की सहायता से विद्यार्थी बिना शिक्षक की सहायता के अपनी सुविधा के अनुसार अध्ययन-क्रम चला सकता है। फिर भी पुस्तकों का विरोध व्यापक पैमाने पर क्यों होता है? इसका कारण सम्भवतः दोषपूर्ण पाठ्यपुस्तक विधि है जिसमें शिक्षार्थी पुस्तक की प्रत्येक पंक्ति रटता है, टीकाएँ होती हैं, जो कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बालकों के ज्ञान को दूषित बना देती हैं। हमारी संस्कृति, प्रगति एवं सभ्यता की पोषक—पाठ्यपुस्तकों को दोषपूर्ण विधि के कारण हटाया नहीं जा सकता है।

पाठ्यपुस्तकों के प्रश्न को ध्यान में रखते हुए उनका स्तरानुसार विभाजन अग्रानुसार किया जा सकता है :— (१) प्राथमिक, (२) माध्यमिक और (३) उच्च।

प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च स्तर पर पाठ्य-सामग्री सरल, तारतम्यपूर्ण और शिक्षार्थियों के बौद्धिक विकास के अनुरूप होनी चाहिए। पाठ्य-पुस्तकें चाहे जिस स्तर की लिखी गई हों परन्तु उनमें नवीनतम सूचनाओं का समावेश तथा वे व्यापक दृष्टिकोण को लेकर लिखी जाए। लेकिन यह स्थिति वर्तमान पाठ्य-पुस्तकों में राजनीति के अनुचित प्रभाव के कारण नहीं पाई जाती है, क्योंकि स्तर के अनुकूल पुस्तक न होने पर भी लेखक की व्यक्तिगत पहुँच के आधार पर पुस्तकें शासन के द्वारा स्वीकृत हो जाती हैं और शालाओं में शिक्षण के कार्य में प्रयुक्त होने लगती हैं। यहाँ तक कि पाठ्य-पुस्तक की सामग्री अपर्याप्त होने पर भी व्यक्तिगत पहुँच तथा दौड़-धूप के आधार पर शासन से अकुशल लेखकों को 'रॉयल्टी' प्राप्त हो जाती है! क्या पाठ्य-पुस्तकों के प्रश्न को लेकर खेली गई राजनीति का यह एक पहलू नहीं है? यदि है, तो इसे अविलम्ब हतोत्साहित क्यों नहीं किया जाता? क्या इस राजनीति के कारण कुशल लेखकों का मनोबल नहीं गिरता और पुस्तकों के स्तर में गिरावट नहीं आती?

यह कहना भी न्यायसंगत ही है कि पाठ्यपुस्तकों के अयोग्य तथा अकुशल लेखकों को राजनीतिक दबाव और पक्षपात के कारण केन्द्र तथा राज्य शासनों से पारितोषिक प्राप्त हो जाता है। इससे पुस्तकों का गुणात्मक ह्रास होता जा रहा है और इस कार्य की ओर कुशल लेखकों की अरुचि होती जा रही है। अतः पारितोषिक वितरण के कार्य के प्रति भी शासन को पक्षपातरहित नीति का अनुसरण करना चाहिए।

पाठ्य-पुस्तक की शैली बोधगम्य तथा सरल होनी चाहिए। वाक्य-विन्यास अच्छा होना चाहिए। चित्रों तथा रेखाचित्रों का समावेश सोद्देश्य होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रों में सार्थकता हो तथा आकर्षण हो। पुस्तक का मुद्रण अच्छा हो, कागज अच्छा हो, जिल्द मजबूत हो, मुखपृष्ठ आकर्षक हो तथा मूल्य उचित हो। स्तर के अनुसार पुस्तकों के लेखन-कार्य का योग्यता और अनुभव के आधार पर बँटवारा हो। परन्तु वर्तमान समय में यह देखा जाता है कि यह बँटवारा पूर्ण पक्षपात के आधार पर होता है। प्राथमिक स्तर की पुस्तकें माध्यमिक या उच्च स्तर के लेखक लिखते हैं जिससे स्तरानुकूल पुस्तकें तैयार नहीं हो पाती हैं और शिक्षार्थियों को आशाजनक लाभ नहीं मिल पाता है। अतः इस प्रकार के कार्यों पर रोक लगाई जाए वरना पाठ्य-पुस्तकों का प्रश्न पूर्ण राजनैतिक हो जायेगा और राजनेताओं की रुचि के अनुसार ही पुस्तकों का लेखन-कार्य होगा तथा उनका पूर्ण आधिपत्य हो जायेगा। यह भी देखा गया है कि पुस्तक-लेखनकार्य में योग्य तथा अयोग्य राजनेताओं तथा उनके पिछलग्गुओं का आधिपत्य बढ़ता जा रहा है। इससे सामान्यतया शैक्षणिक उद्देश्यों की अवहेलना होती जा रही है तथा पाठ्यपुस्तकों की तैयारी और व्यवस्था के विषय में अनुसन्धान का अभाव होता जा रहा है।

यहाँ पर पाठ्यपुस्तकों के निर्धारण के विषय में चर्चा कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है। जैसा कि वर्तमान समय में देखा गया है कि पाठ्यपुस्तकों का निर्धारण केन्द्र स्तर तथा राज्य स्तर पर राजनीतिक दबाव तथा पक्षपात के आधार पर होने लगा है जो कि योग्य तथा कुशल लेखकों को हतोत्साहित करने का एक मूल कारण बन जाता है और अयोग्य तथा अकुशल लेखकों को प्रोत्साहन प्राप्त हो जाता है। इससे अच्छी पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशन में कमी आती जा रही है। अतः शासन से अपील है कि वह पाठ्यपुस्तकों के निर्धारण में न्यायपूर्ण नीति को अपनाए।

शिक्षा के प्रसार के साथ ही साथ पाठ्य-पुस्तक व्यवसाय एक बहुत ही लाभदायक क्षेत्र बनता गया और शिक्षा-जगत् के समक्ष तत्सम्बन्धी अनियमितताएँ बढ़ने लगीं। फलतः राज्य-सरकारों का ध्यान इस ओर गया और तय किया गया कि इन अनियमितताओं को रोकने हेतु राज्य-सरकारों को पाठ्यपुस्तकों का उत्पादन अपने हाथ में ले लेना चाहिए और सभी प्रान्तों ने यह कार्य अपने हाथ में ले लिया। कुछ राज्यों ने प्राथमिक स्तर की पुस्तकों का उत्पादन किया जबकि अन्य राज्यों ने माध्यमिक स्तर की समाप्ति तक। इस उत्पादन-कार्य के साथ-साथ कुछ राज्यों को छोड़कर लगभग सभी ने पुस्तकों के वितरण तथा विक्रय का भार भी स्वयं ही देखना प्रारम्भ कर दिया। इससे पाठ्यपुस्तकों के निजी उत्पादन के क्षेत्रों में मुनाफाखोरी तथा धोंधागर्दी में काफी अंकुश-सा लग गया और पाठ्यपुस्तकों में कुछ गुणात्मक सुधार भी हुआ है। परन्तु शासन का इस क्षेत्र में पूर्ण आधिपत्य का होता जाना क्या इस पुस्तकीय व्यवस्था के क्षेत्र में उचित होगा ? बल्कि यों कहा जाय तो ठीक ही होगा कि इस सम्बन्ध में शासन का राजनीतिक हस्तक्षेप निजी क्षेत्रों के लिए अहितकर होगा।

शिक्षा-आयोग १९६४-६६, पृष्ठ २५९ के अनुसार, "पुस्तकें लिखने के लिए शासन इतना कम पारिश्रमिक देता है कि प्रायः योग्यतम विद्वान् इस कार्य के लिए उत्साहित नहीं होते। इसी कारण गैर-सरकारी उद्यम द्वारा उत्पादित पुस्तकें प्रायः राज्य द्वारा उत्पादित पाठ्य-पुस्तकों से अच्छी होती हैं। अतः पारिश्रमिक देने में निजी प्रकाशकों से अधिक उदारता की नीति बरती जाए ताकि श्रेष्ठ लेखक आकर्षित हों।" अतः यह कहना उचित ही होगा कि जब तक शासन श्रेष्ठतम पुस्तकों के प्रकाशन में असमर्थ है तब तक निजी उद्यमों से प्रकाशन-कार्य को पूर्णरूपेण न लेना ही उचित होगा अन्यथा पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशन कार्य में अवरोध उत्पन्न होगा। वर्तमान समय में निजी उद्यमों के इस ओर बढ़ते हुए प्रयास वस्तुतः प्रशंसनीय हैं।

शिक्षा-विभाग जब तक सुसंस्थापित तथा कुशल प्रकाशकों के स्तर पर नहीं पहुँच जाता है तब तक राज्यों द्वारा पुस्तकों का उत्पादन एक अनुचित कदम है। शासकीय प्रकाशनों में बहुधा यह देखा गया है कि पुस्तकों में संशोधन का न होना, अशुद्ध मुद्रण होना, कागज अच्छा न होना, समय पर पुस्तकों का वितरण न होना आदि कमियाँ पाई जाती हैं। फिर भी इन कमियों के होते हुए भी शासकीय प्रकाशनों का फैलाव होता जाना क्या राजनीति से प्रेरित नहीं है ? अतः पाठ्यपुस्तकों के गुणात्मक सुधार हेतु शासन को तुरन्त ध्यान देना चाहिए और शाला तथा विश्वविद्यालय दोनों ही स्तर पर पाठ्यपुस्तकों तथा अन्य साहित्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्माण के लिए श्रेष्ठतम साधन व प्रतिभाएँ जुटानी चाहिए।

अमरीका, सोवियत संघ एवं ब्रिटेन के उपयुक्त अधिकारियों के सहयोग से विश्वविद्यालय स्तर के लिए शिक्षा मन्त्रालय द्वारा अल्प मूल्य वाली तथा राज्य सहायता प्राप्त एक पुस्तकमाला प्रकाशित की जा रही है। भारत में भी इस योजना को प्रकाश में लाना चाहिए।

वैज्ञानिक और तकनीकी पुस्तकों का उत्पादन राष्ट्रीय स्तर पर होना चाहिए जिसके लिए एक समिति की स्थापना होनी चाहिए परन्तु जहाँ पर पाठ्य-पुस्तक समिति का प्रश्न है वह भी पूर्ण राजनीतिक है। राज्य स्तर पर प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की पाठ्य-पुस्तक समितियों (टेक्स्ट बुक कमेटीज़) पर राजनीतिक दबाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इन समितियों में पहुँच के आधार पर ही सदस्यों का चयन किया जाता है, जिसमें शासकीय अधिकारियों की अधिकता तथा योग्य शिक्षकों व शिक्षाविदों की कमी होती है। अतः इन पक्षपातपूर्ण समितियों के द्वारा पाठ्यपुस्तकों का चयन होना, स्वीकृति प्राप्त होना, क्या राजनीति से प्रेरित क़दम नहीं कहा जायेगा? यदि हां, तो न्यायपूर्ण क़दम कब उठाये जायेंगे? फिर भी राज्य स्तर पर इन समितियों द्वारा जो भी कार्य किए जा रहे हैं वह कुछ हद तक ठीक हैं। साथ ही साथ 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्' द्वारा पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन के प्रयत्नों की प्रशंसा करना पूर्णरूपेण न्यायसंगत होगा।

अपने देश में राज्य स्तर पर तथा केन्द्र स्तर पर पुस्तकों का उत्पादन-कार्य हो रहा है। राज्य स्तर पर 'ग्रन्थ अकादमी' तथा केन्द्र स्तर पर 'मैनेजर, प्रकाशन विभाग, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली' और 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, प्रकाशन विभाग' द्वारा पुस्तकों का प्रकाशन हो रहा है। दोनों ही स्तरों में श्रेष्ठ पुस्तकों का अनुवाद तथा नवीन पुस्तकों का निर्माण किया जा रहा है। यह देखा गया है कि नवीन पुस्तकों के निर्माण में कुशल लेखकों के साथ-साथ अकुशल लेखकों को भी शासकीय प्रश्रय प्राप्त हो जाता है जो कि राजनीतिक दाँव-पेंच का एक कारण है। अतः अयोग्य लेखकों की शासकीय कार्यों में विशेष तौर पर पुस्तकों के लेखन-कार्य में घुसपैठ होना उचित नहीं है। इससे अच्छी पाठ्य-पुस्तकें नहीं निकल पाती हैं। केन्द्रीय तथा राज्य स्तर पर शासन ने विभिन्न विषयों में श्रेष्ठ किताबों के हिन्दी में अनुवाद की योजना भी चलाई है। यह योजना हिन्दी के प्रसार व छात्रों के हित में है। फिर भी यह ज्ञात हुआ है कि अनुवाद-कार्य में कुशल तथा हिन्दी साहित्य के योग्य जानकारों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हो पा रहा है, क्योंकि इस कार्य में भी राजनीतिक दखल को स्थान प्राप्त हो जाता है और अयोग्य लोगों की नियुक्ति हो जाती है।

पाठ्यपुस्तकों के राजकीय उत्पादन का उद्देश्य मुनाफाखोरी नहीं होना चाहिए। राजकीय उत्पादन का एकमात्र उद्देश्य श्रेष्ठ पुस्तकों की रचना तथा न्यूनतम लागत पर उन्हें बालकों को उपलब्ध कराना है। शिक्षा-आयोग (१९६४-६६), पृष्ठ २६० के अनुसार, "एक राज्य में जहां कि राज्य सरकार पाठ्य-पुस्तक वितरण के लिए प्रत्यक्ष उत्तरदायी है, हमने देखा कि अनेक क्षेत्र-अधिकारियों का बहुमूल्य समय बिक्री, हिसाब-किताब तथा माल की देखभाल में ही लगता था। हमारी सिफारिश है कि प्रत्येक शैक्षिक संस्था (या शैक्षिक संस्थाओं के समूह) की छात्र सहकारी संस्थाओं द्वारा इस कार्य को आगे बढ़ाना चाहिए, शिक्षा-विभागों को इसका उत्तरदायित्व प्रत्यक्ष ग्रहण नहीं करना चाहिए।"

यथार्थ है कि शिक्षा-जगत् में 'पाठ्यपुस्तकों का प्रश्न' बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यदि पाठ्यपुस्तकों का गुणात्मक और संख्यात्मक विकास करना है तो राजनीति को इससे दूर ही रखना पड़ेगा अन्यथा पाठ्यपुस्तकों की दशा दिनोंदिन गिरती ही जायेगी। वर्तमान समय में पुस्तकों के प्रति शासकीय और निजी उद्यमों के योगदान स्पष्ट दिखाई पड़ रहे हैं। ●

"राजनीति वास्तविक अर्थ में कोई विज्ञान नहीं।" —बिस्मार्क

□ □

"राजनीति और धर्म वे वस्तुएँ हैं जिनमें प्रायः कम ही सामंजस्य होता है।" —बर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालयों हेतु हमारे संग्रहणीय नवीन प्रकाशन

★ ★ ★

आलोचना एवं शोध

साहित्य और आधुनिक युग बोध — देवेन्द्र इस्सर २५.००
लोक साहित्य विमर्श — डा० श्याम परमार २१.००
अकविता और कला संदर्भ — डा० श्याम परमार १६.००
भारत और एशिया का आधुनिक साहित्य — डा० प्रभाकर माचवे २०.००
निबन्ध-सिन्धु — डा० मनमोहन शर्मा २५.००
गीता मनन — रावनारायण सिंह "मसूदा" २०.००
राष्ट्र भारती हिन्दी का मिशन — काका कालेलकर २५.००
हाड़ौती लोक गीत — डा० चन्द्रशेखर भट्ट २५.००
हिन्दी एवं मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन — डा० चन्द्रकान्त महादेव ३५.००

उपन्यास

अंधेरी चाँदनी उजली छाँव — प्रो० शलभ २०.००
कालचक्र — चुन्नीलाल मड़िया १८.००
आकाश के छोर पर — हसित बुच १०.००
सिन्दूर की हथकड़ियाँ — परदेशी १०.००
पराई सन्तान — उमाशंकर जोशी १०.५०
हाऊस सर्जन — वें० आंजनेय शर्मा ८.००
रूप-अरूप — श्रीराम शर्मा "राम" ७.५०
नई सरहदें — बंसीलाल यादव १०.००
उपासना — ब्रजभूषण १०.००
माँ का आँचल — ब्रजभूषण १२.००
मोर्चे पर — ब्रजभूषण १०.००
हीरो — ब्रजभूषण ७.५०
तिकोना — दीलिप वाम ३.५०

कहानियाँ

जनपथ — नन्दनी सतपथी ४.००
उसके आने पर — मनोहर वर्मा ६.००
गोपुर का द्वीप — अखिलन ६.००
ठंडी रात और काली ज्वाला — के० नारायण ६.५०
सुप्रिया — पु० शि० रेगे ३.००
न मरने का दुख ! — ईश्वरचन्दर ७.५०

निबन्ध एवं लेख संग्रह

शिक्षा के बढ़ते चरण — डा० चन्द्रशेखर भट्ट २५.००
ये हमारे — डा० सरोजिनी महिषी ७.५०
वे भी हमारे — डा० सरोजिनी महिषी ५.५०
अतिथि सत्कार — डा० सरोजिनी महिषी ५.५०
विद्यालयों में पाठ्येत्तर प्रवृत्तियाँ — गेरीलाल नणवाणा १४.००

जीवनियाँ एवं संस्मरण

युगमूर्ति रविन्द्र नाथ — काका कालेलकर २०.००
गांधी युग के जलते चिराग — ,, ७.००
नव भारत के चन्द निर्माता — ,, ७.५०
स्वराज्य संस्कृति के संतरी — ,, ७.५०
भारतीय दृष्टि में अमेरिकी जीवन — डा० के० एम० जार्ज २०.००

विविध

राजस्थान का इतिहास — बी० एम० दिवाकर २५.००
मेवाड़ का राजस्थान के अन्य राज्यों से सम्बन्ध — मिश्रीलाल मण्डोत ७.००
मुगल सम्राट शाहजहाँ — एल० पी० माथुर व मण्डोत १२.००
भारतीय क्रिकेट ज्ञान कोष — प्रो० एल० एन० माथुर २०.००
खेल प्रतियोगिताएँ — त्रिवेदी एवं मूंदड़ा ७.५०

नोट—कृपया अपने पुस्तकालय के लिए सीधा आदेश भेजकर हमें कृतार्थ करें।

कृष्णा ब्रदर्स, कचहरी रोड, अजमेर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी और राजनीति

डॉ० गोपाल दत्त सारस्वत
हिन्दी विभाग, धर्म समाज कालेज, अलीगढ़

वर्तमान काल में जीवन का कोई कोना ऐसा नहीं बचा है, जिसमें राजनीति—स्वार्थनीति या स्वैराचार का प्रवेश न हुआ हो। कुछ विज्ञान और कुछ धर्म-निरपेक्षता ने सर्वसाधारण की आस्था एवं मान्यताओं को झकझोर डाला है। भौतिकवाद के प्रभाव से आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्य बौने-से दिखाई देने लगे हैं। स्वार्थपरता तथा अवसरवादिता ने राजनीति को ऐसा विकृत कर डाला है कि बड़े-बड़े विद्वान् भी बेसुरा राग अलापने लगे हैं। फलतः क्या शिक्षा और क्या साहित्य, राजनीति हर एक क्षेत्र में अपना तांडव दिखा रही है। यह कहने में कोई संकोच नहीं कि वर्तमान काल में राजनीति के व्यवहार पक्ष ने आचार-संहिता के वर्ज्य तटों को छूने में साहस दिखाया है, जिससे भ्रष्टाचार और शिष्टाचार, सत्य और असत्य एवं ग्राह्य और त्याज्य में कोई भेद नहीं रहा है।

यों साहित्य और राजनीति में कोई बैर नहीं है। साहित्य में सम्पूर्ण जीवन प्रतिफलित होता है। राजनीति भी जीवन के एक पक्ष को उपस्थित करती है। मानव-जीवन में जो कुछ घटित होता है, साहित्य में सबका आकलन हो जाता है। इस प्रकार राजनीति भी साहित्य के लिए त्याज्य नहीं है; किन्तु साहित्य का शुद्ध रूप विकृत नहीं होना चाहिए। जो राजनीति साहित्य के प्रकृत रूप को विकृत करती है, वह कदापि ग्राह्य नहीं हो सकती। साहित्य में साहित्यकता—मानवीय भावनाओं एवं संवेदनाओं का प्राधान्य है। राजनीति का साहित्य में गौण स्थान है।

साहित्य और राजनीति की प्रवृत्ति में बड़ा अन्तर है। साहित्य, शास्त्र है; राजनीति, विज्ञान। साहित्य रागात्मक अभिव्यक्ति है, राजनीति तर्कात्मक प्रक्रिया। साहित्य की प्रवृत्ति संश्लेषणात्मक है, राजनीति की विश्लेषणात्मक। साहित्य विभिन्नताओं में अभिन्नताओं की खोज करता है, राजनीति भेदभाव को जन्म देती है। साहित्य कोमल भावनाओं को उभार कर मानव-हृदयों में समन्वय स्थापित करता है, जबकि राजनीति स्थापित मूल्यों को उखाड़ कर समाज में विघटन को बढ़ावा देती है। इस प्रकार साहित्य और राजनीति में मौलिक भेद है।

संप्रति हिन्दी-क्षेत्र में राजनीति ने अपना गढ़ बना लिया है। इसी कारण हिन्दी-जगत् में वाद-विवाद, विरोध, वैमनस्य के बवंडर उठ खड़े हुए हैं। हिन्दी के विस्तार-प्रस्तार में राजनीति ने इतनी बाधाएँ उत्पन्न कर दी हैं कि चारों ओर जातिवाद, वर्गवाद, सम्प्रदायवाद एवं साम्राज्यवाद के नारे हिन्दी के विरोध में आए-दिन सुनाई पड़ते रहते हैं। ये सब विवादी स्वर राजनीति की देन हैं।

हिन्दी की परम्परानुगत प्रकृति पर विचार करें तो पता चलता है कि हिन्दी के निर्माण में वीर रस, भक्ति रस, शृंगारिक भावना, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। देश की अखंडता, राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक आदर्शों और परम्परा के अविरोधी प्रयोगों ने हिन्दी को उस भूमि पर प्रतिष्ठित किया है कि एक सहस्राब्दि से भीषण घात-प्रतिघातों का सामना करते हुए भी भविष्य की आशा और आकांक्षाओं के सहारे उसके चरण उन्नति की ओर बढ़ते ही जा रहे हैं। जातीय, प्रान्तीय एवं साम्प्रदायिक भेदों के बीच भी मध्यकाल से लेकर अब तक उसने राष्ट्र की मूलभूत सांस्कृतिक एकता को जीवन्त रखा है। जिस हिन्दी को विभिन्न जाति-उपजातियों के सन्तों की प्रेरणाओं से, सिख गुरुओं की वानी से एवं मुसलमान कवियों के उद्गारों से, उदारतापूर्वक प्रोत्साहन मिला है, उसे अधुनातन राजनीति विखंडित, विशृंखलित एवं जर्जरित करने पर तुली हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी को राज्याश्रय कभी नहीं मिला। विरोध और संघर्षों में ही वह पली है बल्कि प्रतिकूल परिस्थितियों में ही उसका विकास हुआ है। साधारण जनता की भावनाएँ उसके साथ जुड़ी हुई हैं। यही उसका संबल है। यही कारण है कि उसका विकास कभी रुका नहीं है। पर आश्चर्य की बात है कि अधुनातन राजनीति ने उसे पथ-भ्रष्ट करने का बीड़ा उठाया है। हिन्दी की अखंडता को नष्ट करने के लिए उस पर कीचड़ उछाली जा रही है। हिन्दू साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता एवं संकीर्णता के मिथ्यारोप लगाए जा रहे हैं। यह देखकर हिन्दी के कितने ही पक्षधर शंकाकुल हो उठे हैं।

हिन्दी पर विदेशी राजनीति का भी कोप है। अन्य देशवासी विशेषतः अंग्रेजी के पक्षधर, जिनमें बहुत-से भारतीय भी हैं, हिन्दी की भूमि में अंग्रेजी ध्वज फहराना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में अंग्रेजी की तुलना में हिन्दी बहुत निर्बल है। वे इतना नहीं समझते कि हिन्दी को वैदिक युग से लेकर अर्वाचीन काल तक की विपुल-ज्ञान-सम्पदा विरासत में मिली है। अतः उसमें भविष्यत् के विकास की सम्भावनाएं विद्यमान हैं।

प्रान्तीय राजनीति ने विविध रूपों में हिन्दी के प्रति विरोध प्रदर्शित किया है। हिमाचल, हरियाणा, मध्य-प्रदेश, राजस्थान एवं उत्तर-प्रदेश की राजनीति ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में निर्विरोध स्वीकार कर लिया है। गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार आदि प्रान्तों की राजनीति में हिन्दी का मृदु विरोध प्रकट हुआ है। तमिलनाडु, केरल, बंगाल एवं नागालैंड में हिन्दी का उग्र विरोध है। यह प्रान्तीय राजनीति का प्रतिफल है। मुस्लिम राजनीति का उर्दू में अडिग विश्वास है। वे प्रशासन पर दबाव डालकर उर्दू को हिन्दी के समानान्तर दूसरी भाषा बनाना चाहते हैं। इन्हीं कारणों से हिन्दी समूचे देश में राष्ट्रभाषा का स्थान नहीं प्राप्त कर सकी है।

संप्रति हिन्दी उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम चारों ओर राजनीति के भँवरजाल में फँसी हुई है। उसको अपने ही घर में यथोचित सम्मान नहीं मिला है। राजनीति का चश्मा पहनकर लोग उसे संकुचित, अशक्त भाषा बताकर बदनाम कर रहे हैं। इस राजनीति के पीछे अवसरवादियों के निहित स्वार्थ हैं, जो व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए राष्ट्र-हित को न्यौछावर कर रहे हैं। वे अपनी सीमती दृष्टि से हिन्दी के विकास में अपना विनाश देखते हैं।

हर एक देश को एक राष्ट्रभाषा अपेक्षित है। राष्ट्र-भाषा के होने से देश की अखंडता सिद्ध होती है, समान विचारधारा का निर्माण होता है एवं सांस्कृतिक एकता का बीजारोपण होता है। यह सब हिन्दी के द्वारा ही संभव है, क्योंकि इसके लिए हिन्दी समर्थ है। किन्तु आज की राजनीति की आँखों से यह रहस्य ओझल है।

हर एक भाषा की अपनी एक संस्कृति होती है। हिन्दी की भी अपनी एक संस्कृति है। इस संस्कृति के निर्माण में पूर्व परम्परा एवं इतिहास का रिक्थ है। उसको खोकर कोई भाषा जीवित नहीं रह सकती है। हिन्दी की संस्कृति ने उसकी प्रकृति को सजाया-सँवारा है। उसका अन्तस् भक्ति रस एवं प्रेमामृत से सिक्त है। उसमें त्याग का गौरव, वीरत्व का ओज, करुणा का स्पर्श, एवं शान्ति की अनुगूँज है। भारत की प्रकृति एवं उसकी जलवायु ने उसे सौन्दर्य एवं माधुर्य प्रदान किया है। यह संस्कृति चिरकाल से देशवासियों को आस्था, आशा एवं आत्म-विश्वास से अनुप्रेरित करती आ रही है। किन्तु आज की राजनीति इस सत्य पर पर्दा डालने का निष्फल प्रयास कर रही है।

आज हिन्दी पर संकट है। यह संकट आजकल की क्षुद्र राजनीति का प्रक्षेपण है। हिन्दी को आवश्यकता है—साधकों की, आस्थावान् साहित्यकारों की, निष्ठावान् रचनाकारों की। इसके लिए आवश्यक है—

(१) हिन्दी के प्रति आस्था;
(२) रचनात्मक साहित्य का सृजन;
(३) राजनीति से परित्राण।

आज राजनीति के दलदल में फँसकर हिन्दी का विकास अवरुद्ध-सा हो गया है। किन्तु हिन्दी राष्ट्र-वाणी है, उसमें लोक-हृदय की धड़कन है। उसमें भारत की कोटि-कोटि जनता के जीवन की अनुभूतियाँ, आशाएँ और आकांक्षाएँ मुखरित हैं। राजनीतिक अवरोध उसकी गति को रोक नहीं सकते, मन्द भले ही कर दें। यद्यपि अपनी उन्नति करने में हिन्दी स्वयं समर्थ है, फिर भी जागरूकता, सावधानी एवं सतर्कता की आवश्यकता है। अतः प्रबुद्ध लेखक; विवेकशील पाठक एवं सहृदय विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे हिन्दी की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए अग्रसर हों। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेजी-शिक्षण और ब्रिटिश राजनीति

डा० उमेशचन्द्र कुदेसिया
व्याख्याता, विश्वविद्यालयीन शिक्षा महाविद्यालय, सागर (म० प्र०)

प्राचीन युग मुख्यतः सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक पर्यावरण में डूबा हुआ था; मध्ययुग में धर्म छाया रहा और विज्ञान से सना हुआ आधुनिक युग पूर्णरूपेण राजनैतिक है। इतिहास के पृष्ठों से विदित होता है कि प्राचीन शिक्षा अध्यात्मवाद से प्रभावित थी; मध्ययुगीन शिक्षा धर्म से, और आधुनिक शिक्षा विज्ञान और राजनीति दोनों से प्रभावित है। शिक्षा के हर पहलू में आज राजनीति घुस चुकी है। शिक्षक, शिक्षार्थी, पाठ्यक्रम और शिक्षण सभी राजनैतिक गतिविधियों के शिकार हो चुके हैं। ऐसी स्थिति में 'अंग्रेजी-शिक्षण और ब्रिटिश राजनीति' जैसे विषय पर विचार करना रुचिकर होगा।

सन् १७५७ ई० में प्लासी तथा १७६५ ई० में बक्सर के युद्धों में विजय पाने के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत में राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति हो गई और वह भारत में साम्राज्य स्थापित करने के स्वप्न देखने लगी। उसने भारत में अपनी राजनैतिक जड़ें मजबूत करने की दृष्टि से अंग्रेजी-शिक्षण को आधार बनाया। हिन्दू और मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए तथा देश के उच्च वर्ग के व्यक्तियों को अंग्रेजी शासन के प्रति वफादार बनाने के लिए शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर विशेषतः उच्च स्तर पर अंग्रेजी-शिक्षण को प्रमुखता दी गई। कम्पनी के संचालकों ने भारतीय भाषाओं के शिक्षण की तुलना में अंग्रेजी-शिक्षण पर अधिक बल दिया। अंग्रेजी शिक्षा की माँग उत्तरोत्तर बढ़ने लगी जिसकी पूर्ति के लिए उस समय बम्बई, मद्रास तथा बंगाल प्रान्तों में अनेक स्थानों पर बहुत-से स्कूल खोले गए जिनमें अंग्रेजी-शिक्षण को एक नया जीवन मिला।

राजनीतिक दृष्टि से ऐसा विश्वास किया गया कि विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में अंग्रेजी-शिक्षण से न केवल सरकार की जड़ें मजबूत होंगी वरन् भारतीयों में नैतिक जागृति उत्पन्न होगी तथा उनका बौद्धिक स्तर भी ऊँचा उठ सकेगा। चार्ल्स ग्रान्ट ने भारतीयों में शिक्षा-प्रसार के लिए अंग्रेजी भाषा को उपयुक्त माध्यम बतलाया। उसने अंग्रेजी को राज्यभाषा बनाने पर विशेष जोर दिया। सन् १८१३ ई० के आज्ञापत्र द्वारा यह स्वीकार कर लिया गया कि जनसाधारण के लिए शिक्षा का प्रबन्ध करना सरकार का दायित्व है, किन्तु भारत के इतिहास में शिक्षा की प्रगति की दृष्टि से सन् १८१३-१८३३ ई० का काल अनिश्चितता का काल रहा। इस काल में अंग्रेजी-शिक्षण के प्रकरण पर एक विवाद उठ खड़ा हुआ जिसने तीन प्रमुख वर्गों को जन्म दिया—(१) प्राच्य-शिक्षावादी, जो प्राचीन भारतीय साहित्य को संस्कृत, अरबी तथा फारसी भाषाओं के माध्यम से पढ़ाने के पक्ष में थे। हेस्टिंग्ज और मिन्टो इस नीति के अनुगामी थे; (२) पाश्चात्य-शिक्षावादी, जो देश में अंग्रेजी-शिक्षण के द्वारा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देने के पक्ष में थे। चार्ल्स ग्रांट इसके मुख्य समर्थक थे; (३) लोक-भाषावादी, जो देशी भाषाओं के शिक्षण पर बल देते थे। इनके प्रमुख समर्थक मद्रास के गवर्नर मुनरो और बम्बई के गवर्नर एल्फिस्टन थे।

सन् १८३३ ई० के आज्ञापत्र के अनुसार सरकारी पदों पर नियुक्ति का आधार—अंग्रेजी की योग्यता होने से भारतीयों में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने की प्रबल इच्छा जागृत हुई जिसके परिणामस्वरूप देश में अंग्रेजी-शिक्षण की माँग बढ़ी। जब सन् १८३४ ई० में लार्ड मैकाले भारत आया तो उसने राजनैतिक ही नहीं वरन् सांस्कृतिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक आदि अनेक दृष्टियों से प्राच्य-भाषाओं (संस्कृत, फारसी, अरबी) का डटकर विरोध किया और अंग्रेजी-शिक्षण पर बल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजहंस की सर्वश्रेष्ठ पाठ्य पुस्तकें

- □ राजहंस हाई स्कूल जनरल इंग्लिश —डा० जयगोपाल वर्मा, प्रि० आई० सी० मित्तल
- □ हाई स्कूल प्रोज़ सलेक्शन्स (यू० पी० बोर्ड द्वारा स्वीकृत) —प्रिंसिपल ए० एन० गुप्ता
- □ राजहंस इङ्गलिश एसेज़ (इण्टरमीडियेट के लिये) —डा० रघुकुल तिलक
- □ राजहंस जनरल इङ्गलिश (इण्टरमीडियेट के लिये —प्रो० एम० के० प्रेम
- □ राजहंस ऐलीमेन्ट्री इङ्गलिश एसेज (हाई स्कूल के लिये) —प्रो० ओ०पी० शर्मा
- □ राजहंस हिन्दी निबन्ध —प्रो० आर० एन० गौड़
- □ राजहंस हिन्दी भाषा-भास्कर (हाई स्कूल एवं इन्टर प्रथक-प्रथक) —प्रो० आर० एन० गौड़
- □ इण्टरमीडियेट अर्थशास्त्र की रूप-रेखा भाग १ व २ —प्रो० ए० एस० गर्ग व प्रो० एस० के० गर्ग
- □ हाई स्कूल अर्थशास्त्र की रूप-रेखा भाग १ व २ —प्रो० ए० एस० गर्ग व प्रो० एस० के० गर्ग
- □ वाणिज्य अर्थशास्त्र की रूप-रेखा प्रो० ए० एस० गर्ग व प्रो० एस० के० गर्ग
- □ कृषि अर्थशास्त्र की रूपरेखा प्रो० ए० एस० गर्ग व प्रो० एस० के० गर्ग
- □ मुद्रा तथा बैंकिंग की रूप-रेखा प्रो० ए० एस० गर्ग व प्रो० एस० के० गर्ग
- □ भारत का इतिहास भाग १ एवं २ प्रो० एस० सी० गुप्ता
- □ नागरिकशास्त्र की रूप-रेखा (इण्टर) —डा० एम० एल० शर्मा
- □ भारतीय संविधान और नागरिक जीवन की रूप-रेखा (इण्टर) —डा० एम० एल शर्मा
- □ अलंकार (भाग १, २, ५, ६, १०, ११, १२ व १५) —कलाकार चमन
- □ कला-किरन (कक्षा ६, ७, ८ के विद्यार्थियों के लिये) —कलाकार चमन
- □ माध्यमिक प्राणि-विज्ञान —डा० ओ० पी० सक्सेना
- □ माध्यमिक प्रायोगिक प्राणि-विज्ञान —डा० ओ० पी० सक्सेना व प्रो० वाई० पी० पुरग
- □ हाईस्कूल प्राणि-विज्ञान —डा० ओ० पी० सक्सेना
- □ माध्यमिक वनस्पति विज्ञान —डा० श्रीवास्तव व सबरवाल
- □ हाई स्कूल वनस्पति विज्ञान —प्रो० बी० पी० सिंघल
- □ माध्यमिक भौतिकी भाग १ व २ —प्रो० जे० पी० गोयल व डॉ० जे० सी० गर्ग
- □ हाई स्कूल भौतिकी □ माध्यमिक प्रयोगात्मक भौतिकी —प्रो० जे० पी० गोयल
- □ संख्यात्मक भौतिकी —प्रो० एस० गोयल
- □ माध्यमिक भौतिकी अकार्बनिक रसायन —डा० बाउन्ट्रा व प्रो० खन्ना
- □ माध्यमिक भौतिक कार्बनिक रसायन —डा० एस० पी० गुप्ता
- □ मौलिक रसायन गणित □ माध्यमिक प्रायोगिक रसायन —प्रो० जे० के० खन्ना
- □ हाई स्कूल प्रायोगिक रसायन —प्रो० जे० के० खन्ना
- □ हाई स्कूल अंकगणित प्रिंसिपल फकीर चन्द रस्तोगी
- □ हाई स्कूल बीजगणित तथा सांख्यिकी प्रिंसिपल फकीर चन्द रस्तोगी
- □ हाई स्कूल रेखागणित —प्रो० पी० एन० चटर्जी
- □ हाई स्कूल नागरिक शास्त्र और भारतीय शासन की रूप-रेखा गर्ग व शर्मा
- □ हाई स्कूल ज्यामिति —प्रो० पी० एन० चटर्जी
- □ हाई स्कूल बीजगणित तथा सांख्यिकी —प्रो० पी० एन० चटर्जी
- □ हाई स्कूल ठोस ज्यामिति तथा निर्देशांक ज्यामिति —प्रो० पी० एन० चटर्जी
- □ हाई स्कूल त्रिकोणमिति —प्रो० पी० एन० चटर्जी

राजहंस प्रकाशन मन्दिर, धर्म-आलोक, रामनगर, मेरठ (उ० प्र०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी दलील थी कि संसार के अनेक देशों में अंग्रेजी बोली जाती है, उन सभी देशों का सम्पर्क निकट भविष्य में भारत से अवश्य होगा। अतः यदि हम भारत की सर्वाङ्गीण उन्नति चाहते हैं तो हमें निःसंकोच अंग्रेजी-शिक्षण को प्रमुखता देनी चाहिए। मैकाले का राजनैतिक उद्देश्य अंग्रेजी-शिक्षण द्वारा भारत में एक ऐसा वर्ग तैयार करना था जो "रंग और रूप में तो भारतीय हो परन्तु रुचियों, विचारों, नैतिक आदर्शों तथा बुद्धि में अंग्रेज हों"। उसका विचार था कि यह वर्ग शासन का भक्त बनकर भारत में अंग्रेजी साम्राज्य को सुदृढ़ करने में सहायता करेगा। कुछ भी हो, मैकाले द्वारा भारत में जो अंग्रेजी-शिक्षण को बल मिला, उससे भारत का सबसे बड़ा कल्याण यह हुआ कि देश में राजनैतिक जागृति आई। अंग्रेजी-शिक्षण के कारण भारतीय, प्रजातन्त्र के तीन प्रमुख सिद्धान्तों—समानता, स्वतन्त्रता तथा बन्धुत्व से परिचित हुए। देश में नवीन योजनाओं के साथ राजनैतिक संघर्ष प्रारम्भ हुए जिसके परिणामस्वरूप देश दासता की जंजीरों से मुक्त हो सका।

सन् १८३३-५३ ई० की अवधि में बंगाल में अंग्रेजी शिक्षा का बोलबोला रहा। सन् १८४३ ई० में जब सर एरस्किन पैरी 'शिक्षा-बोर्ड' के सभापति बने तो उन्होंने भी अंग्रेजी-शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया जिससे अंग्रेजी के प्रभाव में वृद्धि होने लगी। सन् १८४४ ई० में भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग ने घोषणा की कि "सरकारी नौकरियों के लिए उन्हीं व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जावेगी जिन्होंने अंग्रेजी संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त की हो।" इस घोषणा का परिणाम यह हुआ कि भारत में अंग्रेजी-शिक्षण की माँग में आशातीत वृद्धि हुई और सन् १८५३ ई० में अंग्रेजी-शिक्षण का प्रसार करने हेतु अनेक नवीन अंग्रेजी स्कूल स्थापित किए गए। सन् १८५४ ई० में वुड के घोषणा-पत्र में बतलाया गया कि देशी भाषाओं में पुस्तकों का अभाव होने के कारण अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाना आवश्यक है, किन्तु इसमें माध्यमिक स्तर पर देशी भाषाओं को भी माध्यम के रूप में अपनाने पर बल दिया गया था।

वुड के घोषणा-पत्र के आधार पर कम्पनी सरकार ने शिक्षा का कार्य आरम्भ किया ही था कि इसी बीच सन् १८५७ ई० में स्वतन्त्रता-संग्राम उफन पड़ा और राजक्रान्ति हुई जिसने कम्पनी के शासन का अन्त कर दिया। भारत का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से निकल कर ब्रिटिश संसद के हाथ में चला गया। इस महान् राजनैतिक परिवर्तन का अंग्रेजी-शिक्षण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। शिक्षा का प्रबन्ध शिक्षा-विभाग ने अपने हाथ में ले लिया। सन् १८५८-८२ ई० के मध्य देश में राजकीय विद्यालयों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई और अंग्रेजी-शिक्षण का विकास द्रुत गति से होना प्रारम्भ हो गया। हण्टर कमीशन (१८८२-८३) ने भी मिडिल स्कूलों में अंग्रेजी पढ़ाना आवश्यक समझा और हाई स्कूल के स्तर पर स्पष्ट रूप से अंग्रेजी-शिक्षण का पक्ष लिया। मातृभाषा के शिक्षण के विषय पर यह आयोग मौन रहा।

सन् १९०५-२१ की अवधि में माध्यमिक स्कूलों का प्रमुख ध्येय अंग्रेजी-शिक्षा देना हो गया था। अतः अंग्रेजी-शिक्षण का अधिक प्रभावोत्पादक बनाने हेतु अनेक प्रयास किए गए। अंग्रेजी को अत्यधिक महत्व देने से भारतीय भाषाएँ शिक्षा का माध्यम न बन सकीं। सन् १९२९-३७ ई० तक अंग्रेजी—शिक्षा का माध्यम बनी रही किन्तु सन् १९३७ के अन्त तक भारतीय भाषाओं का भी शिक्षा के माध्यम के पद पर प्रतिष्ठापन कर दिया गया। ऐतिहासिक अध्ययन से विदित होता है कि इस काल में अन्य भाषाओं की तुलना में अंग्रेजी-शिक्षण का ही अधिक बोलबाला रहा। सन् १९४४ ई० में सर जॉन सार्जेण्ट ने शिक्षा की प्रगति हेतु विचार व्यक्त करते हुए सुझाव दिया कि हाईस्कूल तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी और अंग्रेजी की शिक्षा द्वितीय अनिवार्य विषय के रूप में होगी। ऐसा निर्णय लेकर सर जॉन सार्जेण्ट ने भी अंग्रेजी-शिक्षण को जीवित बनाए रखने का पूर्ण प्रयास किया।

अंग्रेजी शासनकाल में अंग्रेजी-शिक्षण का सिंहावलोकन करने के पश्चात् स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेजों की इस सम्बन्ध में जो नीति थी, वह भारत के लिए सर्वथा अनुपयुक्त, अहितकर एवं अराष्ट्रीय सिद्ध हुई। अंग्रेजी-शिक्षण पर अधिक बल देने से देशज भाषाओं को ही ठेस नहीं पहुँची वरन् भारतीय संस्कृति और साहित्य की प्रगति में बाधा भी उत्पन्न हुई। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलोचनात्मक श्रेष्ठ प्रकाशन

□ हिन्दी वाङ्मय : बीसवीं शती	सं० डा० नगेन्द्र	५०.००
□ श्री रामचरितमानस की काव्यकला	डा० हरिहरनाथ हुक्कू	१५.००
□ नवीन साहित्यिक निबन्ध	डा० गोविन्द त्रिगुणायत	१२.५०
□ साहित्यिक निबन्ध	राजनाथ शर्मा	२०.००
□ हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास	राजनाथ शर्मा	१८.००
□ हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास	राजनाथ शर्मा	३.५०
□ हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ	डा० जयकिशनप्रसाद	१६.००
□ समीक्षा के सिद्धान्त	डा० सत्येन्द्र	३.५०
□ काव्य, यथार्थ और प्रगति	डा० रांगेय राघव	३.००
□ भारतीय साहित्य : तुलनात्मक अध्ययन	सं० डा० ब्रजेश्वर वर्मा	८.००
□ लोक साहित्य : सिद्धान्त और प्रयोग	डा० श्रीराम शर्मा	७.५०
□ ब्रज साहित्य का मूल्यांकन	डा० भगवानसहाय पचौरी	२०.००
□ 'नवीन' और उनका काव्य	प्रो० जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव	८.००
□ हिन्दी रेखाचित्र : उद्भव और विकास	प्रो० कृपाशंकर सिंह	५.००
□ आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका	डा० शम्भुनाथ पाण्डेय	१०.००
□ सूफी-काव्य-विमर्श	डा० श्याममनोहर पाण्डेय	६.००
□ साधारणीकरण, संप्रेषण और प्रतिबद्धता	डा० तारकनाथ बाली	४.००
□ रस, अलंकार, पिंगल	डा० शम्भुनाथ पाण्डेय	३.००
□ हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास	डा० गुणानन्द जुयाल	६.००
□ हिन्दी व्याकरण और संरचना	डा० भगवतस्वरूप मिश्र	४.००
□ बिहारी और उनका साहित्य	डा० देशराजसिंह भाटी	७.५०
□ सूरदास और उनका साहित्य	,,	१२.००
□ तुलसी : साहित्य और साधना	डा० इन्द्रपालसिंह	१०.००
□ हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि	डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१२.५०
□ हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि	डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	२०.००
□ रत्नाकर की साहित्य साधना	दानबहादुर पाठक	६.००
□ मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य	,,	१०.००
□ साकेत : एक अध्ययन	,,	८.००
□ गीतकार विद्यापति	रामवशिष्ठ एम० ए०	३.००
□ कामायनी-भाष्य	डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना	१५.००
□ आँसू-भाष्य	,,	७.५०
□ प्रियप्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन	,,	८.००
□ साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन	,,	१०.००
□ पद्मावत में काव्य, संस्कृति और दर्शन (१९७४)	,,	२०.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

□ कबीर ग्रन्थावली	डा० भगवत्स्वरूप मिश्र	१५.००
□ साखी सरोवर	,,	६.००
□ भ्रमरगीत-सार [सटीक]	राजनाथ शर्मा	१०.००
□ विनय पत्रिका [सटीक]	राजनाथ शर्मा	१०.००
□ जायसी ग्रन्थावली [सटीक]	राजनाथ शर्मा	२०.००
□ 'घनानन्द कवित्त' का काव्य-वैभव	डा० प्रकाश दीक्षित	२.५०
□ कबीर-काव्य-संग्रह	डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी	५.००
□ पदमावती समय (पृथ्वीराज रासो)	डा० हरिहरनाथ टण्डन	३.००
□ कयमास-वध (पृथ्वीराज रासो)	राकेश एम० ए०	३.००
□ बिहारी-सतसई : प्रारम्भ के २१० दोहे [सटीक]	डा० श्रीभगवान शर्मा	३.५०
□ रहीम सतसई (दोहावली)	विश्वम्भर 'अरुण'	१.५०
□ जयशंकरप्रसाद और स्कन्दगुप्त	राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी	४.००
□ रश्मिवन्ध और सुमित्रानन्दन पन्त	देवेन्द्र शर्मा एम० ए०	५.००
□ महादेवी वर्मा और 'संधिनी'	डा० देशराजसिंह भाटी	४.५०
□ महादेवी वर्मा और 'स्मृति की रेखाएँ'	राजनाथ शर्मा एम० ए०	३.००
□ महादेवी वर्मा और 'अतीत के चलचित्र'	,,	३.५०
□ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और उनकी चिन्तामणि	,,	३.५०
□ सरदार पूर्णसिंह के निबन्ध : एक विवेचन	,,	४.००
□ वृन्दावनलाल वर्मा और 'मृगनयनी'	,,	४.००
□ भगवतीचरण वर्मा और 'टेढ़े मेढ़े रास्ते'	राजनाथ शर्मा	४.००
□ त्यागपत्र : एक मूल्यांकन	डा० कृष्णदेव शर्मा	३.००
□ एकायन : एक मूल्यांकन	,,	३.००
□ हिन्दी कहानी : १५ पगचिह्न एक अध्ययन	,,	३.००
□ सिन्दूर की होली : एक मूल्यांकन	,,	२.५०
□ नया सप्तक : एक विवेचन	डा० श्रीराम शर्मा	३.५०
□ निराला और अपरा	डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी	५.००
□ निराला और 'कविश्री'	,,	३.००
□ 'राम की शक्ति पूजा' और निराला	देवेन्द्र शर्मा एम० ए०	३.५०
□ रामधारीसिंह दिनकर और कुरुक्षेत्र	डा० तारकनाथ वाली	३.००
□ बाणभट्ट की आत्मकथा : एक अध्ययन	राजेन्द्र मोहन भटनागर	४.५०
□ बाणभट्ट की आत्मकथा : पुनर्मूल्यांकन	डा० सोमनाथ गुप्ता	२.००
□ भारतीय काव्यशास्त्र	डा० कृष्णदेव शर्मा	४.५०
□ पाश्चात्य काव्यशास्त्र	,,	४.५०
□ संस्कृत साहित्य का इतिहास	डा० द्वारिकाप्रसाद	५.००
□ पालि साहित्य का इतिहास	डा० राजकिशोर सिंह	२.५०
□ वैदिक साहित्य का इतिहास	,,	४.५०

विनोद पुस्तक मन्दिर

डा० रांगेय राघव मार्ग, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वविद्यालय स्तरीय श्रेष्ठ पाठ्य-पुस्तकें 1974

नेशनल पब्लिशिंग हाउस द्वारा प्रकाशित

अर्थशास्त्र

- **अर्थशास्त्र के सिद्धांत (छठा संशोधित संस्करण) सम्पूर्ण**
  एस. पी. दुबे : वी. सी. सिन्हा — 28·00
- **प्रारम्भिक अर्थशास्त्र**
  आर. एन. दुबे : बी. विश्वकर्मा — 16·50
- **मुद्रा, बैंकिंग, विदेशी विनिमय, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, राजस्व, रोजगार व राष्ट्रीय आय (द्वितीय संशोधित संस्करण)**
  आर. एन. दुबे : प्रभाकर पांडेय — 22·00
- **अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र**
  वी. सी. सिन्हा — 23·00
- **आर्थिक विचारों का इतिहास**
  वी. सी. सिन्हा : जी. सी. सिंघई — 26·00
- **भारतीय अर्थव्यवस्था**
  जे. पी. सक्सेना — 22·00
- **बेनहम का अर्थशास्त्र**
  बेनहम (अनुवादक : वी. सी. सिन्हा : पांडेय) — 26·00

वाणिज्य

- **व्यापारिक सन्नियम (द्वितीय संशोधित संस्करण)**
  आर. पी. माहेश्वरी : एस. एन. माहेश्वरी — 20·00
- **आय-कर (द्वितीय संशोधित संस्करण)**
  रारा : श्रीवास्तव : मित्तल — 20·00
- **सांख्यिकीय विधियाँ (द्वितीय संशोधित संस्करण)**
  यादव : जैन : मित्तल — 26·00
- **सांख्यिकीय विधियाँ (भारतीय सांख्यिकी सहित)**
  यादव : जैन : मित्तल — 26·00
- **वित्तीय लेखांकन**
  जैन : मित्तल : अग्रवाल : बंसल — 28·00
- **अंकेक्षण**
  ए. के. गंगेले — 20·00
- **सचिवीय कार्यपद्धति**
  आर. पी. माहेश्वरी : जे. पी. टोटला — 20·00
- **व्यावसायिक हिन्दी**
  आर. एन. दुबे : प्रभाकर गुप्ता — 15·00
- **अर्थशास्त्र के सिद्धांत (छठा संशोधित संस्करण)**
  एस. पी. दुबे : वी. सी. सिन्हा — 28·00

नेशनल पब्लिशिंग हाउस

23 दरियागंज, दिल्ली—110006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू की राजनीति

श्री प्रकाशवीर शास्त्री
संसद सदस्य (राज्यसभा), केनिंग लेन, नई दिल्ली

भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में जिन देशी भाषाओं की चर्चा है, उनमें उर्दू भी एक है। जम्मू-काश्मीर की सरकार ने तो अपनी सरकारी भाषा उर्दू ही मानी है। भारत के कई भागों में उर्दू माध्यम के स्कूल चलते हैं। बहुत-से साप्ताहिक और दैनिक समाचारपत्र भी उर्दू में निकलते हैं। दिल्ली और पंजाब के अतिरिक्त भी कुछ अन्य राज्यों में उनके पढ़ने वालों की अच्छी संख्या है। केन्द्रीय और प्रदेशीय सरकारों के कुछ प्रकाशन भी उर्दू में होते हैं। आकाशवाणी ने तो समाचार-बुलेटिन के अतिरिक्त, उर्दू की विधिवत् सेवाएँ पृथक् प्रारम्भ कर रखी हैं। उर्दू के विकास के लिए किए जा रहे निजी और सरकारी प्रयासों के विरुद्ध कभी किसी ने आवाज़ नहीं उठाई, उठती भी क्यों? जब किसी भाषा के जानने और पढ़ाने वाले हैं तो क्यों न उन्हें वह सुविधा दी जाए।

स्वतन्त्रता से पूर्व देश में पृथकतावादी और साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के लोगों ने उर्दू के माध्यम से जो विष उगला, वह बात भी अब आई-गई हो गई है। नई पीढ़ी तो कम से कम उसके कड़ुवे इतिहास से सर्वथा अपरिचित-सी है। अच्छा भी है, क्यों गढ़े मुर्दों को उखाड़ा जाए, व्यर्थ में दुर्गन्ध ही चारों ओर फैलेगी। भाषा को किसी मज़हब या सम्प्रदाय से जोड़ना समझदारी नहीं है। हिन्दी-उर्दू दोनों के विकास में मज़हब से ऊपर उठकर निर्णय लेना ही अधिक हितकर होगा।

अब दुर्भाग्य से २७ वर्ष बाद फिर उर्दू को पहली राजनीति का माध्यम बनाया जा रहा है। तमिलनाडु में जो हथियार कभी हिन्दी-विरोध को माध्यम बना कर राजनीति में प्रयोग किये गए थे, लगभग वैसी ही प्रवृत्ति उर्दू के हिमायतियों में भी उदय हो रही है। उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में विधान-सभा के निर्वाचन से पहले उर्दू के दो जबर्दस्त सम्मेलन किए गए। इतने विशाल सम्मेलनों और प्रदर्शनों के लिए कहाँ से पैसा जुटाया गया, यह तो अभी रहस्य ही बना हुआ है। जिस ढंग से उन दिनों इस प्रश्न को उछाला गया उसकी भी भाषाशास्त्रियों और सामान्य नागरिकों ने सराहना नहीं की। उर्दू-भाषी ग़ैर-मुसलमान लेखकों के सम्मेलन में उर्दू के पक्ष या प्रशंसा में कुछ बातें कही जातीं तो भी बात जँचती। लेकिन वहाँ हिन्दी के विरुद्ध जो विष-वमन किया गया और हिन्दी वालों को जिस तरह पानी पी-पीकर कोसा गया, उससे लगता था कि यह सब योजनाबद्ध ढंग से एक सम्प्रदाय-विशेष को प्रसन्न करने के लिए स्वांग रचा गया था।

उत्तर प्रदेश के वर्तमान राज्यपाल श्री अकबर अली खाँ राष्ट्रपति-शासन के दिनों में उर्दू के लिए कुछ ऐसे अध्यादेश जारी कर चुके थे जिसे लेकर प्रदेश में रोष फैला हुआ था। एक ओर तो सरकार आर्थिक बचत की बात करे और दूसरी ओर जहाँ एक भी उर्दू पढ़ने वाला विद्यार्थी न हो वहाँ अनिवार्य रूप से उर्दू के अध्यापकों की नियुक्ति करे, यह कौन-सी बचत-योजना है? उर्दू की पढ़ाई के लिए तो पहले से ही पूरी व्यवस्था थी। केन्द्रीय सरकार ने अल्पसंख्यकों की भाषा के सम्बन्ध में एक सामान्य नीति बनाई हुई है। किसी श्रेणी में १० अथवा किसी स्कूल में ४० विद्यार्थी यदि दूसरी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करना चाहें तो उसकी व्यवस्था की जाएगी। उसी आधार पर उत्तर प्रदेश और देश के दूसरे राज्यों में भी उर्दू के अध्ययन की सुविधा प्राप्त थी। फिर हर प्राइमरी स्कूल में उर्दू अध्यापकों की नियुक्ति की क्या तुक थी? इसी तरह के कुछ आदेश उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों और महाविद्यालयों के सम्बन्ध में भी उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से जारी किए गए। सरकारी खर्च को कुछ अपने समर्थकों पर खर्च करना तथा उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नई टोली इस तरह तैयार करना कहाँ तक उचित है ? प्रायः प्रत्येक ही प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालय में प्रशिक्षित अध्यापक रखने की व्यवस्था है। परन्तु उर्दू के लिए कितना मोह जगा कि वह सब सिद्धान्त ताक में उठा कर रख दिए गए। इस समय उत्तर प्रदेश में ३७३१ उर्दू के अध्यापकों में २६३४ अप्रशिक्षित अध्यापक कार्य कर रहे हैं।

केन्द्रीय सरकार ने भी उर्दू के लिए वर्तमान शिक्षा-मंत्री प्रोफेसर नूरुल हसन के आने के बाद कुछ नई नीतियाँ घोषित की हैं। दिल्ली में एक उर्दू भवन बनाया जा रहा है। उर्दू के लिए केन्द्रीय सरकार कुछ प्रोत्साहन न दे, यह मेरा अभिप्राय नहीं है। पर जब किसी सम्प्रदाय-विशेष को प्रसन्न करने के लिए जनता की गाढ़ी कमाई के करोड़ों रुपए नई-नई योजनाएँ बना कर अपने समर्थकों को प्रसन्न करने के लिए अपव्यय किये जाते हैं तब कष्ट होता है।

उर्दू, हिन्दी से पृथक् रहकर स्वतन्त्र भाषा के रूप में अपना विकास कर सकेगी, इसमें उर्दू वालों को भी आज सन्देह है। हिन्दी के शब्द-समूहों के अतिरिक्त क्रिया और कर्म—दोनों ही उर्दू ने हिन्दी से उधार ले रखे हैं जो प्रयत्न करने पर भी उर्दू नहीं छोड़ सकेगी। जहाँ तक भाषाई पृष्ठभूमि का सम्बन्ध है, उसमें भी हिन्दी का ऋण उर्दू को स्वीकार करना होगा। दुर्भाग्य से जिस स्वच्छ और निश्छल वातावरण में उर्दू को पनपने के लिए इस देश में अवसर मिला, वह सब पाकिस्तान के निर्माण ने अस्वच्छ कर किया। दुर्भाग्य है कि आज इसी मनोवृत्ति के कुछ लोग उर्दू को २७ वर्ष पुराने उसी धरातल पर लाकर खड़ा करना चाहते हैं।

उर्दू के विकास और सामान्य जनता तक पहुँचने के लिए उसके समर्थकों को खुले हृदय से कुछ निर्णय लेने होंगे। इसमें पहला निर्णय जहाँ यह हो कि उर्दू सरकारी कंधों पर चढ़ कर जनसाधारण तक पहुँचने का प्रयास न करे, वहाँ उसे अरबी लिपि के मोह का भी परित्याग करना पड़ेगा। नागरी लिपि में यदि नया और पुराना उर्दू साहित्य आ गया तो वह टिकाऊ भी रहेगा और नई पीढ़ी भी उससे पूरा लाभ उठा सकेगी। ●

हमारा उत्कृष्ट साहित्य

हिन्दी

●प्राणनाथ सम्प्रदाय एवं साहित्य	डा० नरेश पंड्या	३५.००
●मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव	डा० कमला भण्डारी	३०.००
●आधुनिक प्रतिनिधि महाकाव्य	डा० देवीप्रसाद गुप्त	२०.००
●नाट्य दर्शन	डा० शान्तिगोपाल पुरोहित	१५.००
●कामायनी में प्रतीक विधान	डा० चित्रा शर्मा	१०.००
●विनय पत्रिका में अन्तःकथाएँ	संतोष संघी	१०.००
●नयी कविता संवेदना और शिल्प	मंजुला पुरोहित	१०.००
●हिन्दी उपन्यास : रचना, विधान और युग बोध	वसन्ती पंत	१०.००
●वी० वी० गिरि : व्यक्तित्व और विचार	जयसिंह एस० राठौड़	२०.००
●पृथ्वीराज राठौर व्यक्तित्व और कृतित्व	भूपतिराम साकरिया	(प्रेस में)

इतिहास

●Cultural Heritage of Rajasthan	M. Prabhakar	20.00
●The East India Co. & Marwar	Dr. Zabar Singh	30.00
●British Relations with Bhutan	Dr. S. Gupta	40.00
●जोधपुर राज्य का इतिहास	डा० एम० एल० व्यास	३५.००
●अमीर तीमूर की आत्मकथा	डा० आर० के० सक्सेना	(प्रेस में)

पंचशील प्रकाशन

फिल्म कालोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३ फोन : 65072

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति और शिक्षण-विधियाँ

श्री गुरसरन दास त्यागी
प्रवक्ता, आर० ई० आई० कालेज, दयालबाग, आगरा

आज राजनीति का युग है, आज राजनीति जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त है। इसीलिए शिक्षा भी उससे अछूती नहीं है। शिक्षा और राजनीति आज इतने समीप आ गये हैं कि शिक्षा को राजनीति से और राजनीति को शिक्षा से पृथक् करना कठिन-सा हो गया है। यह तथ्य राज्य-प्रधान समाजों में और भी स्पष्टता से व्यक्त होता है। साम्यवादी और फासिस्टवादी समाजों में इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती है कि विद्यालय राजनीति के क्षेत्र से बाहर हो सकते हैं। चूँकि विद्यालय भावी नागरिकों को प्रशिक्षित करते हैं, इसलिये शिक्षा ऐसा महत्त्वपूर्ण साधन बन जाता है जिसे राज्य अपने आप से पृथक् नहीं कर सकता। किसी भी देश में कोई भी राजनीतिक विचार-धारा क्यों न प्रचलित हो, वहाँ की शिक्षा उस विचार-धारा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। इस सम्बन्ध में **रसेल** ने लिखा है कि—"सभी प्रकार की शिक्षा में कोई-न-कोई राजनैतिक प्रयोजन अवश्य रहता है।"

राजनीति वस्तुत: राजनीतिज्ञता (Statesmanship) की पर्यायवाची है और राजनीतिज्ञता नीतिशास्त्र का वह अंग है जो राज्य के कर्त्तव्यों की व्याख्या और उनका पालन करता है। इस दृष्टि से 'शिक्षा' राज्य का एक महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक कर्तव्य है। सभी प्रकार के समाजों में—चाहे वे साम्यवादी या फासिस्टवादी हों अथवा लोकतांत्रिक, शिक्षा को राजनीति से दूर नहीं किया जा सकता। राजनीति शिक्षा के विभिन्न अंगों—उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधि, विद्यालय-व्यवस्था, शिक्षकों एवं छात्रों के चयन आदि को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। **जे० एफ० ब्राउन** का कथन है कि—"किसी भी देश की और सभी युगों की शिक्षा तत्कालीन शासक-वर्ग की विशेषताओं को व्यक्त करती है।" विश्व का इतिहास ब्राउन के इस कथन का स्पष्ट साक्षी है। लोकतांत्रिक, स्वेच्छाचारी, फासिस्टवादी और साम्यवादी—सभी प्रकार की सरकारें अपने-अपने राजनैतिक ध्येय को प्राप्त करने के लिये शिक्षा के उद्देश्यों का निर्माण करती हैं और तदनुरूप पाठ्यक्रम एवं शिक्षण-विधि की व्यवस्था करती हैं।

राजतंत्र, अल्पतंत्र तथा लोकतंत्र की अपनी-अपनी अलग विचारधाराएँ हैं जिनके अनुरूप शैक्षिक उद्देश्यों का निर्माण किया जाता है। कोई तन्त्र व्यक्ति को समाज के अधीन मानता है, तो कोई व्यक्ति की महानता पर बल देता है। प्रशासन की आवश्यकता के अनुसार कहीं उन लोगों की शिक्षा आवश्यक समझी जाती है जो सत्ता को सम्हालते हैं, तो कहीं उनकी जो सार्वजनिक कार्यों का भार उठाते हैं, तो कहीं सभी लोगों को शिक्षा के समान अवसर देने की बात होती है। ऐसी स्थिति में विभिन्न वर्गों के लोगों के लिये विभिन्न शैक्षिक उद्देश्य निश्चित किये जाते हैं।

लोकतंत्र में स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व को विशेष स्थान दिया जाता है। राजनैतिक दृष्टि से लोकतंत्र अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, विचार-विमर्श करने की स्वतन्त्रता, स्वतन्त्र निर्णय करने की स्वतन्त्रता आदि से सम्बन्ध रखता है। स्वतन्त्रता की मान्यता यह है कि व्यक्ति की अपनी एक स्वतन्त्र वैयक्तिकता है जो समाज के प्रत्येक दूसरे व्यक्ति की वैयक्तिकता से भिन्न है। व्यक्ति स्वतन्त्र रहना चाहता है, जिससे वह अपनी इस वैयक्तिकता को बिना किसी अवरोध के अभिव्यक्त कर सके तथा उसका विकास कर सके। दूसरे, लोकतंत्र इस सिद्धान्त पर आधारित है कि मानव व्यक्तित्व का मूल्य अनन्त है, उसमें अनन्त शक्ति है और व्यक्ति स्वयं अपने कार्यभार को सम्हाल सकता है। इस दृष्टिकोण से यह प्रतिपादित किया जाता है कि मात्र सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था के द्वारा इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन और अध्यात्म प्रेमियों के लिए

शुभ संदेश

श्री अरविन्द कृत 'लाइफ डिवाइन'

नामक विश्वविख्यात दार्शनिक ग्रन्थ का

हिन्दी अनुवाद

अनुवादक—केशवदेव आचार्य

दिव्य जीवन

रहस्यमय शब्दों और जटिल भावों की व्याख्या तथा हिन्दी-अंग्रेजी शब्द-सूची सहित। भारतीय भाषाओं में अभी तक छपे अनुवादों में सर्वोत्तम। मेरठ, राजस्थान आदि विश्वविद्यालयों में दर्शनशास्त्र की स्नातकोत्तर श्रेणियों के लिए पाठ्य पुस्तक के रूप में निर्धारित

प्रथम भाग	२५ रु०
द्वितीय भाग (प्रथम खण्ड)	३० रु०
द्वितीय भाग (द्वितीय खण्ड)	३५ रु०

पूरा ग्रन्थ एक साथ लेने वालों के लिए डाक व्यय की छूट

□ □ □

हमारे अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

गीता विज्ञान (साधारण जिल्द १२.५० कैलिको)	१५.००
गीता प्रदीप	४.००
गीता नवनीत (प्रथम भाग)	६.५०
,, (द्वितीय भाग)	८.००
कठोपनिषद् भाष्य	७.५०
सत्य का रहस्य	७.५०
आत्मसमर्पण योग	१ २५
श्री अरविन्द शब्दकोश	८.००
श्री अरविन्द दर्शन प्रवेशिका	३.००
Guide of Sri Aurbindo's Philosophy	4.00

सब पुस्तकें एक साथ लेने वालों के लिए विशेष सुविधा

विशेष जानकारी प्राप्त करने और रुपये भेजने का पता—

दिव्य जीवन साहित्य प्रकाशन

पांडिचेरी—२

शिक्षण सम्बन्धी उपयोगी पुस्तकें

- □ विद्यालय स्वास्थ्य शिक्षा : डॉ. ओ. पी. सेठ १६.००
- □ बुनियादी शिक्षा : बलवन्त गर्ग ५.५०
- □ समाज शिक्षा : एस. के. मंगल
- □ साधारण गणित शिक्षण—१ : ,, ८.००
- □ साधारण गणित शिक्षण—२ : ,, ८.००
- □ सामाजिक अध्ययन शिक्षण : बी० डी० शैदा एवं के शैदा १०.००
- □ साधारण विज्ञान शिक्षण : एस० के० मंगल ८.००
- □ शिक्षा और हमारा भविष्य : माथुर ५.००
- □ हिन्दी शिक्षण में तकनीकि : जे. सी. अग्रवाल १२.५०
- □ स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का विकास : ,, १५.००
- □ विद्यालय प्रशासन एवं स्वास्थ्य शिक्षा : ,, ८.००
- □ भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ : ,, १५.००
- □ **Recent Trends in Secondary Education** Mohanlal 15.00
- □ **Supervisory Role of School Principals** J. M. Mahajan 40 00
- □ **Education in the world of Change** H. M. Mathur 15.00
- □ **Recent Development in Indian Education :** J. C. Aggarwal 12.50
- □ **Severn Indian Educationists :** ,, 15.00
- □ **School Administration :** ,, 9.50
- □ **Supervision of School Organization :** ,, 12.50
- □ **Recent Educational Development in the World :** ,, 15.00
- □ **School Principalships in 1970 and 1980 :** Bagga & Nakvi 15.00
- □ **Education Admn. Inspectoin Planning & Financing :** A. Biswas 15.00
- □ **Camparative Education** A. Biswas & J. C. Aggarwal 15.00
- □ **Learning English in Fun** S. Siddhu 7.50
- □ **Encyclopaedic Dictionary & Directory of Education** Biswas & Aggarwal Vol. I 50.00 Vol. II 25.00

आर्य बुक डिपो

३०, नाई वाला, करौलबाग, नई दिल्ली, ११०००५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह की स्वतन्त्रता प्रदान की जा सकती है जिससे कि व्यक्ति अपनी ही सूझबूझ व क्षमताओं के अनुरूप सामाजिक जीवन में क्रियात्मक व रचनात्मक योगदान देने के लिये स्वेच्छा से तत्पर हो सके। अतः उक्त सिद्धान्तों एवं मान्यताओं को आधार बनाकर लोकतांत्रिक राज्य में शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है; उदाहरणार्थ—लोकतांत्रिक नागरिकता का विकास, समविकसित व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों का विकास, एवं सामाजिक कुशलता का विकास आदि।

उक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षा के उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है; उदाहरणार्थ—अमरीका जो एक लोकतांत्रिक देश है, उसमें इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए क्रिया-प्रधान पाठ्यक्रम का निर्माण किया गया है। इस पाठ्यक्रम को छात्रों तक किस विधि से पहुँचाया जाय? इसके लिए लोकतांत्रिक देशों में परम्परागत एवं रूढ़िवादी विधियों को अनुपयुक्त माना गया; क्योंकि लोकतंत्र मानव व्यक्तित्व के अनन्त एवं चिर-विकासमान मूल्य को स्वीकार करता है तथा इस बात में आस्था रखता है कि मनुष्य स्वयं अपने कार्यभार को सम्हाल सकता है। अतः मनुष्य के इस गुण का उपयोग क्रियात्मक विधियों द्वारा किया जा सकता है; अर्थात् वह विभिन्न क्रियाओं में सक्रिय भाग लेकर विभिन्न विषयों का ज्ञान अर्जित कर विभिन्न कौशलों, आदतों एवं दृष्टिकोणों का विकास कर सके। इस प्रकार लोकतंत्रीय व्यवस्था में क्रियात्मक विधियों—विचार-विमर्श विधि (Discussion Method), समाजीकृत-अभिव्यक्ति पद्धति (Socialized Recitation Method), समस्या-विधि (Problem Method), योजना-पद्धति (Project Method) आदि विधियों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीति अप्रत्यक्ष रूप से इन शिक्षण-विधियों के निर्धारण में प्रभाव डालती है। छात्रों एवं शिक्षकों के दृष्टिकोणों (Approaches) में परिवर्तन लाकर राजनीति शिक्षण-विधियों को प्रत्यक्षतः प्रभावित करती है और अपने उद्देश्यों की प्राप्ति करती है।

साम्यवादी समाजों में राजनैतिक विचारधारा का दूसरा स्वरूप देखने को मिलता है। इस प्रकार के समाजों में राज्य या समाज को व्यक्ति की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। राज्य की अपनी एक नैतिकता होती है। इसी नैतिकता का पालन करना व्यक्ति का कर्तव्य माना जाता है। राज्य व्यक्ति से उच्च माना जाता है। राज्य ही शिक्षा के उद्देश्यों, विषय-वस्तु, शिक्षण-विधि, विद्यालय-व्यवस्था आदि का निर्धारक होता है। वह अपने हित एवं उद्देश्यों के लिए व्यक्तियों की शिक्षा की व्यवस्था करता है, उदाहरणार्थ, रूस में साम्यवादी विचारधारा प्रचलित है। यह विचारधारा वर्ग-विहीन समाज की स्थापना पर बल देती है। इसमें बुर्जुआ वर्ग के लिए कोई स्थान नहीं है। यहाँ श्रम की महत्ता पर बल दिया है तथा व्यवसाय प्रधान शिक्षा को अपनाया जाता है। इस दृष्टिकोण से शिक्षा की व्यवस्था करके विद्यालयों को कारखानों, फैक्टरी, औद्योगिक केन्द्रों आदि के समीप स्थापित किया गया। इस विचारधारा ने शिक्षा को सामाजिक ढांचे के निर्माण का महत्वपूर्ण साधन माना। इस दृष्टि से आज्ञाकारिता, समाजवादी भावना के विकास, सहयोगी दृष्टिकोण का विकास आदि शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किए गए। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक निश्चित एवं उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्माण किया गया। इस पाठ्यक्रम को छात्रों तक पहुँचाने के लिए उन शिक्षण-विधियों पर बल दिया गया जो छात्रों में सामाजिक दृष्टिकोण तथा आज्ञाकारिता विकसित कर सकें। साथ ही छात्रों तथा शिक्षकों में साम्यवादी दर्शन के लिए आस्था उत्पन्न कर सकें। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक काल में शिक्षण-विधियों पर राजनीति का गहरा प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव विभिन्न शासन-प्रणालियों के माध्यम से आया है, कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष रूप में। ●

शब्दों के लिए अटकिए नहीं ! : *हिन्दी में काम करना सरल है !!*

"आयकर शब्दावली"

सम्पादक : बृज बिहारी लाल सिंहल

मूल्य ५.००

केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद्

आयकर शाखा, ५ नेहरू नगर, आगरा-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे प्रमुख प्रकाशन

शोध एवं आलोचना

हिन्दी आलोचना : उद्भव और विकास
डॉ० भगवत्स्वरूप मिश्र ४५.००
पंत का काव्य डॉ० प्रेमलता बाफना ४०.००
जायसी का काव्य-शिल्प
डॉ० दर्शन लाल सेठी ३०.००
छायावादोत्तर हिन्दी कविता
डॉ० रमाकान्त शर्मा ३०.००
प्रगतिवाद और हिन्दी उपन्यास
डॉ० प्रभासचंद्र शर्मा ३०.००
साधारणीकरण : शास्त्रीय अध्ययन
डॉ० रामलखन शुक्ल ३०.००
हिन्दी भक्त वार्ता साहित्य
डॉ० लालताप्रसाद दुबे ३०.००
हिन्दी त्रासदी : सिद्धान्त और परम्परा
डॉ० कैलाशपति ओझा ४०.००
आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीक विधान
डॉ० नित्यानंद शर्मा २५.००
तुलनात्मक साहित्य शास्त्र : इतिहास और समीक्षा डॉ० विष्णुदत्त राकेश २५.००
आधुनिक समीक्षा डॉ० भगवतस्वरूप २०.००
प्रतिनिधि कहानीकार
डॉ० रामचरण महेन्द्र १०.००
प्रतिनिधि एकांकीकार
डॉ० रामचरण महेन्द्र १०.००
साहित्यान्वेषण
डॉ० विनयमोहन शर्मा १०.००
साहित्य विमर्श डॉ० श्रुतिकान्त १५.००

नाटक

सीमा संरक्षण हरिकृष्ण प्रेमी ३.००
ययाति गोविन्द वल्लभ पंत ३.५०
नवरंग अभिनेय हास्य एकांकी ७.५०

सर्वाधिक ख्याति प्राप्त एवं लोकप्रिय समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान की पुस्तकें जो चार वर्ष से अप्राप्य थीं अब हमारे यहाँ से प्रकाशित हो गई हैं

समाजशास्त्र के मूलतत्त्व
सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार २५.००
समाज कल्याण तथा सुरक्षा
सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार २०.००
प्रारंभिक समाज शास्त्र
सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ५.५०
भारतीय सामाजिक संगठन
सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ५.५०
समाजशास्त्र तथा बाल कल्याण
सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ७.५०
भारतीय नव जागरण : प्रणेता तथा आन्दोलन
गौरीशंकर भट्ट १५.००
स्त्रियों की स्थिति चन्द्रावती लखनपाल ६.००
शिक्षा मनोविज्ञान ,, ६.५०
व्यावहारिक मनोविज्ञान ,, ६.५०

उपन्यास

मनुष्य और देवता
भगवती प्रसाद वाजपेयी १०.००
त्रिवेणी कंचनलता सब्बरवाल ७.५०
धरती का बोझ श्रीराम शर्मा 'राम' ८.००
विस्मृता विद्यास्वरूप वर्मा १५.००
पुतलीघर मामा वरेरकर १५.००
मनीषा गुरुदत्त ५.००
खेल और खिलौने गुरुदत्त ७.५०
अवतरण गुरुदत्त १०.००
विनाशाय च दुष्कृताम् गुरुदत्त १२.००
संभवामि युगे-युगे गुरुदत्त १२.००

साहित्य सदन, देहरादून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय शैक्षिक संगठन और सक्रिय राजनीति : एक अंतर्यात्रा

डॉ० श्याम लाल कौशिक
प्राख्याता, राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर

"शैक्षिक संगठनों को सक्रिय राजनीति में भाग लेना चाहिए अथवा नहीं।" इस प्रश्न पर हमारे देश के शैक्षिक संगठनों में तीव्र मतभेद हैं। एक छोर पर देश का प्राचीनतम शिक्षक संगठन 'साउथ इण्डियन टीचर्स यूनियन' है जो साफ़ शब्दों में कहता है कि शिक्षक संगठनों को राजनीति से दूर रह कर अपने को शिक्षा एवं शिक्षण व्यवसाय से सम्बन्धित मामलों तक ही सीमित रखना चाहिए। यह संगठन इस मान्यता की रक्षा में इतना सतर्क है कि राज्य की विधान-सभा में शिक्षकों के लिए निर्धारित स्थानों के लिए भी अपने प्रत्याशी खड़े नहीं करता और इस प्रकार चुनाव में संगठन के स्तर पर भाग नहीं लेता। सन् १९५२ में ही जब कि स्वतन्त्र भारत के प्रथम आम-चुनाव हुए थे, इस संगठन ने अपनी नीति स्पष्ट शब्दों में घोषित कर दी थी; यथा—"एस० आई० टी० यू० राज्य विधान परिषद् में शिक्षकों के लिए निर्धारित स्थानों पर चुनाव के लिए अपने प्रत्याशी खड़े नहीं करेगा। अतः इसके सदस्य जिसे चाहें, अपना प्रतिनिधि बनाएँ।" परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि यह संगठन राज्य-विधान परिषद् में शिक्षकों के प्रतिनिधित्व के विरुद्ध है। वास्तविकता तो यह है कि राज्य विधान-सभा और संसद में भी शिक्षकों के लिए प्रतिनिधित्व की माँग करता रहा है। बात इतनी-सी है कि यह चुनाव के चक्कर को पसन्द नहीं करता और चाहता है कि इन स्थानों पर सरकार द्वारा ही उपयुक्त शिक्षकों का नामांकन कर दिया जाया करे।

दूसरे छोर पर बंगाल का शिक्षक संगठन ए० बी० टी०ए०(ऑल बंगाल टीचर्स एसोसिएशन)है जो राजनीति में सक्रिय भाग लेने के पक्ष में है। यह एक वामपंथी संगठन है जिसने गत वर्षों में खुले रूप में कांग्रेस विरोधी एवं साम्यवादी दल के सहयात्री होने का प्रमाण दिया।

'उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षक संघ' इन दो छोरों के मध्य में झूलता रहा है। इस संगठन में राजनीति में भाग लेने के पक्षपाती एवं विरोधी दोनों ही पक्षों के लोग हैं। सन् १९६० तक यह संगठन अपने आपको राजनीति से पृथक् ही रखता रहा। श्री विद्या सागर दीक्षित, जो उस समय तक इसके अध्यक्ष रहे, राजनीति में प्रवेश के कट्टर विरोधी थे। परन्तु उनके बाद श्री देवी प्रसाद मिश्र अध्यक्ष पद पर चुने गये और तभी से इस संगठन द्वारा सक्रिय राजनीति में प्रवेश पर विचार किया जाने लगा। श्री देवी प्रसाद मिश्र स्वयं इस बात के प्रबल समर्थक थे कि राज्य विधान-परिषद् में एक शिक्षक समर्थक लॉबी बनाई जाए। परन्तु वह इस मामले पर संगठन को अपने पक्ष में कर लेने में सफल नहीं हो सके। श्री श्याम बिहारी अग्रवाल ने, जो उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षक संघ के सन् १९६१ से १९६४ तक महासचिव रहे, लेखक को एक भेंट में बताया कि कार्यकारिणी के सदस्यों में से अधिकांश (जिनमें स्वयं श्री अग्रवाल भी सम्मिलित थे) इस प्रस्ताव का विरोध करते रहे। उन दिनों राज्य विधान-परिषद में शिक्षकों के एम० एल० सी० एक दल के रूप में संगठित हो गये थे जिसका नाम 'राष्ट्रवादी दल' रखा गया था। परन्तु यह दल किसी भी प्रकार एक राजनीतिक दल नहीं कहा जा सकता था। इस प्रकार श्री देवी प्रसाद मिश्र अपने प्रयास में सफल नहीं हो पाये। परन्तु सन् १९६२ में इस संगठन की नीति में एक परिवर्तन आया। उस समय जो घटनाएँ हुईं, उनके आधार पर कहा जा सकता है कि इस संगठन ने राजनीति का पल्ला पकड़ने का संकेत दिया। बात यह थी कि उस समय इस संगठन और राज्य-सरकार के आपसी सम्बन्धों में काफी तनाव आ चुका था और इस संगठन ने १९६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आम चुनाव में उस समय के शिक्षामन्त्री के विरुद्ध अपना प्रत्याशी खड़ा करने का निश्चय किया। इस संगठन को उस चुनाव को जीतने की तो आशा नहीं थी और इसका उद्देश्य प्रतीकात्मक विरोध तक ही सीमित था। यह सत्तारूढ़ कांग्रेस दल के प्रति अपना क्रोध एवं असन्तोष व्यक्त करना चाहता था। परन्तु बाद में बात अधिक आगे नहीं बढ़ी और कांग्रेस के नेताओं के निवेदन एवं सद्भावना के संकेत पर इस संगठन ने न केवल अपना प्रत्याशी खड़ा करने का निर्णय ही वापिस ले लिया बल्कि यह घोषणा भी की कि यह संगठन सक्रिय राजनीति में प्रवेश करने की बिलकुल भी इच्छा नहीं रखता। इसका उद्देश्य तो सत्तारूढ़ दल को शिक्षकों के प्रति उपेक्षापूर्ण नीति अपनाने की त्रुटि का आभास कराना मात्र था। अगले पाँच वर्षों में भी सत्तारूढ़ दल (जो पुनः कांग्रेस दल ही था) के साथ इसके सम्बन्ध तनावपूर्ण ही बने रहे। सन् १९६७ के आम-चुनाव के समय यद्यपि इस संगठन ने कांग्रेस दल के विरुद्ध मत देने का अपने सदस्यों को कोई आदेश नहीं दिया परन्तु उनमें से अधिकतर ने कांग्रेस-विरोध का प्रदर्शन किया। इस विरोध को यदि उस समय कांग्रेस-विरोधी लहर का ही एक अंग कहा जाय तो सम्भवतः बहुत ग़लत नहीं होगा। इस बीच श्री डी० पी० मिश्र के नेतृत्व में इस संगठन का एक वर्ग निरन्तर सक्रिय राजनीति में प्रवेश के लिए संगठन पर दबाव डालता रहा था। सन् १९६८ में जब इस संगठन ने राज्य के निजी प्रबन्ध में संचालित माध्यमिक विद्यालयों के राष्ट्रीयकरण की माँग की और राज्य-सरकार ने इस दिशा में विशेष कुछ नहीं किया तो श्री डी० पी० मिश्र ने लिखा, "यदि 'उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षक संघ' ने १९६७ के आम-चुनाव में भाग लेकर राज्य विधान-सभा में १० या १५ स्थान भी प्राप्त कर लिए होते तो संगठन इस समय राज्य-सरकार पर दबाव डाल कर निजी प्रबंध में संचालित माध्यमिक विद्यालयों का राष्ट्रीयकरण कराने की माँग को मनवाने में सफल हो सकता था। हमने एक अवसर खो दिया है। विभिन्न राजनीतिक दलों के टिकट पर लगभग २० शिक्षक चुनकर राज्य विधान-सभा में पहुँचे हैं परन्तु वे सब अपने-अपने दल के अनुशासन से बँधे हैं। मेरा अब भी यह सुझाव है कि 'उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षक संघ' को राज्य विधान-परिषद् में अपने 'राष्ट्रवादी दल' को राजनीतिक रूप दे देना चाहिए। इस दल को विधान-मण्डल के भीतर 'उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षक संघ' की उसी प्रकार सहायता करनी चाहिए जिस प्रकार विभिन्न राजनीतिक दल अपने श्रम-संघों एवं अन्य संगठनों की करते हैं।" परन्तु 'उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षक संघ' ने इस मार्ग को अपनाना ठीक नहीं समझा। श्री डी० पी० मिश्र ने अपनी विफलता देख संयुक्त समाजवादी दल की सदस्यता ग्रहण कर ली। उस समय वे 'उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षक संघ' के टिकट पर चुने हुए एम० एल० सी० थे। उनके इस कार्य पर संघ ने उनकी कड़े शब्दों में भर्त्सना की।

दिल्ली के प्रमुख शिक्षक संघ डी० एस० टी० ए० ने सदैव से ही अपना अराजनीतिक रूप बनाये रखने का प्रयास किया है। पर यह अपने सदस्यों को वैयक्तिक रूप से किसी भी राजनीतिक दल का सदस्य बनने और चुनाव लड़ने की छूट देता रहा है।

'राजस्थान शिक्षक संघ' चूँकि मुख्यतया राजकीय एवं पंचायत समिति (वह भी लगभग राजकीय अभिकरण ही हैं) के विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों का संगठन है, अराजनीतिक रूप बनाये हुए है। कारण स्पष्ट है। संविधान के अनुसार किसी भी राजकीय कर्मचारी को सक्रिय राजनीति में भाग लेने का अधिकार नहीं है। फिर भी इस संगठन में छिपे-दबे तथा परोक्ष रूप में राजनीतिक दलों को समर्थन प्राप्त करने तथा उन्हें समर्थन देने की प्रवृत्तियाँ डूबती-उतरती रहती हैं।

पंजाब के दो प्रमुख शिक्षक संघ 'पंजाब गवर्नमेण्ट टीचर्स यूनियन' और 'पंजाब स्टेट रेकग्नाइज़्ड स्कूल टीचर्स यूनियन' घोषणा करते हैं कि वे किसी भी राजनीतिक दल के पक्ष या विपक्ष में न होकर सभी में अपनी पैंठ रखने का प्रयास करते हैं ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनसे शिक्षकों के हितों को बढ़ावा दिलवाने में सहायता ली जा सके।

शिक्षक संघों द्वारा राजनीतिक दलों से नाता जोड़ने का औचित्य-अनौचित्य

राजनीतिक दलों से नाता जोड़ने में शिक्षक-संघों को यह लाभ तो हो सकता है कि विधान-सभाओं में उनके पक्ष में आवाज उठ सके परन्तु चूँकि कोई भी

[शेष पृष्ठ १७४ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुशासन और राजनीति

डॉ० बृजकिशोर श्रीवास्तव
प्रवक्ता, श्री मु० म० टा० महाविद्यालय, बलिया

अनुशासन एवं राजनीति का अटूट सम्बन्ध है। एक प्रजातान्त्रिक राष्ट्र में राजनीतिक दल ही सरकार का गठन करते हैं। सरकार ही देश में शांति और व्यवस्था क़ायम रखती है। इस प्रकार राजनीति का कार्य अनुशासन बनाए रखना है। विरोधी दलों का कार्य है कि वे सरकार की अप्रजातांत्रिक नीतियों की आलोचना शांतिपूर्ण ढंग से करें। राष्ट्र की एकता और अनुशासन बनाए रखने में उन्हें भी पूर्ण सहयोग देना चाहिए। इस प्रकार अनुशासनहीन समाज का अर्थ है—राजनीतिक असफलता। जिस देश में प्रत्यक्ष रूप से चुने हुए राजनीतिक दल के सदस्य ही सरकार का गठन करते हैं तथा ऐसी सरकारें जब अनुशासन-हीनता की जिम्मेदारी दूसरों पर थोपने लगती हैं तो इसका अर्थ यह है कि वह सरकार पूर्ण रूप से अयोग्य तथा निकम्मी है। उसमें शासन करने की क्षमता नहीं है। इसलिए अच्छी राजनीतिक परिस्थिति में ही अच्छे अनुशासन की आशा की जा सकती है।

अनुशासनहीनता की समस्या वैसे तो अपने देश के प्रत्येक भाग में देखी जा रही है परन्तु यह समस्या सबसे अधिक गम्भीर छात्रों में ही है। जब देखिए विद्यालय बन्द हो रहे हैं, परीक्षा का बहिष्कार हो रहा है। हड़ताल हो रही हैं। परीक्षाएँ मार्च-अप्रैल के बजाय जुलाई-अगस्त में हो रही हैं। कहीं रेलवे हड़ताल है, तो कहीं डाक्टर और इंजीनियर भी हड़ताल पर हैं। कहीं विधायकों का घेराव हो रहा है तो कहीं तालेबन्दी है।

इन सब काण्डों के लिए जिम्मेदार कौन है? सरकार इसके लिए विरोधी दलों पर आरोप लगाती है तथा विरोधी दल इसके लिए सरकार को जिम्मेदार ठहराते हैं तथा उनका कहना है कि जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति न होने के कारण ये सब काण्ड होते हैं। इससे असन्तोष बढ़ता है तथा हड़ताल-नारेबाजी होती है। जो भी हो, सारी जिम्मेदारी राजनीतिक दलों की ही है, चाहे वे सरकारी पक्ष के हों या विरोधी पक्ष के।

दूसरी ओर यह भी दिखाई पड़ता है कि अनुशासनहीनता फैलाने में छात्रों का बहुत बड़ा हाथ है। हड़ताल में सफलता अधिकतर तभी मिलती है जब उसमें छात्रों का सहयोग रहता है। इसीलिए निहित स्वार्थों के कारण कुछ लोग छात्रों को माध्यम बना कर अपना उल्लू सीधा करते हैं। इस प्रकार अनुशासन-हीनता के लिए राजनीतिक दल तथा छात्र-वर्ग—दोनों ही उत्तरदायी हैं।

राजनीतिक दल और अनुशासन

आजकल राजनीति प्रत्येक क्षेत्र में कार्य कर रही है। कोई घटना घटित होती है तो लोगों का कहना है कि किसी राजनीतिक दल की ही शह होगी। शिक्षाशास्त्री, महापुरुष तथा मेधावी लोग राजनीति से अलग रहना चाहते हैं। 'राजनीति' शब्द से लोग भड़कने लगे हैं। इसका उपयोग हेय दृष्टि से होने लगा है। इसके मुख्य कारण निम्नांकित हो सकते हैं—

(१) आजकल राजनीति में धर्म, जाति एवं स्वार्थ की प्रधानता देखी जाती है। जहाँ हमारा देश धर्म-निरपेक्ष है तथा प्रजातन्त्र को महत्त्व मिल रहा है वहाँ राजनीति में भाग लेने वाले तथा जनता दोनों जाति तथा धर्म के नाम पर वोट लेते तथा देते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि सम्पूर्ण भारत में ऐसा ही हो रहा है फिर भी इस प्रकार की भावना बहुत काम कर रही है जो प्रजातन्त्र के लिए बहुत घातक सिद्ध हो रही है। उपर्युक्त परिस्थिति में चुने गए सदस्य कितने अनुशासित, निष्पक्ष तथा समाज-सेवी होंगे! इसकी कल्पना आप स्वयं कर सकते हैं।

(२) दूसरी बात यह है कि राजनीति में भाग लेने का अवसर कर्मठ, योग्य, चरित्रवान, देशभक्त तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजसेवी को ही मिलना चाहिए। शिक्षित होना भी आवश्यक है। जो योग्यता उनके लिए निर्धारित की गई है. वह अपर्याप्त है। इसमें संशोधन होना चाहिए क्योंकि राजनीति में भाग लेने वाले राष्ट्रनिर्माता तथा संचालक होते हैं। अगर वे ही अयोग्य तथा भ्रष्ट होंगे, तो उनसे देश की प्रगति की आशा नहीं की जा सकती।

(३) तीसरी बात यह है कि राजनीति में भाग लेने वाले अधिकतर लोग अपने हित की ही बातें सोचते हैं। देश-हित की बातें नहीं सोचते जिसके आधार पर उन्होंने सफलता प्राप्त की है, उसी आधार पर अपने को बना लेते हैं। वे स्वार्थ में फँसकर गलत कामों को बढ़ावा देते हैं।

छात्र और अनुशासनहीनता

छात्रों में अनुशासनहीनता के कारण मुख्य रूप से दो हैं :

(१) बाह्य कारण (२) मनोवैज्ञानिक कारण।

१. बाह्य कारण

(क) छात्रों की बढ़ती हुई संख्या, (ख) उद्देश्य-हीन शिक्षा, (ग) अव्यावहारिक शिक्षा, (घ) शिक्षा-क्षेत्र में राजनीतिक दलों का हस्तक्षेप, (ङ) छात्र-निर्देशन का अभाव, (च) शिक्षा-प्राप्ति के बाद बेरोजगारी, (छ) भ्रष्ट अध्यापकों की नियुक्ति, (ज) प्रबन्ध-समिति की निष्क्रियता तथा पक्षपात, (झ) प्रधानाचार्य का पक्षपात पूर्ण व्यवहार, (ञ) अयोग्य अधिकारी।

२. मनोवैज्ञानिक कारण

(क) किशोरावस्था का प्रभाव—माध्यमिक विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्र किशोरावस्था में ही रहते हैं। ऐसे छात्र मार्ग-निर्देशन ठीक न होने के कारण आगे चलकर राजनीति में भाग लेने लगते हैं तथा अनुशासनहीनता का कार्य करने लगते हैं।

(ख) नेतृत्व-भावना का विकास—उद्देश्यहीन शिक्षा तथा अव्यावहारिक शिक्षा के परिणामस्वरूप छात्र व्यर्थ के कार्यों में भाग लेने लगते हैं। वे छात्र-संघ में भाग लेने लगते हैं तथा उसी दिशा में समय गँवाने लगते हैं।

अन्य कारण

एक और कारण दबी हुई भावनाओं का प्रतिशोध लेना है, कुछ छात्र ऐसे भी होते हैं जो विद्यालय-अधिकारियों से बदला लेना चाहते हैं। किसी कारणवश यदि प्रधानाचार्य उनका प्रवेश रोक देता है तथा प्रबन्ध-समिति के दबाव से या अन्य किसी दबाव के कारण यदि उनका प्रवेश हो जाता है तो वे बदला लेना चाहते हैं। ऐसे छात्र नई-नई माँगें प्रधानाचार्य के सम्मुख जान-बूझ कर रखते हैं जिसकी पूर्ति प्रधानाचार्य चाहें, तब भी नहीं हो सकती।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अनुशासन-हीनता बढ़ती जा रही है। इसको रोकने का क्या उपाय है? इसके लिए आवश्यक है कि छात्र तथा राजनीति में भाग लेने वाले लोग अपनी-अपनी जिम्मेदारी समझें। योग्य, चरित्रवान्, देशभक्त, कर्मठ तथा निष्पक्ष लोगों को ही राजनीति में भाग लेने का अवसर दिया जाय। साथ ही ऐसे छात्र जिनकी पढ़ाई में रुचि नहीं है और जो ज्ञानोपार्जन हेतु विद्यालयों में नहीं आते हैं, उनका प्रवेश विद्यालयों में न किया जाय। शैक्षिक क्षेत्र में रहने वालों के ऊपर प्रतिबन्ध होना चाहिए कि वे राजनीति में भाग न लें तथा राजनीति में भाग लेने वालों को विद्यालयों से दूर रखना चाहिए। राजनीति में भाग लेने वाले अध्यापकों तथा छात्रों को तत्काल निलम्बित कर देना चाहिए। आधुनिक समय में राजनीति की जो स्थिति है, उसे शिक्षा से अछूता रखना ही उचित होगा। शिक्षा को स्वायत्तता प्रदान करनी चाहिए। पाठ्यक्रम तथा पाठ्य-पुस्तकों पर नियन्त्रण शिक्षाशास्त्रियों का होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, राजनीति का दखल शिक्षा में कम हो तथा राजनीति में कुशल लोग ही भाग लें तभी अनुशासन क़ायम रह सकता है।

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।
यस्यागमः केवलजीविकायां तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति॥

जो अध्यापक नौकरी पा लेने पर शास्त्रार्थ से भागता है, दूसरों के अंगुली उठाने पर भी चुप रह जाता है और केवल पेट पालने के लिए विद्या पढ़ाता है, ऐसा व्यक्ति पंडित नहीं, वरन् ज्ञान बेचने वाला बनिया कहलाता है। —कालिदास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति और शैक्षिक समस्याएँ

श्री रामखेलावन चौधरी
२७/६१८ रामगंज, अजमेर

प्रत्येक देश में वहाँ की राजनीति का शिक्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। वहाँ की राजनीति के अनुसार शिक्षा का स्वरूप स्थिर होता है; उदाहरण के लिए, प्रजातान्त्रिक देशों में शिक्षा का स्वरूप कुछ है, तो अधिनायकवादी देशों में; जैसे—फासिस्ट और कम्युनिस्ट देशों में शिक्षा का स्वरूप कुछ और है। इन देशों में राजनीति के अनुसार ही शिक्षा की समस्याएँ हल की जाती हैं। भारत में कुछ अजीब दृश्य देखने को मिलता है। यहाँ की राजनीति ने अनेक शैक्षिक समस्याओं को जन्म दिया है और वर्तमान में अनेक शैक्षिक समस्याओं का हल केवल इसलिए नहीं निकल पा रहा है कि राजनीति के कारण समाधान के रास्ते में रुकावटें पैदा हो रही हैं। इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

अतीत में भारतीय शैक्षिक चिन्तन कुछ इस प्रकार निश्चयात्मक रहा था कि राजनीति और शिक्षा के बीच किसी प्रकार का द्वन्द्व उत्पन्न नहीं हो पाया। राजनीति के निर्धारक शिक्षा के मामले में कोई हस्तक्षेप नहीं करते थे। यही कारण था कि प्राचीन भारतीय गुरुकुल पद्धति का विकास अबाध रूप से हुआ और देश में ज्ञान-विज्ञान का अक्षय भांडार उत्पन्न हुआ। भारतीय शासक और सम्राट केवल कुलपतियों के आग्रह पर ही गुरुकुलों में प्रवेश करते थे और केवल धनधान्य, स्वर्ण तथा भूमि का दान करके उनकी भौतिक समृद्धि के लिए प्रयत्न करते थे। उनके हस्तक्षेप से कभी किसी प्रकार की शैक्षिक समस्या उत्पन्न हुई हो, ऐसा हमें इतिहास के किसी पृष्ठ पर देखने को नहीं मिलता।

जब इस देश में अंग्रेजों का साम्राज्य स्थापित हुआ तो वह पुरानी गौरवमय परम्परा नष्ट हो गयी और राजनीति ने शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार प्रवेश कर लिया कि अनेक शैक्षिक समस्याएँ इस देश में पैदा हुईं जिनका समाधान आज़ादी के बाद भी ढूँढ़ना कठिन हो रहा है। पिछले २७ वर्षों में वे समस्याएँ भयावह बनती जा रही हैं क्योंकि हमारे देश की स्वार्थपूर्ण राजनीति उन समस्याओं का हल निकालने में बाधक हो रही है।

शिक्षा की कल्पना

आधुनिक समय में शिक्षा की महत्ता बढ़ती जा रही है। उन्नत राष्ट्र शिक्षा पर व्यय को पूँजी विनियोग (इनवेस्टमेंट) मानते हैं। उनकी नज़रों में शिक्षा "रक्षा की दूसरी पंक्ति" है अथवा "शिक्षा एक विस्फोटक शक्ति" है। यह विचार हमारे देश में अभी तक जड़ नहीं जमा सके। अंग्रेजों ने, भारत को गुलाम बनाने के बाद, जबकि उनके अपने देश में शैक्षिक जागरण (एजुकेशनल रेनेसां) हो रहा था और वे अपनी युवा पीढ़ी के लिए पार्लियामेंट में बैठकर शिक्षा सम्बन्धी क़ानून पास करके शिक्षा की उत्तम व्यवस्था कर रहे थे, भारत में राजनीति की दृष्टि से शिक्षा के प्रति उदासीन रहे। उन्होंने भारतीय प्रजा के लिए शिक्षा पर मामूली धनराशि व्यय करने का निश्चय किया। वे चाहते थे कि यहाँ की जनता निरक्षर और गुलामी के बन्धन में बँधी रहे। उनकी राजनीति के कारण शिक्षा एक 'परोपकार' का साधन-मात्र बनी रही और उसे उन्होंने ईसाई धर्म-प्रचारकों या भारतीय धार्मिक संगठनों के हाथों में सौंप दिया।

स्वतन्त्र भारत को शिक्षा की कल्पना में मौलिक परिवर्तन करना उचित था परन्तु हमारी राष्ट्रीय सरकार आज अंग्रेजों की परम्परा पर चल रही है। वह शिक्षा को पूँजी विनियोग न मानकर, उसे सरकारी क्रिया-कलाप की सूची में अंतिम स्थान देती है। यही कारण है कि पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा के मद में व्यय राशि कम रक्खी जाती है और जब कभी बढ़ती हुई कीमतों अथवा आकस्मिक कारणों से बचत का प्रश्न उठता है, तो शिक्षा के मद में 'कटौती' सबसे पहले की जाती है। स्वतन्त्रता के बाद माध्यमिक तथा अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तरों पर शैक्षिक सुधार करने के लिए मुदालियर और कोठारी आयोग गठित किये गये परन्तु चूँकि हमारे राजनीतिक शिक्षा को एक अनावश्यक क्रिया समझते हैं, इसलिए इन आयोगों की संस्तुतियों को क्रियान्विति करने के लिए धन जुटाना आवश्यक नहीं समझा। शैक्षिक सुधारों के लिए उत्सुक शिक्षामंत्रियों; जैसे–सर्वश्री छागला और त्रिगुणसेन को त्यागपत्र देना पड़ा। इस प्रकार देश की राजनीति शिक्षा पर हावी बनकर समस्या उत्पन्न करती रही है।

शिक्षा की निरुद्देश्यता

अंग्रेजों के शासनकाल में उनकी राजनीति के कारण ही शिक्षा की निरुद्देश्यता की समस्या उत्पन्न हुई। वह समस्या आज भी हमारी अनिश्चयात्मक राजनीति के कारण बनी हुई है। अंग्रेजों ने भारत को गुलाम बनाये रखने के लिए रोज़ी-रोटी कमाने तथा 'क्लर्क' पैदा करने का उद्देश्य सामने रख कर शिक्षा का प्रावधान किया। आज भी हमारे देश में शिक्षा का उद्देश्य पढ़े-लिखे बेरोजगारी की मार से पीड़ित नवयुवक तैयार करना है। कितने ही आयोग और समितियाँ इस प्रश्न पर विचार करने के लिए बनाये गए पर शिक्षा निरुद्देश्य बनी हुई है। अपने शासन को बनाये रखने के लिए अंग्रेजों ने चतुरतापूर्वक 'क्लर्क' और काले अफसर पैदा करने वाली शिक्षा को प्रश्रय देकर जो बीज बोया था, उससे विषवृक्ष पैदा हुआ है। देश में करोड़ों शिक्षित बेरोजगार युवाजन हिंसात्मक आन्दोलन कर रहे हैं और जो नौकरी में लगे हैं, वे उत्पादन से विमुख होकर उत्तरदायित्वहीनता और भ्रष्टाचार के शिकार हैं।

भारतीय राजनीतिज्ञ इस राजरोग से परिचित हैं परन्तु वे जानबूझ कर कोई साहसिक कदम नहीं उठाते। शिक्षा के उद्देश्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन न कर सकने के कारण युवावर्ग में आक्रोश बढ़ता जा रहा है। इस स्थिति के लिए हमारे राजनीतिज्ञ और भारतीय राजनीति जिम्मेदार है, महात्मा गांधी ने 'क्लर्क' बनाने वाली शिक्षा के स्थान पर आत्मनिर्भर बनाने वाली बुनियादी शिक्षा की, जो वर्गहीन समाज बना सकती थी, रूपरेखा देश के सामने प्रस्तुत की थी और आशा थी कि स्वतन्त्रता के बाद अंग्रेजों की राजनीति प्रेरित शिक्षा-प्रणाली नष्ट करके हमारे राजनीतिज्ञ बुनियादी शिक्षा को भारतीय शिक्षा-प्रणाली का आधार बनावेंगे परन्तु भला हो इस देश की राजनीति का, कि कोई परिवर्तन अब तक नहीं किया गया है। यद्यपि यहाँ समाजवाद की बड़ी धूम है परन्तु राजनीतिज्ञ नहीं चाहते कि शोषक वर्ग नष्ट हो; वे सफेदपोश नौकरशाही, पूँजीपति वर्ग जो अंग्रेजी शिक्षा की देन है, अभी भी सुरक्षित रखना चाहते हैं। 'उत्पादन-प्रधान शिक्षा', 'रोजगार केन्द्रित शिक्षा' आदि नारे लगाये जाते हैं; इन सबके पीछे गांधीजी का विचार काम कर रहा है परन्तु बुनियादी शिक्षा को जानबूझ कर नकारा जा रहा है। राजनीतिज्ञों ने आज़ादी के बाद, भारी उद्योगों की मृगमरीचिका में पड़कर विदेशों की नकल करना प्रारम्भ कर दिया; वे यहाँ भौतिक समृद्धि और झूठी शान से भरी जीवन-प्रणाली लाना चाहते हैं; देश को रूस और अमरीका के रास्ते पर ले जाना चाहते हैं। वास्तव में इन सब गतिविधियों के पीछे एक राजनैतिक चाल यह है कि आम जनता भारतीय आदर्शों से विमुख होकर मानसिक दासता में फँसी रहे और आज़ादी के मधुर फल से वंचित रहे। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए ही वे शिक्षा को निरुद्देश्य बनाये रखना चाहते हैं।

शैक्षिक प्रशासन की विशृंखलता

अंग्रेजों ने शिक्षा-व्यवस्था को अपने हाथों में न लेकर ग़ैर-सरकारी संगठनों और साम्प्रदायिक संस्थाओं के हाथों में छोड़ दिया था। यह एक राजनैतिक चाल थी। वे देश में एक समान शिक्षा-व्यवस्था लागू करके भारतीय जनों में राष्ट्रीय तथा भावात्मक एकता नहीं पैदा करना चाहते थे। धर्मनिरपेक्षता के नाम पर वे हर जाति और सम्प्रदाय की शिक्षा-संस्थाएँ चलने देकर, नयी पीढ़ी में भेदभाव की प्रवृत्ति पैदा करना चाहते थे। यही कारण है कि शिक्षित समाज में जब जागृति हुई तो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन और पारसी आदि सम्प्रदायों में अपने अस्तित्व का बोध, जो मुगलकाल में नष्टप्राय था, पैदा हुआ। विशेष रूप से मुसलमानों में अलगाव की भावना पैदा हुई।

अंग्रेजों की इस नीति से हमारी शिक्षा में धर्म-निरपेक्षता का सूत्रपात हुआ। आज़ादी के बाद प्रजातंत्र और धार्मिक तथा वैचारिक स्वतन्त्रता के नाम पर धर्म-निरपेक्षता को शिक्षा-नीति का अंग बना लिया गया। इससे अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। जब नया सविधान बना, तो शिक्षा की एक समान व्यवस्था लाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला क़ानून नहीं पास हो सका। आज भी ग़ैर-सरकारी साम्प्रदायिक और जातीय संस्थाएँ ऐसे क़ानून का विरोध कर रही हैं। ये संस्थाएँ भ्रष्टाचार का गढ़ हैं, उनमें छात्रों और अध्यापकों का भयंकर शोषण होता है परन्तु जब भी सरकार उन पर नियंत्रण करने के लिए कोई कानून बनाना चाहती है, तो वे संस्थाएँ संविधान की शरण लेकर बच जाती हैं। केरल, दिल्ली और उत्तर प्रदेश में ग़ैर-सरकारी संस्थाओं पर सरकारी नियंत्रण राजनीति के कारण नहीं हो पाया। केरल में कांग्रेस ने अपनी शक्ति जमाये रखने के लिए कुछ सम्प्रदायों को प्रसन्न करना आवश्यक समझा, जिनके हाथ में शिक्षा-संस्थाएँ थीं। कोठारी आयोग द्वारा 'कॉमन स्कूल' के विचार को व्यावहारिक रूप देने पर बल दिया गया था परन्तु आज भी खर्चीले पब्लिक स्कूल न केवल बने हुए हैं अपितु उनकी संख्या में भी वृद्धि हो रही है। सैनिक तथा केन्द्रीय स्कूल इन खर्चीले पब्लिक स्कूलों के पैटर्न पर खोले जा रहे हैं, जिनमें उच्च प्रशासनिक वर्ग के बच्चे पढ़ सकेंगे। देश की राजनीति शिक्षा में सुधार नहीं लाना चाहती।

शिक्षा में सरकारी प्रयत्न जो कुछ भी हैं, बड़े विश्रृंखल रूप में वर्तमान हैं। राजनीतिज्ञों ने संविधान इस प्रकार तैयार किया है कि प्राथमिक शिक्षा स्थानीय प्रशासन का, माध्यमिक शिक्षा राज्य का, और उच्च शिक्षा केन्द्र तथा राज्य—दोनों का विषय है। देश में भाषा, माध्यम, पाठ्यक्रम, अध्यापकों के वेतनक्रमों तथा प्रबन्ध आदि की विभिन्न राज्यों में विभिन्न प्रकार की व्यवस्था है। केन्द्र राज्यों की शिक्षा-नीति में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। संविधान की यह स्थिति बदली नहीं जा सकती; क्योंकि ग़ैर-सरकारी संस्थाओं पर राजनीतिज्ञों का वर्चस्व है। सर्वेक्षण से यह सरलता से पता चल सकता है कि अनेकानेक प्राइवेट संस्थाओं पर लोकसभा तथा विधान-सभाओं के सदस्यों का आधिपत्य है, जो अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए शिक्षा-सुधारों का विरोध करते हैं। इन संस्थाओं में भ्रष्टाचार तथा अनुदान के दुरुपयोग की शिकायतें पायी जाती हैं; यह सर्वविदित है परन्तु राजनीतिज्ञों के बल पर सब कुछ चल रहा है।

माध्यम की समस्या

अंग्रेजी राजनीति ने इस देश में शिक्षा के माध्यम की समस्या को जन्म दिया था। मैकाले ने 'राजनीति' के आधार पर 'अंग्रेजी' को शिक्षा का माध्यम बनवाया था। वह चाहता था कि अंग्रेजी माध्यम से पढ़-लिखकर भारतीय जन अपनी संस्कृति से विरक्त होकर पाश्चात्य रंग में रँग जाय। उसकी कूटनीति सफल हुई और अंग्रेजी के प्रति भारतीयों का मोह इतना प्रबल हो गया कि स्वतन्त्र होने पर भी वे राष्ट्रभाषा हिन्दी और भारतीय भाषाओं का विरोध करते हुए अंग्रेजी माध्यम की माँग कर रहे हैं। माध्यम के प्रश्न ने देश-भर में कटुता पैदा कर दी है और छात्रों का अपार अहित हो रहा है। माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर हर राज्य में शिक्षा का माध्यय भारतीय भाषाएँ हैं। जब छात्र अपनी मातृभाषा के माध्यम छोड़कर उच्च शिक्षा स्तर पर अंग्रेजी के माध्यम को स्वीकार करता है तो उसकी शैक्षिक प्रगति पर बुरा असर पड़ता है। महात्मा गांधी ने इस तथ्य को पहले ही स्पष्ट कर दिया था और अंग्रेजी माध्यम का विरोध किया था परन्तु इस समस्या को राजनीतिज्ञ और नौकरशाही हल नहीं होने देती। यह लोग पहले कई पीढ़ियों से अंग्रेजी पर अधिकार कर चुकने के कारण, यह चाहते हैं कि उनकी सन्तानें अंग्रेजी में अग्रगण्य होने के कारण नौकरियों और सुविधा की जगहों पर बनी रहें। वास्तव में दक्षिण में हिन्दी का विरोध मातृभाषा प्रेम के कारण नहीं वरन् स्वार्थपूर्ण राजनीति के कारण हुआ है।

छात्र-समस्या

शिक्षा-जगत् की सबसे अधिक भयावह समस्या छात्रों की है। छात्र शिक्षा-व्यवस्था की व्यर्थता के कारण अशांत और उद्वेलित हैं। उनकी अपनी वास्तविक समस्याएँ हैं परन्तु उनका विक्षोभ विभिन्न रूपों में फूट पड़ता है। चूँकि छात्रों में संगठन है, उत्साह है और युवाशक्ति है, इसलिए सरकार को उनसे दबना पड़ता है। इसलिए प्रारम्भ में स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय छात्रों को अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए हमारे राजनीतिज्ञों ने आमंत्रित किया था। आजादी के बाद छात्र राजनीति में भाग लेने लगे और विरोधी दल छात्र-शक्ति का उपयोग करने लगे। अब छात्र हर आन्दोलन में शरीक हो जाते हैं, चाहे वह राज्य विभाजन का प्रश्न हो, माध्यम का प्रश्न हो, किसी उद्योग की स्थापना का प्रश्न हो या कोई अन्य हो। अब तो छात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनैतिक परिवर्तन के लिए प्रयत्नशील हैं; गुजरात और बिहार की घटनाएँ हमारे सामने हैं। विश्वविद्यालयों के प्रांगण राजनीति का अखाड़ा बन चुके हैं। वास्तव मे छात्रों को राजनीति में घसीटने वाले हमारे राजनीतिज्ञ हैं और वही छात्रों को राजनीति से अलग रहने का उपदेश देते हैं।

आज हमारी शिक्षा राजनीति के अभिशाप से ग्रस्त है। शिक्षा के प्रश्नों के साथ राजनीति के प्रश्न जोड़ दिए जाते हैं। फल यह होता है कि समस्याएँ सुलझने के बजाय उलझती जा रही हैं। शिक्षा और राजनीति के बीच द्वन्द्व की स्थिति पैदा होने से ही आज हमारे देश को अधोगति हो रही है।

[पृष्ठ १६८ का शेषांश]

राजनीतिक दल अपनी गतिविधियों को केवल मात्र शिक्षकों के हितों तक ही सीमित नहीं रख सकता और उसे अन्य सभी मसलों पर भी दृष्टि रखनी पड़ती है, यह आशा नहीं की जा सकती कि सभी शिक्षक अन्य सभी मसलों पर भी एकमत होंगे। अतः परिणाम यह हो सकता है कि वे अलग-अलग दलों में बँट जायँ और इस प्रकार उनका बनाया हुआ राजनीतिक दल छिन्न-भिन्न हो जाए। श्री डी० पी० मिश्र, जो शिक्षक संगठनों के सक्रिय राजनीति में प्रवेश के प्रबल समर्थक रहे हैं, कुछ वर्षों पूर्व इस सम्बन्ध में स्वयं लिख चुके हैं कि "यदि कोई शिक्षक संगठन अपने आप को किसी राजनीतिक दल का रूप दे लेता है तो उसके छिन्न-भिन्न हो जाने की प्रबल सम्भावनाएँ हैं क्योंकि सभी शिक्षकों के सभी मसलों पर समान विचार नहीं हो सकेंगे और वे शीघ्र ही भिन्न-भिन्न मार्ग अपना लेंगे।" अतः कहा जा सकता है कि किसी भी शिक्षक संगठन के लिए अपने को राजनीतिक दल का रूप देना या किसी एक राजनीतिक दल से सम्बद्ध हो जाना आत्मघाती सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार विश्व शिक्षक संघ डब्ल्यू० सी० पी० टी० ओ० का यह परामर्श कि "शिक्षक संगठनों को अपना अराजनीतिक रूप बनाये रखना चाहिए और अपने आपको किसी राजनीतिक दल के नियन्त्रण में रख देने की स्थिति में नहीं आने देना चाहिए"—बुद्धिमत्तापूर्ण प्रतीत होता है।

परन्तु तब भी यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो रह ही जाता है कि क्या देश की वर्तमान व्यवस्था में शिक्षक संगठन (अथवा अन्य कोई भी व्यावसायिक वर्ग) अपने आपको दलगत राजनीति से सर्वथा पृथक् रख सकता है। इस तथ्य से कोई इंकार नहीं कर सकता कि वर्तमान जटिल एवं व्यस्त सामाजिक एवं शासन-व्यवस्था में किसी की बात पर तब तक प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता जब तक कि उस ओर ध्यान आकृष्ट न किया जाय। किसी भी लाभ को प्राप्त करने के लिए अथवा किसी भी कष्ट का निराकरण कराने के लिए किसी-न-किसी रूप में दबाव डालना प्रत्येक वर्ग के लिए अनिवार्य हो जाता है। और चूँकि प्रजातान्त्रिक शासन-व्यवस्था में जनमत को अपने पक्ष में करने और प्रभावी दबाव डालने के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान विधान-सभाएँ अथवा संसद हैं, इसलिए प्रत्येक वर्ग के लिए अनिवार्य हो जाता है कि वह निर्वाचित सदस्यों तक पहुँचे। प्रायः देखने में आता है कि विरोधी दलों के सदस्य किसी भी वर्ग की माँगों का समर्थन करने के लिए तैयार रहते हैं, कम-से-कम अपनी शाब्दिक सहानुभूति देने के लिए तो सदैव ही तत्पर रहते हैं। सत्तारूढ़ दल के सदस्य प्रायः अपने दलगत निर्णयों से बँधे रहते हैं। वैसे दोनों ही पक्ष प्रत्येक स्थिति में अपने राजनीतिक उद्देश्य प्राप्त करना चाहते हैं। यह भी स्पष्ट है कि व्यावसायिक संगठनों को भी अपनी माँगों के विषय में समझौता करना ही पड़ता है। अब प्रश्न यह रह जाता है कि वे समझौता करने में किस सीमा तक जायँ। यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है और इस पर प्रत्येक संगठन को अत्यन्त सावधानीपूर्वक विचार करके ही कोई निर्णय लेना चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे निर्णय प्रत्येक प्रश्न के विषय में लिए जाने चाहिए। और इस सम्बन्ध में शिक्षक संगठनों को (अथवा किसी अन्य व्यावसायिक संगठन को) बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है। जैसा कि डब्ल्यू० सी० पी० टी० ओ० के भूतपूर्व अध्यक्ष सर रोनाल्ड गोल्ड ने परामर्श दिया है—"शिक्षक संघ को अपनी दृष्टि पूर्णतया अपने उद्देश्यों पर ही केन्द्रित रखनी चाहिए और ऐसे संगठनों से अधिक सामीप्य स्थापित नहीं करना चाहिए जिनके उद्देश्य इतने अधिक व्यापक हों कि वे शिक्षक संगठनों के मूलभूत उद्देश्यों के मार्ग में बाधक बन जायँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनीति के सन्दर्भ में विभिन्न शैक्षिक समस्याएँ

श्री राधावल्लभ उपाध्याय
दयानन्द कालेज, अजमेर

यह एक निर्विवाद सत्य है कि किसी भी राष्ट्र की शिक्षा-प्रणाली वहाँ की तात्कालिक राजनीतिक विचारधारा एवं जीवन-दर्शन के प्रभाव से वंचित नहीं रह सकती। किन्तु उस राष्ट्र के लिए क्या कहा जाय जहाँ की राजनीतिक विचारधारा 'राम-नाम की लूट है, लूटी जाय सो लूट' के सिद्धान्त पर अवलम्बित हो। राजनीतिक विचारधारा कोई-सी भी हो किन्तु उसका परिणाम तो इसको क्रियान्वित करने वालों की मनोवृत्ति, कर्त्तव्यपरायणता, चिन्तन के स्तर पर निर्भर करता है। स्वतन्त्र होने के बाद यहाँ पर लोकतन्त्र को अपनाया गया, किन्तु इसके लिए क्या किया जा सकता है कि इसको प्रतिपादित करने वाले ही इसका गला घोंटने लगे। 'राम-नाम की लूट' के कथन का अनुसरण करने वाले राजनीतिज्ञों की नीतियों का दुष्परिणाम हमको भारत के वर्तमान चित्र को देखने पर स्पष्ट होने लगता है—

मँहगाई, भ्रष्टाचार, जमाखोरी एवं चोरबाजारी का साम्राज्य, प्रतिदिन बाजारों में 'हमारी माँगें पूरी करो' का नारा लगाता हुआ मानव-समुदाय, मिलों एवं कारखानों के मुख्यद्वार पर कभी-कभी लटकते हुए बड़े-बड़े ताले, दुकानों के सामने अनुशासनप्रिय भारतीयों की लम्बी कतारें और अन्त में अभावों का साम्राज्य। यह क्या? परीक्षा-भवन से नारे लगाती 'प्रश्नपत्र कठिन हैं', छात्रों की भीड़, आचार्य एवं उपकुलपति का घिराव करते हुए भारत के कर्णधार, मादक द्रव्यों का सेवन करके सड़कों पर झूमकर चलते हुए नवयुवक एवं नवयुवतियाँ। यह है—भारत का चित्र, जिसका निर्माण हमारे कर्मठ राजनीतिज्ञ पिछले २७ वर्षों में अथक परिश्रम करके पूरा कर सके हैं!

१५ अगस्त, १९४७ का ऊषाकाल और भारतीय नेताओं की घोषणा कि भारत में जनतन्त्र शासन-प्रणाली को अपनाया जायेगा। जनतन्त्र सरल भाषा में 'प्रजा का राज्य, प्रजा के लिए एवं प्रजा के द्वारा' स्पष्ट किया जा सकता है। किन्तु हमारे देश में प्रजातन्त्र का यही सरल अर्थ भारतीय नेताओं के मस्तिष्क में स्पष्ट हो सका। यह ठीक है कि प्रजा का शासन प्रजा के द्वारा होना चाहिए। किन्तु शासन चलाने के लिए प्रजा कैसी होनी चाहिए? इस प्रश्न पर विचार नहीं किया। जनतंत्र उसी देश में सफल हो सकता है जहाँ की प्रजा शिक्षित हो, चिन्तनशील हो, राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत हो तथा समस्याओं का तार्किक विश्लेषण करके समाधान ढूँढ़ सके। नेतृत्व करने के गुण हों एवं साथ ही प्रजा अन्धानुकरण करने वाली न हो। इन समस्त गुणों का विकास शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। दूसरे शब्दों में, जनतन्त्र का आधार शिक्षा ही होती है। हमारे देश में यह आधार ही उपेक्षित रहा। शिक्षा के साथ प्रारम्भ से ही केन्द्रीय सरकार का सौतेला व्यवहार रहा। इसको राज्य का विषय बना दिया गया। परिणामतः शिक्षा का गुणात्मक अथवा संख्यात्मक विस्तार संतोषजनक न रहा। आज भी यदि जनता के प्रतिनिधियों की शैक्षिक योग्यता का सर्वेक्षण किया जाय तो अधिकांश प्रतिनिधि मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त भी नहीं मिलेंगे। क्या ऐसे जनप्रतिनिधियों से शिक्षा के विकास में योगदान की हम आशा कर सकते हैं। स्पष्ट है कि जनतन्त्र की आधारशिला की उपेक्षा के कारण २७ वर्षों में भी लोकतन्त्र का शुद्ध रूप अभी तक उभर कर सामने नहीं आ सका है।

शिक्षा-जगत् अनेक समस्याओं से ग्रसित है। इसके लिए हम लोकतान्त्रिक राजनीतिक विचारधारा को दोष नहीं दे सकते। इसके लिए तो भारतीय नेताओं की अपनी ही राजनीति उत्तरदायी है। भारत की राजनीति के कारण आज तक भाषा-समस्या का कोई निश्चित हल नहीं निकला। परिणाम यह है कि आज का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छात्र न तो अपनी क्षेत्रीय भाषा को शुद्ध लिख पाता है और न हिन्दी या अंग्रेजी को। उसका किसी भाषा पर इतना अधिकार नहीं है कि वह अपने को ठीक प्रकार से दूसरों के समक्ष अभिव्यक्त कर सके। कभी विद्यालयों में द्विभाषा-सूत्र अपनाया जाता है तो कभी त्रिभाषा-सूत्र। आज भारत में व्याप्त राजनीति जनता से वोट प्राप्त करके बहुमत प्राप्त करने तक सीमित है। यही कारण है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा अवश्य बनाया गया किन्तु दक्षिण भारत की जनता को प्रसन्न करने के लिए आंग्ल भाषा के प्रयोग की अवधि और आगे बढ़ा दी। एक ओर राष्ट्रीय एकता की बात कही जाती है। किन्तु राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए सर्वाधिक आवश्यक तत्त्व 'एक भाषा' के शिक्षण एवं प्रयोग की उपेक्षा की जा रही है। आज भी भारत के अनेक राज्यों में हिन्दी का अध्ययन छात्रों के लिए अनिवार्य नहीं है। क्योंकि शिक्षा, केन्द्रीय सरकार का विषय न होने के कारण वह किसी राज्य पर दबाव नहीं डाल सकती है। इधर अल्पसंख्यक लोगों ने देखा कि भारत की विभिन्न राजनैतिक पार्टियाँ वोट के लिए उन पर निर्भर हैं तो उन्होंने भी उर्दू भाषा का अध्ययन अनिवार्य बनाने की माँग की। नेताओं की पद-लोलुपता एवं स्वार्थ के कारण आज भी भाषा की समस्या अधर में लटकी हुई है।

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद भारत को धर्म-निरपेक्ष एवं समाजवादी राष्ट्र बनाने का संकल्प लिया गया। यहाँ पर जातिविहीन एवं वर्गविहीन समाज की स्थापना का आदर्श रखा गया। इन दो आदर्शों की प्राप्ति के लिए शिक्षा में जो परिवर्तन अपेक्षित थे, उन पर ध्यान ही नहीं दिया। इन दो आदर्शों के संकल्प ने शिक्षा के क्षेत्र में दो समस्याओं को जन्म दिया। प्रथम तो धर्म-प्रधान राष्ट्र न होने से धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा को पाठ्यक्रम में से निकाल दिया गया। इसका परिणाम आज भारतीय समाज में देखने को मिलता है—नैतिकता का गला घोंटा जा रहा है, चरित्रहीनता का बोलबाला है, रिश्वतखोरी एवं चोरबाजारी का ताण्डव नृत्य हो रहा है, सांस्कृतिक परम्पराओं को फन्दा लगाकर चौराहों पर लटकाया जा रहा है। राष्ट्रीय जीवन के प्रति उदासीनता बढ़ रही है और इन सबको हमारे प्रिय नेतागण यह कहकर टाल देते हैं कि सामाजिक परिवर्तन के काल में प्राचीन एवं नवीन आस्थाओं के मध्य द्वन्द्व का चलना अवश्यम्भावी है। भारत की समस्त राजनैतिक पार्टियों द्वारा सभी धर्मावलम्बियों को प्रसन्न करने की नीति के कारण धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का प्रश्न अधर में लटका हुआ है। क्या धर्मप्रधान शिक्षा को पाठ्यक्रम में से निकाल देने से साम्प्रदायिक दंगे कम हुए हैं। धर्म तो व्यक्ति को अनुशासनबद्ध रहना सिखाता है। यह पाशविक वृत्तियों पर नियन्त्रण कर मानव का आध्यात्मिक एवं आत्मिक विकास करता है।

भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने भारत में समाजवाद लाने का संकल्प लिया। उनकी पुत्री एवं वर्तमान प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी भी अपने भाषणों में बुलन्द आवाज से वर्गविहीन समाज की रचना पर जोर देती हैं। वर्गविहीन समाज जातिवाद से ऊपर उठकर धनवान एवं निर्धनों के मध्य स्थित खाई को समाप्त करेगा। क्या भारत में व्याप्त वर्तमान राजनीति जातिवाद एवं धनवान और निर्धनों के मध्य अन्तर को समाप्त करने में सफल हो सकी है। समाज में नवीन परम्पराओं, नवीन विचारधाराओं को लाने का उचित साधन शिक्षा है। किन्तु भारत की सरकार जब शिक्षा के क्षेत्र में ही अभी तक समानता नहीं ला सकी है तो समाज में वर्ग-भेद को समाप्त करने का विचार स्वप्न-सा प्रतीत होता है। समाज में आज यह चर्चा का विषय है कि **पब्लिक स्कूल एवं परम्परागत विद्यालय** जब तक चल रहे हैं तब तक क्या समाजवाद लाया जा सकता है। बड़े-बड़े नेता एवं उच्च पदों पर आसीन अधिकारी अपने बच्चों को उत्तम प्रकार की शिक्षा दिलाने के लिए पब्लिक स्कूलों के पक्षपाती हैं। क्या इन विद्यालयों से निकलने वाले छात्र साधारण विद्यालय के छात्रों के साथ समानता का व्यवहार करेंगे। कदापि नहीं। पब्लिक स्कूल के छात्रों की रग-रग में यह भर दिया जाता है कि उनका तो एक वर्ग अलग ही है और जनसाधारण से वे पृथक् हैं। जब तक शिक्षा के क्षेत्र में यह वर्ग-भेद रहेगा तब तक समाजवाद की स्थापना एक स्वप्न ही है। भारतीय नेताओं की दूषित राजनीति का परिणाम है कि आज तक हमारे देश में कोई शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली अभी तक उभर कर नहीं आ सकी है। परिणाम है—भारतीय नागरिकों में राष्ट्रीय भावना का अभाव।

आग की लपटों में जलते हुए विश्वविद्यालय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालय भवन के टूटे हुए दरवाजे एवं खिड़कियाँ, प्रयोगशालाओं में यन्त्रों का टूटा हुआ ढेर, उपकुलपतियों का घिराव के द्वारा स्वागत करती छात्रों की भीड़, अध्यापक एवं अध्यापकों को चाकू की धार का दर्शन कराते हुए छात्र आदि क्रियाकलाप आज के छात्र-समुदाय के जीवन-अंग बन गए हैं। इन क्रियाकलापों को शिक्षाशास्त्री **विद्रोह, संघर्ष, अनुशासनहीनता, मानसिक असंतोष** आदि विभिन्न नामों से पुकारते हैं। पर यह सब क्यों? इसके लिए जहाँ अनेक कारण उत्तरदायी हैं उनके साथ ही राजनीति मुख्यतः उत्तरदायी है। भारत में अनेक राजनीतिक पार्टियाँ हैं। विरोधी पार्टियाँ सरकार का विरोध करने के लिए अवसर की ताक में रहती हैं। ये नवयुवक छात्रों को इसके लिए साधन बनाती हैं। इसके साथ ही विश्वविद्यालयों की आन्तरिक राजनीति इन कार्य-कलापों को बढ़ावा देती है। देश की राजनीति का प्रभाव यह पड़ा कि आज विश्वविद्यालयों में अध्यापक समाज भी कई पार्टियों में बँट गया है। इन्होंने भी अब अपने शैक्षिक और अनुसंधान कार्यों से मुँह मोड़ लिया है और राजनीति द्वारा अपने हित को आगे बढ़ाने में लग गए हैं।

आज सरकार की नीति शिक्षा के संख्यात्मक प्रसार और गुणात्मक ह्रास से सम्बन्धित है। भारत की विभिन्न राजनैतिक पार्टियाँ प्रचार में अधिक विश्वास करती हैं। इसी कारण कांग्रेस पार्टी के सत्ताधारी दल ने शिक्षा के संख्यात्मक प्रसार पर विशेष ध्यान दिया और अपनी इस नीति के आधार पर अनेक गांवों में प्राथमिक, जूनियर एवं सैकण्डरी स्कूल स्थापित कर दिए। आज ये विद्यालय अपनी हीन दशा पर आँसू बहा रहे हैं। विद्यालय-भवन के नाम पर एक या दो कच्चे कमरे हैं, छात्रों के बैठने के लिए टाट या चटाइयाँ भी नहीं हैं, पीने के पानी की व्यवस्था नहीं है, श्यामपट्ट या अन्य अध्यापन की सामग्री का पूर्ण अभाव है। इसका परिणाम यह है कि **शिक्षा का स्तर** गिरता जा रहा है। पुस्तकों का बोझ तो बढ़ गया है किन्तु छात्रों के ज्ञान का स्तर गिरता जा रहा है। आज मैट्रिक उत्तीर्ण छात्र भाषा शुद्ध नहीं लिख पाता है, गणित के प्रश्न हल नहीं कर सकता है। शिक्षा के प्रसार से सम्बन्धित सांख्यिकी जनता की सन्तुष्टि के लिए प्रस्तुत करके अपनी पार्टी को लोकप्रिय बनाने से क्या लाभ?

भारत में आज भी दो प्रकार के विद्यालय–राजकीय एवं व्यक्तिगत विद्यमान हैं। व्यक्तिगत विद्यालयों के प्रबन्धक आजकल किसी-न-किसी राजनैतिक पार्टी से सम्बन्धित नेता होता है जो कि किसी सत्तारूढ़ दल से किसी-न-किसी रूप में सम्बन्धित होने के कारण विद्यालयों में अध्यापकों एवं छात्रों का शोषण करता है। आज देश में अनेक विद्यालय व्यापारिक दृष्टिकोण के आधार पर चल रहे हैं। ये आमदनी का साधन बना लिए गये हैं। दूसरी ओर राजकीय विद्यालयों में सत्तारूढ़दल का प्रभाव पाया जाता है। इन विद्यालयों में सेवारत अध्यापकों के स्थानान्तरण आए-दिन होते रहते हैं। ताश के पत्तों की भाँति या शतरंज की गोटों की भाँति ये नेतागण अपने अध्यापकों को अपने निकटवर्ती विद्यालयों में बिठाने के प्रयत्न करते रहते हैं। जिस अध्यापक को यह ज्ञात है कि पता नहीं कब उसके स्थानांतरण के आदेश आ जायें, वह क्यों अध्यापन में रुचि लेगा। ऐसे अध्यापक में कभी भी संस्था के प्रति या छात्रों के साथ अपनत्व का भाव जाग्रत नहीं होता है। लेखक को कई राजकीय विद्यालय एवं महाविद्यालयों में भ्रमण करने का अवसर मिला है। वहाँ के अध्यापक-कक्ष में बैठने पर चर्चा का विषय स्थानांतरण ही सुनने को मिला है। ऐसे वातावरण में न तो अध्यापक अध्ययन करता है और न शोध-कार्य करता है। आज की दूषित राजनीति का यह प्रभाव है कि न तो छात्र पढ़ना चाहता है और न अध्यापक पढ़ाना चाहता है।

गत २७ वर्षों में शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा-प्रणाली, पाठ्यक्रम आदि जैसे महत्त्वपूर्ण विषय अनिश्चित-से चल रहे हैं। कभी मैट्रिक, इण्टर तो कभी सेकण्डरी, हायर सेकण्डरी और स्नातक का २ या ३ वर्ष का पाठ्यक्रम चलता है। इधर कोठारी आयोग ने इण्टर पुनः प्रारम्भ करने तथा बी० ए० का ३ वर्ष का पाठ्यक्रम चलाने का सुझाव दिया। कभी व्यवसाय-प्रधान पाठ्यक्रम की चर्चा सुनने को मिलती है तो कभी वाणिज्य-प्रधान पाठ्यक्रम जोर पकड़ता है। पिछले वर्षों में विज्ञान की शिक्षा पर बल दिया गया था। यह सम्पूर्ण स्थिति आज की राजनीति का ही प्रभाव है। जब तक शिक्षा-जगत् को दलगत राजनीति के दाँव-पेच से पृथक् नहीं रखा जाता तब तक भारत में शिक्षा-समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1974 के हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

अर्थशास्त्र

आर्थिक संगठन	बी. एल. ओझा	15·00
व्यष्टि अर्थशास्त्र	बी. एल. ओझा	21·00
भारतीय अर्थ व्यवस्था की समस्याएँ	बी. एल. ओझा	18·00
मुद्रा, बैंकिंग तथा राजस्व	बी. एल. ओझा	19·00
इंगलैंड, जापान तथा रूस के आर्थिक विकास के युग प्रवर्त्तक चिन्ह	बी. एल. ओझा	11·00
अर्थशास्त्र के सिद्धान्त	बी. एल. ओझा	21·00
नियोजन तथा आर्थिक विकास	बी. एल. ओझा	24·00
अन्तर्राष्ट्रीय वित्त	बी. एल. ओझा	(प्रेस में)

वाणिज्य

व्यावसायिक संगठन	डा० बी. एस. माथुर : आर. एल. नौलखा	18·00
व्यावसायिक संदेशवाहन तथा विक्रय कला	,, ,,	15·00
कम्पनी अधिनियम तथा सचिवीय पद्धति	,, ,,	24·00

जन्तु विज्ञान

जन्तु विज्ञान	ओ. पी. शर्मा : के. सी. शर्मा : एस. सी. द्विवेदी	17·50
जन्तु कार्यकी एवं पास्थितकी	ओ. पी. शर्मा : के. सी. शर्मा	15·00
Animal Physiology & Ecology	O. P. Sharma & K. C. Sharma	11·50

राजनीति विज्ञान

आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ	डा० वी. के. अरोड़ा	11·00

आदर्श प्रकाशन

चौड़ा रास्ता, जयपुर—3

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनैतिक-सामाजिक चेतना और शिक्षा

भाई योगेन्द्रजीत
प्राचार्य, जियालाल शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, अजमेर

कोई भी राष्ट्र जो प्रगति के पथ पर बढ़ना चाहता है, अपने उद्देश्य तक तभी पहुँच सकता है, जबकि उसमें पर्याप्त मात्रा में राजनैतिक-सामाजिक चेतना हो। राजनैतिक-सामाजिक चेतना का प्रभाव शिक्षा पर पड़ता है और शिक्षा राजनैतिक-सामाजिक चेतना उत्पन्न करती है। दोनों एक-दूसरे पर आश्रित हैं। जब अलक्षेन्द्र अनेक देशों को ध्वस्त करता हुआ, भारतवर्ष की ओर बढ़ा आ रहा था, तब अपना देश कई छोटे-बड़े राज्यों में विभाजित था। ये राज्य आपस में लड़ते-भिड़ते रहते थे। पाटलिपुत्र में नन्दवंश का राज्य-विस्तार में बड़ा अवश्य था, परन्तु वहाँ का सम्राट् भोग-विलास में ही अपना जीवन व्यतीत कर रहा था। समाज में क्या हो रहा है, विदेशी अलक्षेन्द्र भारतवर्ष के उत्तरी-पश्चिमी सीमा से लगने वाले देशों को हड़प रहा है और कभी भी भारतवर्ष को अपने आक्रमण की चपेट में ले सकता है—इन सब बातों की ओर उसका कोई ध्यान नहीं था। ऐसे अँधकारपूर्ण समय में भी समाज के कुछ लोग जाग रहे थे। ऐसे जागृत व्यक्तियों में एक थे–विष्णु गुप्त, जो कालान्तर में चाणक्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। भारतवर्ष की वस्तुस्थिति को देखते हुए विष्णु गुप्त सोच रहे थे कि देश में विदेशी आक्रांताओं का तूफान आने वाला है। कैसे उससे बचा जाए? यहाँ के नरेश तो भोग-विलास में लिप्त हैं और छोटे-बड़े राज्य आपस में लड़ते रहते हैं। विष्णु गुप्त उस समय तक्षशिला विश्वविद्यालय में आचार्य थे। उस समय उन्होंने सोचा कि अपने विद्यार्थियों को इस कार्य के लिए तैयार किया जाए और उनमें राष्ट्र-प्रेम जागृत किया जाए।

इसका परिणाम यह निकला कि जब अलक्षेन्द्र ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया तो चन्द्रगुप्त, युद्धमन्यु जैसे कितने ही, तक्षशिला के विद्यार्थियों ने उसमें सक्रिय भाग लिया। इन विद्यार्थियों के क्रिया-कलाप का ही फल था कि अलक्षेन्द्र को वापस लौटना पड़ा।

एक समय देश में ऐसा भी आया जब बख्तियार खिलजी तथा औरंगज़ेब जैसे विदेशी आक्रांताओं और प्रशासकों ने विक्रमशिला, नालन्दा जैसी महान् शिक्षण-संस्थाओं को ध्वस्त कर डाला, जला डाला तब धर्म ने ही शिक्षा का साधन बन कर राजनैतिक-सामाजिक चेतना उत्पन्न की।

समर्थ रामदास ने मारुति और राम के मठ और मन्दिर स्थापित किए। प्रत्येक मठ के साथ एक व्यायामशाला भी होती थी। ये मठ भी एक प्रकार के विद्यालय ही थे। यहाँ किशोर आते थे और अनेक प्रकार के व्यायाम सीखते थे जिनमें तलवार आदि चलाना भी था। इन किशोरों को बताया जाता था कि मुगल, आदिलशाह तथा निजाम आदि विदेशी प्रशासक हैं। शिवाजी स्वराज्य की स्थापना करना चाहते हैं, अतः सभी को उनके कार्य में सहायता प्रदान करनी चाहिए। शिवाजी के बहुत-से साथी इन मठों से निकले किशोर थे।

जब यूरोपीय जातियाँ भारतवर्ष में आईं तो वे भी लोगों पर अत्याचार करने लगीं। गोआ में पुर्तगाली प्रशासकों ने जनता को सभी प्रकार की स्वतन्त्रता से वंचित कर दिया। किसी बात की माँग करने पर कड़ी से कड़ी यातना दी जाती थी। अंग्रेजों के राज्य में भी फांसी की सजा दी जाती थी, गोलियाँ चलाई जाती थीं, लाठियाँ चलाई जाती थीं, भारतवर्ष से बाहर द्वीपान्तर में भेज कर कड़ी से कड़ी यातनाएँ दी जाती थीं और बन्दीगृहों में डाल दिया जाता था ताकि राजनैतिक-सामाजिक चेतना का विकास न हो। क्रान्तिकारी आन्दोलन के फलस्वरूप १९०५ ई० में देश में जो स्वदेशी आन्दोलन चला, उसमें शिक्षा से भी सहायता ली गई। उस समय अनेक शिक्षण-संस्थाएँ स्थापित की गईं। बंगाल में 'नेशनल एडूकेशन सोसाइटी' की स्थापना की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई। इसने कई महाविद्यालय चलाए, जिनमें कलकत्ता का 'नेशनल कालेज' प्रसिद्ध था।

महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक तथा गोपाल कृष्ण गोखले का योगदान बड़ा महत्त्वपूर्ण था। वहाँ 'डेकन एडूकेशन सोसाइटी' की स्थापना की गई। इसके अंतर्गत 'न्यू इंगलिश स्कूल' तथा 'फर्ग्यूसन कालेज' की स्थापना की गई। लोकमान्य तिलक की प्रेरणा से कई स्थानों पर 'समर्थ विद्यालय' स्थापित किए गए। पंजाब में आर्य समाज द्वारा स्थापित कई विद्यालय तथा महाविद्यालय थे। लाहौर में एक राष्ट्रीय महाविद्यालय की स्थापना की गई। इसके प्राचार्य भाई परमानन्द थे। उत्तर प्रदेश में श्रीमती ऐनी बेसेण्ट ने वाराणसी में 'सेन्ट्रल हिन्दू कालेज' की स्थापना की और राजा महेन्द्र प्रताप ने कई शिक्षण-संस्थाएँ चलाईं।

ये सभी शिक्षण-संस्थाएँ विद्यार्थियों में राजनैतिक-सामाजिक चेतना उत्पन्न कर रही थीं और उन्हें स्वराज्य की ओर प्रेरित कर रही थीं। भगतसिंह और उसके साथी, लाहौर के राष्ट्रीय महाविद्यालय की देन थे।

भारतीय राजनीति में जब गांधी जी का उदय हुआ, तो उन्होंने भी विद्यार्थियों से पूरी-पूरी सहायता ली। १९२१ ई० के आन्दोलन में उन्होंने विद्यार्थियों से कहा कि वे स्कूल, कालेज छोड़ दें और इस आन्दोलन में सम्मिलित हो जायँ। उनके संरक्षण में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की गई। इन शिक्षण-संस्थाओं ने राष्ट्रीय जीवन में एक नवीन राजनैतिक-सामाजिक चेतना उत्पन्न कर दी। इस राजनैतिक-सामाजिक चेतना के फलस्वरूप ही भारत दासता की शृंखलाओं से मुक्त हुआ।

१९४७ ई० में भारतवर्ष का एक बड़ा भू-भाग स्वतन्त्र हुआ। सभी को इस बात की अपेक्षा थी कि गांधी जी जिस राम-राज्य के स्वप्न देखते थे, उसके दर्शन स्वतन्त्र भारत में होंगे तथा देश भौतिक और आध्यात्मिक दोनों रूपों से समृद्ध बनेगा परन्तु ऐसा न हुआ। अवसरवादी लोग प्रशासन में घुस गए। चोरबाजारी, घूँस, भ्रष्टाचार का साम्राज्य चहुँ ओर फैलने लगा। बेकारी, मँहगाई और अनैतिकता दिनों-दिन बढ़ने लगी। 'भ्रष्ट-अभ्रष्ट किसी भी ढग से रुपया इकट्ठा करो', 'खूब मोगैश्वर्य और विषय-विलास का सेवन करो'—यही जीवन-दर्शन समाज को दिया जाने लगा। लोग त्राहि-त्राहि करते थे, परन्तु सब कुछ सहन करते थे। धन और प्रशासन के बल पर प्राप्त बहुमत के सहारे लोकतन्त्रवाद की जड़ें हिलने लगीं। ऐसा लगने लगा कि देश तानाशाही की ओर बढ़ रहा है।

इस प्रकार की स्थिति का सामना तरुण वर्ग या विद्यार्थी समाज ही कर सकता था। भारत के तरुण-वर्ग-विद्यार्थी समाज में आक्रोश था परन्तु दिशा का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं था। इस आक्रोश का स्वरूप विध्वंसात्मक ही था। कुछ बसें जला कर, कुछ तोड़-फोड़ करके, विद्यार्थी तरुण-समाज समझता था कि बस कुछ और करना शेष नहीं रहा। सभी के सामने प्रश्न था कि क्या भारतवर्ष की तरुणाई ठीक दिशा पहचानेगी? क्या उसकी दिशाहीनता ऐसी ही बनी रहेगी। क्या जनतन्त्र में 'जन' की ऐसी उपेक्षा होती रहेगी? इस प्रकार के निराशापूर्ण उद्गारों का कोई अभाव नहीं था।

सहसा इस धूमिल वातावरण में आशा की एक किरण उभर कर सामने आई। स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी और श्री मुंशी के गुजरात में विद्यार्थियों के रूप में भारतवर्ष की तरुणाई ने करवट बदली। बढ़ती मँहगाई तथा भ्रष्ट राजतन्त्र के विरुद्ध युवा आक्रोश ने ठीक स्थान पर प्रहार किया। पहले मँहगाई, चोरबाजारी, भ्रष्टाचार को दूर कर सकने में असमर्थ प्रशासन को त्यागपत्र देना पड़ा और फिर कायर, भ्रष्ट, दल-बदल लोगों की विधानसभा को भंग कर देना पड़ा। तरुण विद्यार्थी समाज ने पुलिस और सेना की गोलियाँ खाकर भी जन-भावनाओं की मशाल को जलाए रखा। आज डा० राजेन्द्र प्रसाद, कविवर दिनकर और जयप्रकाश नारायण के बिहार नमें यह आन्दोलन चल रहा है।

कभी-कभी मन में एक प्रश्न उठता है—विद्यार्थियों में राजनैतिक-सामाजिक चेतना की यह अभिव्यक्ति जो गुजरात में प्रकट हुई है, क्षणिक उन्माद बन कर तो नहीं रह जाएगी? यदि भारत के तरुण विद्यार्थी-समाज की यह राजनैतिक-सामाजिक चेतना, आवश्यकता पड़ने पर अन्य स्थानों पर भी प्रकट होती है तो धन तथा प्रशासन के बल पर प्राप्त विधान-सभाओं का बहुमत जन-भावनाओं को कुचलने में समर्थ नहीं हो सकेगा, तानाशाही प्रवृत्तियाँ बढ़ने नहीं पायेंगी और भारतीय लोकतन्त्र सुरक्षित रह सकेगा। आज की शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए—इस प्रकार की राजनैतिक-सामाजिक चेतना को विद्यार्थियों में विकसित करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शैक्षिक नियोजन और राजनीति

श्री एच० एस० बैस
शिक्षा महाविद्यालय, सागर

शैक्षिक नियोजन वस्तुतः विचारयुक्त यथोचित एवं वैज्ञानिक उपागम है जो राष्ट्रीय समस्याओं का शिक्षा द्वारा समाधान खोजने हेतु नियोजित होता है। इस अर्थ में छात्रों में जिन गुणों और कौशलों को शिक्षाविद् देना चाहते हैं, उनका शिक्षा में प्रयोग शिक्षात्मक नियोजन हो जाता है। देश की भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप व वर्तमान समस्याओं के निराकरण हेतु मानव संसाधनों का विकास किया जाता है। यह निर्भर होता है—व्यक्तियों में विशिष्ट प्रकार के दृष्टिकोण कौशल, ज्ञान, आदतें व व्यवहार पर। अतः शैक्षिक नियोजन भावी आवश्यकताओं व अपेक्षाओं को शैक्षिक प्रक्रिया में अनुवाद कर व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत करने की प्रवधि है।

'शैक्षिक नियोजन' नवीन शब्द नहीं। जब भी समाज में परिवर्तन की आवश्यकता हुई, शैक्षिक नियोजन की आवश्यकता अनुभूत हुई है। ग्रीक सभ्यता में भी ऐसी ही आवश्यकता एथेन्स के समाज को हुई थी। एथेन्स नगर-राज्य में स्थापित उदार प्रजातांत्रिक मान्यताएँ व मूल्य पड़ोसी नगर-राज्यों में प्रचलित मूल्यों के संघर्ष व प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप दूषित हो रहे थे और सम्पूर्ण समाज में उनके प्रति घृणा व ईर्ष्या की भावना जाग्रत हो रही थी तब प्लेटो ने नगर-राज्य की चहारदीवारी के बाहर दूरस्थ नगरों में अपने समाज में व्याप्त असंतोष का समाधान खोजने का प्रयास किया था। स्पार्टा नगर-राज्य यद्यपि प्रतिद्वन्द्वी व एथेन्सवासियों की दृष्टि में हीन राज्य था फिर भी वहाँ के समाज में व्याप्त सामाजिक व्यवस्था व क्रियाशीलता ने प्लेटो को आकर्षित किया था और उसका 'रिपब्लिक' इस सैद्धान्तिक समाधान को व्यावहारिक स्वरूप देने का प्रयास था। रिपब्लिक में प्लेटो ने शिक्षा की एक पूर्ण विकसित व सोद्देश्य प्रक्रिया प्रतिपादित की थी जो एथेन्स नगर की राजनीतिक परिस्थितियों व आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए की गई थी। उसने शालाओं को समाज के सेवक का दर्जा दिया था। उसकी यह दूरदृष्टि वस्तुतः शैक्षिक नियोजन के क्षेत्र में राजनीति के प्रभाव का सम्भवतः एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। कॉमेनियस दूसरा विचारक था जिसने शैक्षिक नियोजन को राष्ट्रीय एकता व साहचर्य की पूर्ति हेतु आवश्यक माना था।

इसी तरह प्रत्येक समाज में उसकी आवश्यकताओं व आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा की प्रक्रिया व्यवस्थित की जाती है। शिक्षा की व्यवस्था के पीछे एक दूरदृष्टि होती है। यह अवश्य है कि दूरदृष्टि उतनी व्यवस्थित, व्यापक व क्रमबद्ध रूप से न डाली गयी हो। आधुनिक युग में, ज्ञान के विस्फोट, जनसंख्या की वृद्धि, उत्पादन-क्षमता के विकास व समृद्धि की आवश्यकता ने प्रत्येक समाज को अपनी शैक्षिक व्यवस्था को संगठित करने, सँवारने, सुधारने व परिष्कृत करने के लिए शैक्षिक नियोजन को अनिवार्य बना दिया है। ऐसा इसलिए भी आवश्यक है, चूँकि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। सामाजिक परिवर्तन अपने आप में एक समिश्रित अभिव्यक्ति है जो सामाजिक जीवन के सभी पक्षों से सम्बन्धित होती है। इसमें समाज का आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, नैतिक एवं धार्मिक सभी पार्श्वों पर परिवर्तन का प्रभाव परिलक्षित होता है। ऐसे सामाजिक परिवर्तन के महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में जब शिक्षा पर दायित्व सौंपे जाते हैं तब निश्चित ही एक लम्बी योजना बनानी आवश्यक हो जाती है। बड़े चिंतन व दूरगामी परिणामों व प्रभावों को आँकना होता है। शैक्षिक नियोजन वस्तुतः नीतियों, प्राथमिकताओं और शैक्षिक प्रक्रिया की लागत के सम्बन्ध में अग्रिम चिंतन हैं, जिसमें आर्थिक एवं राजनैतिक यथार्थताओं को यथोचित स्थान दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बी० ए० एवं एम० ए० कक्षाओं के लिए

हमारे प्रमुख प्रकाशन

JULIUS CAESAR	B. R. Sharma	10·50
THE MERCHANT OF VENICE	B. R. Sharma	10·50
AS YOU LIKE IT	S. N. Sharma	(In Press)
श्री कालिदास—अभिज्ञान-शाकुन्तलम्	सं० डा० रघुवीर शास्त्री	12·00
उत्तर रामचरितम्	व्याख्याकार—आचार्य श्री प्रभुदत्त स्वामी साहित्याचार्य	(प्रेस में)
श्री भर्तृहरि—नीतिशतकम्	आ० विष्णुदत्त शर्मा शास्त्री	4·00
श्री विष्णुशर्मा—अपरीक्षित कारकम्	आ० विष्णुदत्त शर्मा शास्त्री	4·00
श्री अश्वघोष—बुद्धचरितम् (प्रथम सर्ग)	आ० विष्णुदत्त शर्मा शास्त्री	3·00
श्री कालिदास—कुमार सम्भवम् (पंचम सर्ग)	जगन्नाथ व्यास शास्त्री	3·00
श्री दण्ड्याचार्य—विश्रुत चरितम्	जगन्नाथ व्यास शास्त्री	3·00
श्री हृषीकेश भट्टाचार्य—उद्भिज्ज परिषत्	जगन्नाथ व्यास शास्त्री	3·00
श्री वाणभट्ट—शुकनासोपदेश	जगन्नाथ व्यास शास्त्री	2·50
काव्यदीपिका	जगन्नाथ व्यास शास्त्री	2·00
लघुसिद्धान्त कौमुदी	जगन्नाथ व्यास शास्त्री	4·00
मित्रभेद	रजनी अग्रवाल एम. ए.	5·00
मित्र सम्प्राप्ति	डा० रघुवीर शास्त्री	(प्रेस में)

विश्वविद्यालयों के लिये उपयोगी पुस्तकें

काव्यधारा (गुरु प्रसाद टंडन) अनुशीलन	विष्णुशरण 'इन्दु'	8·00
गद्य दर्पण अनुशीलन	,,	7·00
भूले बिसरे चित्र अनुशीलन	,,	6·50
अयोध्याकाण्ड अनुशीलन	,,	2·50
काव्यांग परिचय एवं भक्तिकाल व रीतिकाल अनुशीलन	,,	4·00
काव्यांग अनुशीलन	,,	4·50
हिन्दी गद्य शैली अनुशीलन	,,	3·00
काव्यशास्त्र तथा हिन्दी साहित्य अनुशीलन	,,	6·50
ध्रुवस्वामिनी अनुशीलन	महानन्द वर्मा	4·50
पहला राजा अनुशीलन	,,	8·00
जयवर्धन अनुशीलन	डा० शिवशंकर शर्मा	8·00
कवितावली अनुशीलन	प्रो. सी. डी. शर्मा	4·50
भस्मांकुर अनुशीलन	दामोदर दास गुप्त	5·00
हिन्दी निबन्धानुशीलन	रामकृष्ण कौशिक	4·50
अभिनव एकांकी अनुशीलन	डा० श्रीमति शैल रस्तौगी	3·50
सरल कृषि एवं उद्यान शास्त्र (बी० टी० सी० कक्षाओं के लिए)	एम. एस. त्यागी	2·50

ज्ञान प्रकाशन, सुभाष बाजार, मेरठ—२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है ताकि प्रक्रिया के जीवन-तत्त्व में वृद्धि होती रहे और राज्य एवं छात्रों की आवश्यकताओं को वह पूर्ण करती रहे। स्पष्ट है कि शिक्षा को राज्य एवं समाज के विकास की आवश्यकताओं से सम्बद्ध करना शैक्षिक नियोजन का उद्देश्य हुआ करता है। इस अर्थ में शैक्षिक नियोजन एक सतत् प्रक्रिया हो जाती है जिसके अन्तर्गत अनेक सम्बन्धित प्रश्न व पक्ष जुड़े होते हैं; जैसे—शैक्षिक उद्देश्य का स्पष्टीकरण, वर्तमान परिस्थितियों व प्रवृत्तियों का मूल्यांकन व परीक्षण, वैकल्पों की जाँच व योजना की कार्यान्विति।

शैक्षिक नियोजन को क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक स्वरूप देने का और साथ ही उसे राजनैतिक उद्देश्यों से जोड़ने का भी श्रेय सोवियत रूस को है। १९२३ में सर्वप्रथम वहाँ की प्रथम पंचवर्षीय योजना का सूत्रपात हुआ तब क्रमबद्ध व व्यापक दृष्टि से शिक्षा पर विचार कर उसकी योजना बनाई गई। जो सर्वहारा विचारधारा के अनुरूप रूस में सामाजिक ढाँचे को पुष्ट करने के योग्य हो सके। बोलशेविकों ने तो स्वतन्त्र उद्यम एवं उन्मुक्त बाजार की संकल्पना व मान्यता को ही खत्म कर दिया क्योंकि यह उनकी दृष्टि में सर्वहारा वर्ग को चूसने और 'एक्सप्लाएट' करने का एक तरीका था। इसका विकल्प उन्हें समाजवाद में मिला। लेनिन के शब्दों में, "समाजवाद सामाजिक दृष्टि से उत्पादन की प्रक्रिया को क्रमबद्ध रूप से संगठित करना है ताकि समाज में सभी सदस्यों का सर्वाङ्गीण विकास हो सके और सुख व समृद्धि निश्चित हो सके।" इसके लिए आवश्यक था कि वे अपनी शिक्षा-प्रणाली को व्यवस्थित करते, इसलिए वहाँ के संविधान में और कम्युनिस्ट पार्टी के सम्मेलनों में यह मूलभूत लक्ष्य निर्धारित किया गया कि सभी व्यक्तियों को शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाय। सोवियत संघ में शाला प्रत्येक व्यक्ति में व्यावसायिक, सामान्य, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक अभिवृद्धि के साथ स्वस्थ समायोजित व्यक्तित्व के विकास के साथ जुड़ी है। उसका यह स्वरूप वहाँ के शैक्षिक नियोजन में राजनीति के प्रभाव को परिलक्षित करता है। वहाँ के शैक्षिक उद्देश्यों को देखने से स्पष्ट होता है कि शिक्षा कम्युनिस्ट पार्टी के सामान्य सिद्धान्तों को पूरा करने का वाहन है। कम्युनिस्ट पार्टी का उद्देश्य था—सम्पूर्ण देश को औद्योगीकृत करना, कृषि को संकलित (कलेक्टीवाइजिंग) करना तथा सांस्कृतिक क्रांति लाना। ये तीनों ही राजनैतिक लक्ष्य थे जो कम्युनिस्ट पार्टी के शासन में आने के बाद राष्ट्र के उद्देश्य हुए और साथ ही शिक्षा के।

इसी तरह पश्चिमी जर्मनी है। यद्यपि यहाँ राजनीति (अधिक अच्छी तरह राजनैतिक दल) शिक्षात्मक सुधार और परिणामस्वरूप शैक्षिक नियोजन के लिए युद्ध के बाद लगभग १० वर्षों तक एकमत न हो सके। रूस और पूर्वी जर्मनी का उदाहरण उनके समक्ष था और वे नहीं चाहते थे कि केन्द्र को अधिक शक्तिशाली बनाकर पुनः वैयक्तिक स्वतन्त्रता का हनन कर दिया जाय। किसी सीमा तक परिवर्तन और शैक्षिक नियोजन के प्रति यह उदासीनता हिटलर द्वारा सम्पादित शैक्षिक सुधार के प्रतिक्रियास्वरूप थी। किन्तु १९६० के आसपास एक नई लहर वहाँ प्रविष्ट हुई। १९६३ में चांसलर एडंहार्ड ने शैक्षिक नियोजन के महत्त्व को प्रतिपादित किया और प्रो० पॉल निकेत ने तो शैक्षिक नियोजन को स्वतन्त्रता की प्राप्ति माना और यह विचार व्यक्त किया कि समय की चुनौतियों के प्रति सजगता शैक्षिक नियोजन है। परिणामस्वरूप शैक्षिक पुनर्गठन हेतु नियोजन की विचारधारा आरम्भ हुई। पश्चिमी जर्मनी की सामान्य जनता के विचारों और भावनाओं को ध्वनि देने वाले प्रमुख तीन राजनैतिक दलों (क्रिश्चियन डेमोक्रेट, सोशल डेमोक्रेट, और फ्री डेमोक्रेट) ने शैक्षिक नियोजन हेतु आधारभूत सिद्धान्त दिये जिनके आधार पर शैक्षिक सुविधाओं का प्रसार, प्रत्येक व्यक्ति को अधिकतम शैक्षिक सुविधाओं की प्राप्ति, सामाजिक न्याय और कल्याण के उद्देश्य को स्वीकार करते हुए, प्रतिपादित किए गए।

इंग्लैण्ड में प्रचलित पब्लिक स्कूल, ग्रामर स्कूल और श्रमिक वर्ग हेतु प्राथमिक स्कूल शिक्षा के तीन स्तरीय संगठन को स्पष्ट करने के साथ ही वहाँ की राजनैतिक विचारधारा को भी परिलक्षित करते हैं। उस समाज की राजनैतिक व सामाजिक प्रवृत्तियाँ जो जान-बूझकर या अनजाने ही प्रवाहित हो रही हैं, ऐसी व्यवस्था हेतु उत्तरदायी हैं। वस्तुतः विक्टोरियन काल की समाज-व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती हुई ये शालाएँ आज भी इस मान्यता को स्वीकार करती हुई स्थापित हैं, कि तीनों ही समाज के स्तर कुलीन वर्ग,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यम वर्ग और श्रमिक वर्ग ईश्वरीय न्याय है। जितने भी शासकीय आयोग शिक्षा में सुधार हेतु गठित किए गए, क्लेरेनडॉन, टाउनटन, न्यूकेसल आदि, अलग-अलग स्तरों हेतु ही शिक्षा में सुधार की सिफारिशें देते रहे। टाउनटन कमीशन ने अवश्य तीन प्रकार के ग्रामर स्कूल का सुझाव देकर ऊपर व्यक्त वर्ग-भेद की भावना को खत्म करने का प्रयास किया था, किन्तु फिर भी तीन प्रकार के ग्रामर स्कूल यथार्थतः वहाँ के रूढ़िगत सामाजिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। प्रथम प्रकार के स्कूल बड़े उद्योगपतियों और व्यापारियों के बच्चों के हेतु थे, जो विश्वविद्यालयीन शिक्षा का लक्ष्य रखते थे; द्वितीय वर्ग के स्कूल मध्यम श्रेणी के व्यापारियों व कर्मचारियों के बच्चों हेतु थे जो १६ वर्ष की अवस्था में शालेय शिक्षा समाप्त कर विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा के हेतु तैयार होंगे, और तृतीय स्तर के वे स्कूल थे जो १४ वर्ष की अवस्था तक शिक्षा देने हेतु और विशिष्ट रूप से उन वर्गों के लिए जो निम्न थे, प्रस्तावित किए। अन्य साधारण वर्ग के लिए आयोग ने ग्रामर स्कूल की व्यवस्था को अनुचित बताया।

किन्तु १९४४ के एक्ट के बाद निश्चय ही शैक्षिक नियोजन में नवीन दृष्टिकोण एवं प्रभाव दिखते हैं। "हाऊ अवर फ्यूचर", "हायर एजूकेशन" जैसी रिपोर्ट २०वीं सदी के मध्याह्न में इंग्लैण्ड की शिक्षा-नीति पर समाजशास्त्रीय उपागम का प्रभाव दिखाती हैं। अब शिक्षा द्वारा नैतिकता, राज्य के प्रति निष्ठा और वैयक्तिक व्यावसायिक कौशल की प्राप्ति को एक साथ जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। थॉमस बेलोघ का मत है कि कोई भी भावी विकास की योजना को आवश्यक रूप से राजनैतिक-सामाजिक अध्ययन करना होगा कि किस तरह अतीत में परम्परागत शिक्षा ने सामाजिक व आर्थिक प्रगति में अवरोध उत्पन्न किया है। इस तरह का अध्ययन शैक्षिक नियोजन हेतु महत्त्वपूर्ण आधार होगा। इसे यह खोजना होगा कि प्रगति में बाधक अभिवृत्ति किस विशिष्ट प्रकार के शैक्षिक ढाँचे का परिणाम रही हैं और उस ढाँचे में किस प्रकार के सुधार की आवश्यकता है।

इसी सन्दर्भ में डब्ल्यू० कीनेथ रिकमन्ड व्यक्त करते हैं कि "अंग्रेजी शिक्षा की परम्परा को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वहाँ कुछ ऐसी भी अभिवृत्ति परिलक्षित होती है कि जो आर्थिक व सामाजिक विकास के विरुद्ध रही है।" इसे स्पष्ट करते हुए वे उदाहरण देते हैं कि लेबर-पार्टी की सरकार यदि यह आश्वासन भी दे कि माध्यमिक शिक्षा को व्यापक पैमाने पर पुनर्गठित करना चाहती है तो भी वह ऐसा नहीं कर सकती जब तक कि कंजरवेटिव विरोधी दल उन नीतियों को अनुमोदित नहीं करती। उसी तरह शासन द्वारा निजी संस्थाओं का सरकारी नियन्त्रण में लेने के निर्णय पर कोई विरोध नहीं कर सकता किन्तु इसके लिए देश की आधी जनता इसके पीछे हो, यदि ऐसा नहीं तो निश्चय ही परिस्थिति अशोभनीय हो सकती है।

स्पष्ट है कि शैक्षिक नियोजन राजनैतिक एवं दलगत हितों और विरोधों के ऊपर उठे तथा नियोजन के लक्ष्य व सिद्धान्त सर्वमान्य हों तब ही वह उपयोगी व अर्थपूर्ण हो सकती है। शैक्षिक नियोजन और सामाजिक प्रजातन्त्रीकरण हेतु यूनेस्को प्रतिवेदन ने बताया कि शैक्षिक प्रणाली को प्रजातन्त्र द्वारा प्रतिपादित 'अवसरों की समानता' को प्रशस्त करना होगा। प्रतिवेदन आगे कहता है कि यह तथ्य अब सार्वभौमिक मानवीय अधिकार की श्रेणी में सम्मिलित है तथा यह स्वरूप अब उन सभी देशों में व्याप्त है जहाँ कि परस्पर विरोधी राजनैतिक प्रणालियाँ प्रचलित हैं। प्रायः सभी नवीन शासन-व्यवस्थाएँ इस आदर्श को प्राप्त करने में प्रयत्नशील हैं। नवीन राष्ट्र जो शैक्षिक नियोजन हेतु अधिक उत्साही और तत्पर है, उन्हें आवश्यक रूप से ऐसी नीति का निर्धारण करना होगा जो उत्पादक अर्थव्यवस्था के अनुरूप हों। और ऐसा करने में प्रायः इन सभी देशों के प्रशासन एवं अधिकारी-वर्ग उन राजनैतिक मान्यताओं की ओर आकर्षित हो रहे हैं जो भौगोलिक आधार पर शैक्षिक समानता को नष्ट करने हेतु आगे आ रही हैं। अब प्रायः सभी देशों में शैक्षिक नियोजन हेतु मानव-शक्ति उपागम (मैनपावर एप्रोच) को आधार बनाया जा रहा है। इसमें आर्थिक समृद्धि हेतु उत्पादन के लक्ष्यों को जो कि राजनैतिक उद्देश्यों के अनुसार हैं, आधार बनाया जाता है और शिक्षा के उद्देश्यों को सामाजिक उद्देश्यों से जोड़ा जाता है। सामाजिक उद्देश्य अपने आप में राजनैतिक आधार रखते हैं और इस तरह समाज की आवश्यकताओं को आँकने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा को उस तरह ढालने का माप राजनैतिक तराजू हो जाते हैं। प्रो० ए० मिश्र का मत है कि "शैक्षिक नियोजन ऐसी बहुपार्श्वी प्रक्रिया है जो न केवल समाज के आर्थिक विकास की समस्याओं व प्रसंगों से ही जुड़ी है बल्कि समाज के राजनैतिक विकास के साथ भी।"

सभी राजनैतिक व्यवस्थाओं व समाजों में, जो विकासोन्मुख है, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सत्ता, वैयक्तिक अधिकार और समाज के आधिपत्य के मध्य हमेशा ही स्वस्थ समायोजन स्थापित करना आवश्यक होता है। शिक्षा के विकास हेतु नियोजित करने में इन तथ्यों को प्राथमिकता दी जाती है, यह अवश्य है कि राजनैतिक मान्यताओं के आधार पर इनमें कम-बढ़ होती रहती है।

भारतीय पृष्ठभूमि में शैक्षिक नियोजन पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्रता उपरान्त राजनैतिक प्रभावों का कितना अधिक असर हुआ है। स्वतन्त्र होने के बाद महत्त्वपूर्ण समस्या जो हमारे सामने थी वह स्वतन्त्रता को स्थायी बनाने की थी। भुखमरी, उत्पादन में अवनति, दरिद्रता की समस्याओं के साथ ही साथ समाजवादी प्रजातान्त्रिक मूल्यों के स्थापन की समस्या अधिक महत्त्वपूर्ण थी। स्वतन्त्रता की प्राप्ति उन अनेक समस्याओं (आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं कृषि व उद्योग आदि, क्षेत्रों से संबंधित) में से एक थी जो अपने आप में इन समस्याओं का समाधान नहीं थी। इन सब समस्याओं के समाधान हेतु महत्त्वपूर्ण कारक रूप में शिक्षा को सँवारना आवश्यक माना गया। यह इसलिए भी आवश्यक था कि शिक्षा कुशल व योग्य उत्पादक श्रम का निर्माण करने में सहायक होगी और साथ ही व्यक्ति को प्रतिनिधि सरकार में उत्तरदायित्वों को निभाने की योग्यता देगी। अतः यह स्वीकार किया गया कि यदि समान रूप से राजनैतिक अधिकारों को सब व्यक्ति उपयोग कर सकें तो सक्षम व कुशल प्राथमिक शिक्षा की सुविधाएँ सभी तक समान रूप से पहुँचाई जाय।

भारतीय शिक्षा-व्यवस्था को पुनर्गठित करने और उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने की आवाज स्वतन्त्रता के साथ ही हमारे देश में उठी। जनता के प्रतिनिधि एवं राष्ट्रीय नेताओं ने ऐसे परिवर्तन की आवाज को और ऊपर उठाते हुए देश की आकांक्षाओं के अनुरूप सुधार की आवश्यकता को प्रतिपादित किया। किन्तु, शिक्षा का जो विकास और प्रसार हमारे देश में हुआ वह देश की परिस्थितियों व आवश्यकताओं को पूरी तरह आँकते हुए नहीं हो पाया। स्वतन्त्रता ने 'शिक्षा की भूख' को बढ़ाया और समाज का वह अंग जो परम्परा से शिक्षा से अछूता रहा; जैसे—ग्रामीण वर्ग, आदिवासी व अनुसूचित वर्ग तथा स्त्रियाँ इन्हें शिक्षा के अवसर प्रदान करने हेतु शिक्षा में प्रसार को ही एकमात्र 'पुनर्गठन' के नाम पर स्वीकार किया गया। अवश्य छोटे-छोटे रूपों में प्रणालियों, पद्धतियों, अधिकार के वितरण आदि में छुट-पुट सुधार हुए किन्तु शिक्षा प्रमुख रूप से पुरातन लक्ष्यों व उद्देश्यों के अनुरूप ही रही। इस तरह जो पुनर्गठन हुआ, वह 'व्यापक-उपागम' को अपनाते हुए हुआ। यथार्थतः शिक्षा में परिवर्तन लाने के पीछे जो महत्त्वपूर्ण बात होनी चाहिए वह है—व्यक्तियों की अभिवृत्ति, आदत, कौशल, ज्ञान, रुचि तथा मूल्यों में परिवर्तन। यह इसलिए जरूरी है कि बदलते हुए समाज की परिस्थितियों में इनके बिना स्वस्थ समायोजन सम्भव नहीं। यही एक कारण सम्भवतः हमारी शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक दृष्टि से असफलता का रहा है। वस्तुतः 'शैक्षिक नियोजन' को, जैसा कि जे० पी० नायक व्यक्त करते हैं, "व्यापक आधार पर खड़ा होना चाहिए और शिक्षण-प्रविधियों को विभिन्न व सम्बन्धित विषय अनुशासनों से जोड़ने का प्रयास करना चाहिए।"

वर्तमान परिस्थितियों में जिस संक्रमण-काल से हम गुजर रहे हैं, शैक्षिक नियोजन हेतु दो आधारभूत मान्यताओं को स्पष्ट कर आगे बढ़ाना होगा। एक, राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के अनुरूप शिक्षा की प्रणाली की संकल्पना को स्पष्ट करना और परिभाषित करना; दूसरा, आधुनिक चुनौतियों को स्वीकार करने हेतु उपयुक्त और सक्षम शैक्षिक प्रणाली का विकास करना। तात्पर्य यह है कि हमें यह पहले स्पष्ट करना होगा कि हमारी राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली अपनी सादी चारित्रिक विशेषताओं के साथ वैसी ही भव्य, विशेष और अलग हो जैसी की दूसरे और देशों की राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणालियाँ। अमरीका, इंगलैंड, रूस, फ्रांस की अपनी प्रणालियों की कुछ खास विशेषताएँ रखती हैं जो अपने-अपने देश की चारित्रिकता को तो स्पष्ट करती ही हैं व उन चुनौतियों को स्वीकार करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण भारत में हमारी शाखा

विद्या मंदिर, बेंगलूर–२

की तीसरी वर्ष गाँठ पर

हम अपने सभी कृपालु संरक्षकों और स्नेही मित्रों का

हार्दिक अभिनंदन करते हैं।

हम उन लोगों को भी धन्यवाद अर्पित करते हैं—

(१) जिन्होंने सहयोग देने का वायदा करके भी सहयोग नहीं दिया।

(२) जिन्होंने न सहयोग दिया है और न देना चाहते हैं। और

हम प्रणाम करते हैं अपने पूज्य पिता-सम अग्रज

(स्वर्गीय डा० प्रेमनारायण टंडन

रीडर, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय)

[जन्म : १३ दिसम्बर १६१५ : देहान्त २० अप्रैल १६७३]

□ जिनका अदृश्य वरद-हस्त और आशीर्वाद ही हमारा संबल है।

□ अब हम बड़े विश्वास के साथ चौथे वर्ष की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

विनीत—तेजनारायण टंडन

हिन्दी साहित्य भण्डार

पो० सराय माली खाँ, लखनऊ–३

□

विद्या मन्दिर (हिन्दी बुक सेण्टर)

५८८ एवेन्यु रोड, बेंगलूर–२

में भी सक्षम व उपयुक्त हैं जो उनके सामने खड़ी हैं। निःसन्देह हमारे यहाँ राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली है, किन्तु राष्ट्रीय लक्ष्यों से उसका विशिष्ट रूप से आत्मीयकरण नहीं हो पाया है। समाजवादी प्रजातन्त्रात्मक समाज के साथ ही साथ आर्थिक प्रगति एवं जो सांस्कृतिक जागरण (तकनीकी संस्कृति जो आज विश्व समाजों में प्रगति का आधार बन गई है) लाना चाहते हैं, वे अधिक विशिष्ट और स्पष्ट ढंग से शिक्षा के विभिन्न स्तरों में अभिव्यक्त हों। 'लिबरल' और 'प्रोफेशनल' तथा 'टेकनीकल' शिक्षा के बीच की दूरी कम हो। प्रबुद्ध वर्ग अपने आपको सामान्य जन से अलग न सोचते हुए उन अनुभवों व विचारों से सामान्य व्यक्ति को अवगत कराएँ जिसे प्रसाद-रूप में वह बौद्धिक जागरण के परिणामस्वरूप पा रहा है। शासन व प्रशासक अधिक समीप आते हुए सामान्य जनता के साथ कार्य करें व स्थानीय समुदाय का अधिकाधिक सहयोग व भाग प्राप्त करें।

पंचम पंचवर्षीय योजना हेतु प्रस्तुत 'ड्राफ्ट' में सार्वजनिक मान्यताओं को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि "देश की वर्तमान राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियाँ बड़े पैमाने पर शैक्षिक सुधार हेतु अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार करती हैं। अतः पंचम पंचवर्षीय योजना में यह सुझाव रखा जाता है कि समन्वित एवं शैक्षिक विकास की योजनाओं को सम्मिलित किया जाय जिससे कि सामाजिक परिवर्तन सम्भव हो, आर्थिक अभिवृद्धि हो, और समाजवाद की ओर हमारी प्रगति तीव्र हो।"

उपर्युक्त उद्देश्य को लेते हुए शिक्षा की नीति निर्धारित की गयी कि नवीन राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली को अधिक एकीकृत बनाया जाय जिससे निर्देशन की तीनों धाराएँ—संस्थागत, अल्प अवधि संस्थागत एवं असंस्थागत (स्व-अध्ययन) को समुचित ढंग से समस्त स्तरों पर समाज के सभी वर्गों हेतु विकसित किया जाय।"

समाजवादी विचारधारा के अनुरूप हमारी शिक्षा के नियोजन में स्पष्ट रूप से राजनैतिक प्रभावों को देखा जा सकता है। यथार्थतः सामाजिक, राजनैतिक वातावरण एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण व निर्णायक घटक है जिसकी अवहेलना शैक्षिक नियोजन में नहीं की जा सकती। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा में क्रान्ति

डॉ० सत्येन्द्र
अ २६/१ विद्यालय मार्ग, तिलक नगर, जयपुर

हम सभी कितने ही वर्षों से यह आवाज उठाते चले आ रहे हैं कि शिक्षा में क्रान्ति होनी चाहिए, क्योंकि—

(१) हमारी शिक्षा-प्रणाली पुरानी परिपाटी की देन है।

(२) यह शिक्षा-प्रणाली विदेशी शासन की देन है।

(३) इसका उद्देश्य क्लर्क पैदा करना ही है।

(४) वर्तमान शिक्षा अंधी है, इसका कोई निश्चित उद्देश्य ही नहीं है, न यह कोई दिशा ही प्रदान कर सकती है।

(५) यह शिक्षा गुलाम-मनोवृत्ति को जन्म देती है, गुलाम पैदा करती है। इससे 'स्वतन्त्र चेतना' और 'स्वतन्त्र चिन्तन' दोनों की हानि होती है।

(६) यह शिक्षा कितनी ही अस्वाभाविकताओं का शिकार है और यह शिक्षार्थी को अपने स्वाभाविक परिवेश से अलग कर देती है।

(७) यह शिक्षा भारत में विदेशियों के ज्ञान-विज्ञान को खपाने का साधन मात्र है।

(८) शिक्षा पाठ्य-पुस्तकारूढ़ है एवं पुस्तक-कीट बनाती है।

(९) इस शिक्षा को शिक्षा के साथ जुड़ी परीक्षा-प्रणाली ने और भी भ्रष्ट कर दिया है।

(१०) इस शिक्षा के साथ नैतिकता का कहीं भी सम्बन्ध नहीं है—इसका घोर दुष्परिणाम आज सहस्रशः विषवृक्षों और विषफलों में प्रतिफलित हो रहा है।

(११) यह शिक्षा भारतीयता विरोधी तो है ही; किसकी पोषक है, यह कहना भी कठिन है।

इस प्रकार ये तथा ऐसे ही न जाने कितने आरोप इस पर लगाये गये हैं, लगाये जा रहे हैं और वास्तविक क्रान्ति होने तक लगाये जाते रहेंगे।

समय-समय पर विदेशी शासन-काल में भी और अपने स्वतन्त्र होने के उपरान्त भी शिक्षा के प्रश्न पर विचार करने के लिए कई आयोग नियुक्त किए गए और उन्होंने कोई ऐसे सुझाव नहीं दिए जिनसे शिक्षा में क्रान्ति आ सकती। ऐसे संशोधन ही सुझाए गए जिनसे मर्ज बढ़ता ही गया।

आज की शिक्षा का मूल केन्द्र 'भोगवाद' है। इसने सर्वत्र कहर ढाया है। 'भोग' की होड़ पैदा हो जाने पर 'मानवता' का ठौर-ठिकाना रह ही नहीं सकता। इससे असन्तोष भी बढ़ता है, भ्रष्टाचार भी बढ़ता है, पंच मकार के प्रति आकर्षण प्रबल होता है। इसीलिए आज यह कहा जा रहा है कि पुराने राजा-महाराजा तो समाप्त हो गये, उनके सिंहासन छिन गये; पर मंत्रियों और उनके चमचों के रूप में नये राजा-महाराजा उत्पन्न हो रहे हैं।

'भोग' का विरोध 'श्रम' से भी होता है। यह दुष्परिणाम भी सामने है। कम से कम श्रम, अधिक से अधिक भोग—आज यह मूलमंत्र उन लोगों का भी हो चला है, जिनके प्रत्येक पल का मूल्य उपार्जन के लिए महत्त्वपूर्ण है।

इन सब कारणों से शिक्षा का स्वरूप भी शहरोन्मुख हो गया है। फलतः कोई भी शिक्षित व्यक्ति गाँवों की ओर नहीं जाना चाहता। यह कहा जाता है कि डाक्टरों को गाँवों की ओर जाना चाहिए। यह भी कहा जाता है कि कोई डाक्टर गाँवों की ओर नहीं जाना चाहता। यही स्थिति हर वर्ग की है। क्यों? क्योंकि प्रत्येक वर्ग शहरी सुख-सुविधाओं यानी 'पूर्ण भोग' से किंचित् भी वंचित नहीं रहना चाहता। भोग-मनोवृत्ति बड़े-से-बड़े राष्ट्रों के पतन का कारण होती है। पाकिस्तान की पिछड़ी लड़ाई में 'बांगला देश' को जो कुछ भुगतान पड़ा, वह तो न 'भूतो न भविष्यति' था ही, पर पाकिस्तान की हार का भी प्रमुख कारण वही था। भोग का ह्रास ही यौन-कुत्सा तक ले जाता है और ये सभी बातें भारत में शिक्षा-क्षेत्रों में विश्वविद्यालयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी
भाषा के हितैषियो

हिन्दीतर भाषा-भाषी प्रदेशों के साहित्यकारों से हिन्दी की विभिन्न विधाओं पर देवनागरीलिपि में पाण्डुलिपि आमन्त्रित हैं।

रंजन प्रकाशन

साहित्यिक, तकनीकी और पाठ्य-पुस्तक के प्रकाशक

वाँकेविलास
सिटी स्टेशन मार्ग,
आगरा–282003

परिवर्द्धित मूल्य-सूची

[मई ७४ से मान्य]

● शोध-प्रबन्ध

विशिष्टाद्वैतवाद और उसका हिन्दी भक्ति काव्य पर प्रभाव	डा० (श्रीमती) किरणकुमारी गुप्त	30.00
डा० नगेन्द्र : विश्लेषण मूल्यांकन	डा० एस० लक्ष्मी	30.00
वदायूँ जनपद की वोली का एककालिक अध्ययन	डा० रामप्रकाश सक्सेना	25.00
अवधी कृष्णकाव्य और उसके कवि	डा० मुरारीलाल शर्मा	25.00
आधुनिक हिन्दी और बँगला काव्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन	डा० इन्द्रनाथ चौधुरी	30.00
महादेवी और उनकी गद्य रचनाएँ	माधवी राजगोपालन	12.00
भक्ति आन्दोलन के प्रेरणा-स्रोत	पद्मश्री मलिक मोहम्मद	5.00
बाबू गुलाबराय का जीवन और साहित्य	डा० (श्रीमती) कामिनी [प्रेस में]	40.00
कवि प्रसाद और कुमारन् आशान् का तुलनात्मक अध्ययन	डा० विजयन [प्रेस में]	30.00

● निबन्ध व आलोचना

गुलाव-वल्लरी [बाबू गुलाबराय के कतिपय निबन्धों का संग्रह]	बालकृष्ण राव	12.00
वाबू गुलावराय स्मृति ग्रन्थ	वियोगी हरि, डा. सत्येन्द्र आदि	40.00
समसामयिक हिन्दी कविता : परिवेश, प्रवृत्ति और अभिव्यक्ति	बालकृष्ण राव, डा० गोविन्द रजनीश	20.00
हिन्दी निबन्ध और आचार्य शुक्ल	नवल किशोर	5.00

● काव्य [प्राचीन] संकलन

आदिकालीन-काव्य	डा० कान्तिकुमार जैन	6.00
कबीर-वाणी	डा० सरनामसिंह शर्मा	7.90
कबीर-काव्य-कौस्तुभ	डा० बालमुकुन्द गुप्त	4.50
विनय-पत्रिका [संक्षिप्त]	डा० गोपीनाथ तिवारी	8.00
रामचन्द्रिका (संक्षिप्त)	डा० प्रेमस्वरूप	5.85

● काव्य [अर्वाचीन] संकलन

अभिव्यक्ति	बालकृष्णराव, डा० गोविन्द रजनीश	12.00
उपलब्धि	बालकृष्ण राव, डा० गोविन्द रजनीश	16.00
संचिता	बालकृष्णराव	4.50
मलयालम की नयी कविताएँ	डा० जी गोपीनाथन	5.00

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तथा अन्यत्र भी पूरी तरह उभर रही हैं—राष्ट्र के महान् नेताओं की आँखों के नीचे घट रही हैं—और वे भी अचेत हैं। कुछ बातों से तो लगता है कि अचेत नहीं है, सचेत होकर भोग को ह्रास के निम्नतम स्तर पर ले जाकर राष्ट्र को अचेत और मदहोश कर देना चाहते हैं। उदाहरण है—'शराब' से आय बढ़ाने की योजनाएं। शराब से आय तभी बढ़ेगी जब शराब की खपत बढ़ेगी। शराब की खपत के माने हैं—जनता को नशे में धुत्त कर देना; उसे पतन की ओर धकेल देना। शराब पंचमकारों में से एक है और सब प्रकार के पतन की ओर ले जाने का साधन है।

यह एक भयावह स्थिति है। अतः शिक्षा का पहला ध्येय तो यह होना चाहिए कि इस मनोवृत्ति को बदले। यह भी अब निश्चित है कि यह वृत्ति कुछ संशोधनों से नहीं बदली जा सकती; यह आमूलचूल क्रान्ति तो अहिंसक क्रान्ति से ही सम्भव है। भोगवृत्ति से निवृत्त हुए बिना शिक्षा अपने उद्देश्य को स्वयं ही परास्त कर देगी।

भोगवादी मनोवृत्ति का ही एक अन्य परिणाम है, वैभव-विलास, शान-शौकत और चमक-दमक, जिसे अंग्रेजी में 'पौम्प एण्ड शो' कहते हैं। 'ग्लैमर' भी ऐसा ही कुछ होता है। गांव का लड़का फूहड़पन से रहता है, फिर ज्यों-ज्यों वह शिक्षा में आगे बढ़ता जाता है, टिप-टाप रहने की ओर अग्रसर होता जाता है—महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में वह पूर्णतः टिप-टाप हो जाता है। सही कपड़े सही ढंग से साफ-सुथरेपन से पहनना तो एक शुभ लक्षण है; किन्तु आधुनिक 'टिप-टापत्व' में वैभव-विलास और शान-शौकत की मनोवृत्ति भी ऊपर से नीचे तक विद्यमान है। डा० राजेन्द्रप्रसाद जब भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने थे तब उच्चतम स्तर पर वैभव-विलास की मनोवृत्ति के सामने उन्हें परास्त होना पड़ा था।

शिक्षा के क्षेत्र में विश्वविद्यालयों की इतनी विशद् और विशाल इमारतें क्या प्रकट करती हैं? उसमें सजधज के आने वाले प्रोफेसर क्या सिद्ध करते हैं? स्पष्ट है कि हम अपना एक वर्ग-विशेष बना लेना चाहते हैं और सामान्य जन से कट कर अपने को अलग रखना चाहते हैं।

गांधीजी हमारे सामने थे। वे एक गरीब किसान जैसी पोशाक पहनते थे। झोंपड़ी जैसे मकान में रहते थे। उनके लिए सम्राट को भी झुकना पड़ा। विदेश के बड़े से बड़े व्यक्ति उनसे मिलते थे, किसी ने उन्हें हेय नहीं समझा, किसी ने इस सीधे-सादेपन के कारण उनसे घृणा नहीं की। हम उन्हें आदर्श पुरुष और महात्मा कहकर अपने से दूर कर देते हैं। पर, क्या वास्तव में वे जन-जन के व्यक्ति नहीं।

यदि हम शिक्षा में वास्तविक क्रान्ति चाहते हैं तो हमें अपने विश्वविद्यालयों को शहर से हटाकर गाँवों में, वरन् जंगलों में स्थापित करना होगा और उनमें रहन-सहन को सीधा-सादा रखना होगा। ग्रामीण वातावरण में उच्च से उच्च शिक्षा दी गई, तो ऊँची-से-ऊँची शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को गाँवों से घृणा नहीं रहेगी। शहरी जीवन से ग्रामीण जीवन की ओर जाने में व्यक्ति को त्याग करना पड़ता है, और ग्रामीण जीवन उसे कठिन लगता है। तभी वह उधर नहीं जाना चाहता। ग्रामीण वातावरण में पले व्यक्ति को ग्रामीण जीवन जीने में कोई कठिनाई नहीं पड़ सकती, वह उसका अभ्यस्त भी हो लेता है—उसको यदि शहर की ओर जाना पड़े तो भी कोई कठिनाई नहीं, क्योंकि उसे शहर के भोग को ग्रहण करने में कहीं भी कोई कठिनाई नहीं। हम कहते हैं, शहरी लोग भी, नेता भी और अन्य भी कहते हैं, और बार-बार कहते हैं कि भारत गाँवों में रहता है; पर हम शिक्षा यह समझ कर देते हैं कि भारत शहरों में रहता है। हम बनाते हैं प्रत्येक को शहरी और चाहते हैं कि वह गाँव में काम करे। क्या यह विडंबना नहीं है?

इस दृष्टि से शिक्षा में यह भी क्रान्तिकारी परिवर्तन करना होगा कि उसे ग्राम-केन्द्रित बनाया जाय और उसका समस्त परिवेश यथासंभव ग्रामीण ही हो। ग्रामीण भारत में ग्राम्यता आदर्श नहीं, यथार्थ है और उसे यथार्थ रूप में ही हमें ग्रहण करना होगा।

इसी आधार पर इसमें कोई तुक नहीं कि इतने विशाल और ऊंचे भवन बनाये जायें। साबरमती नदी के किनारे गांधी जी का बनाया हुआ गुजरात विद्यापीठ क्या शिक्षा की सेवा की दृष्टि से अनुपयोगी है? विश्वविद्यालय के एक कक्षा-भवन के निर्माण में जितना पैसा लगता है, उससे चार कक्षा-भवन तो बन ही सकते हैं। कितना अपव्यय किया जाता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिष-साहित्य

सरल एवं रोचक शैली में उदाहरण कुण्डलियों सहित

- □ भाव दीपिका
- □ दशाफल रहस्य
- □ वर्षफल विचार
- □ प्रश्न दर्पण
- □ फलित सूत्र
- □ महिलाएँ और ज्योतिष
- □ मंत्र शक्ति
- □ तंत्र शक्ति
- □ पाश्चात्य ज्योतिष
- □ चन्द्रकला नाड़ी
- □ ज्योतिष और रोग
- □ रत्न परिचय
- □ चुने हुए ज्योतिष योग
- □ ज्योतिष सीखिये
- □ व्यवसाय का चुनाव और आपकी आर्थिक स्थिति

मूल्य : प्रत्येक पुस्तक का छः रुपये

□ उत्तर कालामृत (कवि कालिदास) मूल्य पन्द्रह रुपये

★

प्राचीन मान्यताएँ और आधुनिक खोज पर आधारित शोधपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक ग्रन्थ

रत्न प्रदीप

(Advanced Study of Gems)

- नवरत्नों व उपरत्नों की सम्पूर्ण जानकारी
- जाँच परख और चमत्कारिक गुण
- रत्नों में दैवी शक्ति और बरकत
- रत्न—ज्योतिष के आईने में
- रोगों में रत्नों का उपयोग
- हृदय रोग और रत्न
- विचित्र ! किन्तु सत्य (अल्प मोती रत्नों के चमत्कार स्वयं परखिये)

इस विषय पर ऐसा अनूठा ग्रन्थ अब तक नहीं छपा

मूल्य पच्चीस रुपये

गोयल एण्ड कम्पनी

दरीबा, दिल्ली—११०००६

विश्वविद्यालयस्तरीय

महत्त्वपूर्ण साहित्यिक प्रकाशन

सवा सौ श्रेष्ठ निबन्ध

प्रो० तिलक राज शर्मा

मूल्य : २० रुपये

विश्वविद्यालयों के छात्र-छात्राओं के लिए आधुनिकतम साहित्यिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों के १२५ श्रेष्ठ निबन्धों का अनुपम संग्रह ।

★ ★ ★

- □ मध्ययुगीन काव्य — डा० ओमप्रकाश १२.००
- □ उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा — डा० ब्रजनारायणसिंह १०.००
- □ काव्यशास्त्र सिद्धान्त और वाद — डा० सुरेशचन्द्र गुप्त १५.००
- □ आकलन और समीक्षा — डा० संसारचन्द १०.००
- □ हिन्दी साहित्य और स्वाधीनता-संघर्ष — डा० धर्मपाल सरीन १२.५०
- □ 'रेणुका' आंचलिक कथा-साहित्य — पूर्णदेव एम० ए० ६.००
- □ निराला के काव्य-बिम्ब और प्रतीक — वेदव्रत शर्मा १२.५०
- □ बोध का धरातल — वेदव्रत शर्मा १२.००
- □ समीक्षात्मक निबन्ध — डा० सुरेशचन्द गुप्त १५.००
- □ काव्यालोचन — डा० ओमप्रकाश शर्मा १०.००
- □ कालिदास की अमर कृतियाँ — प्रो० भीष्म प्रताप शास्त्री १५.००
- □ हिन्दी गद्य साहित्य का विकास — डा० लीलाधर 'वियोगी' ६.५०
- □ हिन्दी साहित्य का आदि और भक्तिकाल — डा० रामप्रकाश ५.००

आशा प्रकाशन गृह

३० नाईवाला, करौलबाग

नई दिल्ली—५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अपव्यय भी है, और पूर्णतः अनुपयोगी भी; साथ ही भारतीय प्रकृति के विरुद्ध भी । भारत जैसा गरीब देश, ऐसी विलासिता कैसे सहन कर सकता है ? पर इससे भी अधिक असह्य बात यह है कि शिक्षा का यह समस्त रूप एक अलग वर्ग को जन्म देता है और इसी कारण कितनी ही अशोभनीय समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं—विकारों की एक शृंखला चल पड़ती है ।

शिक्षा में क्रान्ति के कुछ सूत्र

एक और दृष्टि से भी देखना होगा । वह यह कि स्वातन्त्र्य-युद्ध का श्रीगणेश होने के समय से चारों ओर शिक्षा में क्रान्ति का नारा बुलन्द किया जाता रहा है । आज भी यह नारा सर्वत्र सुनाई पड़ता है, लेकिन शिक्षा में कोई क्रान्ति होती दिखलाई नहीं पड़ती; जिसका फल यह हो रहा है कि वर्तमान शिक्षा में दोषों की गिनती करते रहने के कारण विद्यार्थी को इसमें रुचि नहीं रही है—फलतः वह इसमें विश्वास छोड़ बैठा है; और न अभिभावकों को ही इसमें कोई आस्था है, न अध्यापकों को ही है, नेताओं और समाज-सेवकों की तो बात ही क्या ! वे तो अनास्था के नारे ही लगाते हैं। तात्पर्य यह है कि शिक्षा में क्रान्ति के नारे ने प्रत्येक के लिए अंधेरी कोठरी खड़ी कर दी है। कोई और प्रकाश का मार्ग नहीं है, अतः शिक्षा की इस अंधेरी कोठरी में सब घुसते चले जा रहे हैं और धक्का-मुक्की करते जा रहे हैं; साथ ही डर भी रहे हैं । कारण स्पष्ट है : एक तो, शिक्षा दिशाहीन हो गयी है । दूसरे, वह मुखौटों का व्यवसाय करने लगी है, फलतः उन्हें धारण कर प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने आप से भी विलग और दूर होता जा रहा है । तीसरे, विदेशी मनोवृत्ति उसकी चोटी पकड़ कर उसे नचा रही है, जैसे कठपुतली नचायी जाती है । इसी से मनुष्य अस्वाभाविक तनावों से विकल जहाँ-तहाँ टकरा रहा है । उसकी अपनी रीढ़ रही नहीं, उसको निकाल देने का प्रयत्न गुलाम बनाने की प्रक्रिया में विदेशियों ने आरम्भ किया था और वह अब सर्वग्राही हो गयी है। विदेशियों की भूमिका भी निरन्तर बनी हुई है। नयी रीढ़ उसे मिल नहीं पायी ।

मैं, शिक्षा को नया रूप देने के लिए, निम्नलिखित सूत्र और प्रस्तुत करता हूँ :—

(१) विश्वविद्यालयों की उपाधियों का नौकरियों से सम्बन्ध बिल्कुल तोड़ दिया जाना चाहिए । जिस प्रकार की नौकरी हो, नौकरी वाला संस्थान उसी प्रकार की विशेष परीक्षाएँ ले और उनके आधार पर चुनाव करे । इससे उपाधियों के साथ जो अस्वाभाविक एवं अनावश्यक महत्त्व और तत्त्व जुड़ गया है, वह दूर हो जायेगा और उपाधियाँ शुद्ध सारस्वत उपाधियाँ रह जायेंगी और विद्यालयों और विश्वविद्यालयों को जो यह पाठ पढ़ाया जाता है कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि जिससे छात्र को नौकरी मिल सके, इस पाठ का भी अन्त हो जायगा । इस अस्वाभाविक प्रवृति का जो परिणाम हो रहा है, उससे इसकी रक्षा हो सकेगी । नौकरी के साथ उपाधि या डिप्लोमा के अनिवार्य सम्बन्ध ने ही परीक्षाओं में नकल, परीक्षकों की सासंत, घूँसखोरी, हिंसा तथा ऐसे ही अन्य अनेक अपराधों को प्रेरित किया है ।

(२) जितने भी ऐसे विषय हैं जिनका विशेष प्रकार की सेवाओं और संस्थानों से सम्बन्ध है—उन विषयों की ऊँची शिक्षा उन्हीं संस्थानों से जोड़ कर दिलाई जानी चाहिए, जिनसे कि वे छात्र उस क्षेत्र का शिक्षण-काल में ही यथार्थ अनुभव भी प्राप्त करते जायें । जैसे, मेडीकल की शिक्षा आरम्भ से ही अस्पतालों के साथ मेडीकल कालेजों को जोड़ कर दी जाती रही है, वैसे ही वाणिज्य की और अन्य विज्ञानों की शिक्षा विविध संस्थानों से जोड़ कर दी जा सकती है। ये संस्थाएँ उतने ही छात्रों को प्रवेश दें जितने की उनको आवश्यकता है । अतएव जितने भी विषय विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाते हैं, उन सबको ऐसे संस्थानों से जोड़ देना चाहिये । जो विषय अन्त में ऐसे निकलें कि कहीं जोड़े नहीं जा सकते, विश्वविद्यालयों में केवल उन्हीं का अध्ययन-अध्यापन कराया जाय और उसमें स्पष्ट दृष्टिकोण यह हो कि यह अध्ययन-अध्यापन मनुष्य को सुसंस्कृत और ज्ञान से समृद्ध नागरिक बनाने के लिए, विषय को नयी व्याख्या देने तथा उसमें अनुसन्धान की नयी दिशाओं के लिए किया जाए ।

(३) तीसरा सूत्र यह है कि विद्या को साक्षरता से अलग कर दिया जाना चाहिए । साक्षरता अथवा भाषा-ज्ञान एक अलग वस्तु है और उसका एक सीमा तक अध्ययन और अभ्यास गाँवों में, नगरों में प्राइमरी या हायर सेकण्डरी तक पूरा हो जाना चाहिए । उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बी० ए० गृह-विज्ञान की छात्राओं के लिए—

डा० (श्रीमती) जी० पी० शैरी द्वारा लिखित

गृह-विज्ञान साहित्य

★

गृह-व्यवस्था एवं गृहकला	चतुर्थ संस्करण १९७४ मूल्य : बारह रुपये	पोषण एवं आहार विज्ञान	तृतीय संस्करण १९७४ मूल्य : ग्यारह रुपये
वस्त्र-विज्ञान के मूल सिद्धान्त	षष्ठ संस्करण १९७४ मूल्य : सात रुपये	मातृकला एवं शिशु कल्याण	चतुर्थ संस्करण १९७३ मूल्य : नौ रुपये

बुनियादी प्रशिक्षण दिग्दर्शन (प्रथम खण्ड-गाइड)

[प्रथम वर्ष के छात्राध्यापकों के निमित्त]

लेखक
डॉ० आर० एम० तिवारी

★

मूल्य :
पन्द्रह रुपये

प्रस्तुत पुस्तक माध्यमिक शिक्षा मण्डल मध्य-प्रदेश, भोपाल द्वारा संचालित बुनियादी प्रशिक्षण प्रमाण-पत्र परीक्षा के प्रथम वर्ष के प्रशिक्षणार्थियों के निमित्त प्रशिक्षण जगत में कार्य कर रहे योग्य विद्वानों और शिक्षाविदों से लिखाई गई है।

इसमें निम्नलिखित ६ प्रश्नपत्रों का समावेश है :-

१. शिक्षा मनोविज्ञान एवं शिक्षा सिद्धान्त
२. सामान्य शिक्षण पद्धतियाँ
३. भाषा और उसकी विशिष्ट शिक्षण पद्धतियाँ
४. सामाजिक अध्ययन और उसकी विशिष्ट शिक्षण पद्धतियाँ
५. गणित और ६. विज्ञान

पुस्तक की मुख्य विशेषताएँ—

- पुस्तक सरल, सुबोध और प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गई है। प्रत्येक प्रश्नपत्र में परीक्षानुसार वस्तुनिष्ठ, लघु प्रश्न तथा निबन्धात्मक प्रश्नों के उत्तर लिखे गये हैं।
- विगत परीक्षा में आये प्रश्नों को हल किया गया है।
- सभी विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है और यथास्थान गणित, विज्ञान और भाषा में चित्रों द्वारा भी समझाया गया है।
- पुस्तक के प्रारम्भ में प्रशिक्षणार्थियों के निमित्त परीक्षोपयोगी गुर एवं निर्देश लिखे गये हैं।
- सामाजिक अध्ययन और भाषा के पाठसूत्र दिये गये हैं।

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद विद्याओं का अर्जन अर्थात् ज्ञान का अर्जन ही मुख्य दृष्टिकोण होना चाहिए। इस ज्ञान के अर्जन में सहायता देने के लिए पुस्तकालय, दृश्य-श्रव्य (Audio-visual) आयोजनों का अधिकाधिक उपयोग होना चाहिए। इस सम्बन्ध में जो पुरानी परम्पराएँ थीं, उन्हें पुनर्जाग्रत करने और अद्यतन करने का प्रयत्न होना चाहिए। उन्हें नया रूप दिया जाना चाहिए, जिससे वे नये ज्ञान-विज्ञान से जुड़ जाएँ; जैसे—कथावाचन। कथावाचन की संस्था बहुत सम्भावनाएँ लिए हुए है। इसको इस रूप में व्यवस्थित किया जाना चाहिए कि भारत और विश्व की गौरवान्वित परम्पराएँ माइथालाजी के साथ जुड़ कर आधुनिकता एवं ज्ञान-विज्ञान से जुड़ कर कथा का रूप ग्रहण करें। यह कथा—कथा होनी चाहिए? व्याख्यान नहीं। इसके लिए नियमित शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जा सकता है। इसी प्रकार भाषा-ज्ञान परिपक्व हो जाने पर सर्जनात्मक साहित्य (क्रिएटिव लिटरेचर) की रचना की 'वर्कशॉप' (कारखाने) भी आरम्भ की जा सकती हैं, जिनमें कविता-रचना, उपन्यास लिखना, कहानी लिखना, आलोचना लिखना आदि का प्रशिक्षण दिया जा सकता है। इनके लिए प्रशिक्षक तैयार करने के लिए भी योजनाएँ विश्वविद्यालयों के माध्यम से खड़ी की जा सकती हैं।

(४) एक सूत्र यह भी है कि ऐसे विषय जो कि आज उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं, परन्तु जिनमें ज्ञान-विज्ञान की आवश्यकता रहते हुए भी, उसकी उपेक्षा करके काम चलाया जा रहा है, जिससे अभीष्ट की सिद्धि नहीं होती है ऐसे नये-नये विषय खोज कर उनकी पद्धतियों और टेकनीक का शास्त्र खड़ा करके उनका अध्ययन विश्वविद्यालयों में कराया जाय और बाद में उन्हें उन विभागों को उनसे सम्बन्धित संस्थानों के साथ जोड़ दिया जाय; उदाहरण के लिए, 'पत्रकारिता'—विशेषतः हिन्दी पत्रकारिता; पाठालोचन, जिसके अभाव के कारण हिन्दी में प्रकाशित आज सभी ग्रन्थ भ्रष्ट होने लगे हैं; कितने प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की पुस्तक-संशोधन में आवश्यकता होती है, इस पर ध्यान नहीं दिया जाता। जो थोड़ा-बहुत भी पढ़ना-लिखना जानता है वही सम्पादक बन बैठता है। आगे चलकर ऐसा प्रबन्ध किया जा सकता है कि ऐसे प्रशिक्षित व्यक्तियों से ही ग्रन्थ-सम्पादन का कार्य कराया जाय जो पाठालोचन में प्रशिक्षित हों। पाण्डुलिपिविज्ञान (मैन्युस्क्रिप्टॉलॉजी) आज कितना आवश्यक है, यह हस्तलेखागारों की संख्या तथा हस्तलेखों में बढ़ती रुचि देखकर समझा जा सकता है। इन हस्तलेखागारों का पूर्णरूपेण उपयोग भी नहीं हो रहा है। अनेक प्रकार की भ्रष्टताएँ इनमें विद्यमान हैं। इस दृष्टि से पाण्डुलिपि-विज्ञान बहुत उपयोगी विषय है। इसी प्रकार के और भी कितने ही विषय खोजे जा सकते हैं, उदाहरणार्थ, एक-दो और विषय दृष्टि में आ रहे हैं। 'रंगमंच'—जिसके दो भेद हो सकते हैं—रंगमंच के लिए लेखन और रंगमंच के लिए लिखित नाट्य का मंचन। इससे भी अलग लोक-रंगमंच का एक अलग ही विषय हो सकता है; जैसे—'कठपुतली' जो आज विश्व को आकर्षित कर रही है और भारत में भी इसके मंच की पुनर्प्रतिष्ठा हो रही है। भारतीय लोककला मंडल, उदयपुर ने, उसके संस्थापक एवं अधिष्ठाता श्री देवीलाल सामर की सूझ-बूझ से 'कठपुतली कला' का सम्यक् प्रशिक्षण भी आरम्भ कर दिया है। ऐसे ही अन्य लोक-मंचों की पुरानी परम्पराओं को खोजा जा सकता है और उन्हें अध्ययन और अध्यापन का विषय बनाकर इनमें से नये व्यवसाय अपनाये जा सकते हैं। इनमें प्रशिक्षित व्यक्ति अपनी एक-एक मण्डली बना कर ज्ञान-विज्ञान का प्रसार भी कर सकता है और अपनी रोजी-रोटी भी कमा सकता है।

(५) एक और सूत्र। प्रत्येक देश को यह बात ध्यान में रखनी होगी और विशेष रूप से विकासशील देश को, कि उसकी मेधा, जो किसी भी राष्ट्र के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है, अपने आपको बेकार सिद्ध न करे। इसलिए जितने भी सेवानिवृत्त व्यक्ति हैं उन सबकी सेवाओं का उपयोग करने के लिए एक सुनियोजित कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता है। इनमें से बहुत-से ऐसे होंगे जिन्हें सरकार की ओर से पेंशन मिलती है, बहुत-से ऐसे होंगे जो बिना सरकार की सहायता के काम करने को तत्पर होंगे और बहुत से ऐसे भी होंगे जिन्हें पैसे की आवश्यकता होगी—इन सबसे भारत की प्राचीन परम्परा के संन्यासियों जैसा कार्य लिया जाना चाहिए। इन्हें जगह-जगह भ्रमण करने के लिए कहा जाए और जहाँ ठहरें, वहाँ जब जितने लोगों से बातचीत करने का मौका इन्हें मिले, ये अपने प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

112761

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. भारतीय काव्यशास्त्र डा० रामचन्द्र 15·00
2. केशव काव्य सुधा (सटीक) डा० देशराजसिंह भाटी 7·50
3. कबीर साखी सार (सटीक) माया अग्रवाल 8·00
4. कबीर वाणी सार (सटीक) ,, 8·00
5. मंझनकृत मधुमालती (सटीक) ,, 10·00
6. यशपाल और 'दिव्या' डा० राजपाल 10·00
7. लहर-मीमांसा डा० स्वदेश चावला 6·00
8. नहुष : एक अध्ययन डा० गोविन्दलाल 1·50
9. साकेत : एक विवेचन माया अग्रवाल 6·00
10. प्रियप्रवास : एक विवेचन ,, 8·00
11. साकेत : नवम सर्ग ,, 3·75
12. नया सप्तक : एक विवेचन ,, 8·00
13. नया सप्तक : एक विवेचन (अज्ञेय-माथुर/अज्ञेय-मुक्तिबोध) ,, 6·00
14. समीक्षायन दीपिका ,, 7·50
15. हिन्दी निबन्ध दीपिका ,, 2·50
16. पथ के साथी : एक विवेचन ,, 4·00

इन प्रकाशनों की बढ़ती लोकप्रियता से प्रोत्साहित

अनीता प्रकाशन

के

छात्रोपयोगी व पुस्तकालयों में संग्रहणीय अभिनव प्रकाशन

17. भाषा विज्ञान डा० रामचन्द्र वर्मा 7·50
18. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र (प्रश्नोत्तर) माया अग्रवाल 10·00
19. भारतीय काव्यशास्त्र ,, 6·00
20. पाश्चात्य काव्यशास्त्र ,, 6·00
21. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि अज्ञेय : एक विवेचन ,, 6·00
22. अन्धायुग : एक विवेचन डा० कृष्णदेव 6·00
23. आधे अधूरे : एक विवेचन ,, 7·50
24. लहरों के राजहंस : एक विवेचन ,, 6·00
25. आषाढ़का एक दिन : एक विवेचन ,, 6·00
26. अनीता हिन्दी पथप्रदर्शिका (दिल्ली बी. ए./आनर्स II वर्ष के लिए) ,, 15·00
27. चन्द्रगुप्त : एक मूल्यांकन रमेश 'तरुण' 6·00

हमारे आगामी महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

हिन्दी साहित्य का इतिहास डा० रामचन्द्र वर्मा 10·00
केनोपनिषद् : एक अध्ययन डा० रामचन्द्र वर्मा 4·00
स्कन्दगुप्त : एक मूल्यांकन रमेश 'तरुण' 6·00
कामायनी : एक विवेचन डा० कृष्णदेव शर्मा 10·00
कथा भारती : एक विवेचन माया अग्रवाल 3·75
प्रतिनिधि एकांकी : एक विवेचन ,, 4·50

प्रमुख वितरक

कला-मन्दिर

प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता

नई सड़क, दिल्ली-६

अनीता प्रकाशन

हिन्दी व संस्कृत साहित्य के प्रमुख प्रकाशक

३६९६, चरखे वालान, दिल्ली-६

विद्यार्थियों, पुस्तक विक्रेताओं तथा पुस्तकालयाध्यक्षों के लिए :

अनीता प्रकाशन के सभी प्रकाशनों के अतिरिक्त भारत के समस्त विश्वविद्यालयों की उच्च-कक्षाओं (साहित्यरत्न, बी० ए० आनर्स, एम० ए०, बी० एड० तथा एम० एड० आदि) के सभी विषयों की पाठ्यक्रम में निर्धारित तथा सहायक पुस्तकों की उचित मूल्य पर प्राप्ति का दिल्ली में एकमात्र विश्वसनीय स्थान :

कला-मन्दिर, नई सड़क, दिल्ली-११०००६ (दूरभाष : २७८८२८)

अधिक जानकारी के लिए पत्र लिखें तथा एक बार सेवा का अवसर देकर सत्य की जाँच करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान का उपयोग उन्हें करने दें। इन्हें अपने ज्ञान को और अधिक अद्यतन बनाने और अधिकाधिक उपयोगी बनाने के साधन और सुविधाएँ दी जानी चाहिए। लेकिन इस सब की धन से व्यवस्था करने की आवश्यकता होगी।

इसी प्रकार नवयुवकों को भी नई दृष्टि देकर उनके अवकाश-काल में उनका शैक्षणिक दृष्टि से उपयोग करने का प्रयत्न किया जाना चाहिये। इनके योग्य सेवाएँ यदि हम तलाश कर सकें, तो करें। ऐसी सेवाएँ तलाश की जा सकती हैं। किन्तु यह तभी संभव हो सकता है जब हम विदेशों से ही प्रेरणा ग्रहण न करें, अपितु स्वतन्त्र रूप से खोजें। इन युवकों को जब तक नियमित सेवा न मिले तब तक कुछ छात्रवृत्ति या भत्ता देने का प्रबन्ध भी किया जा सकता है और इन्हें अपने योग्य नयी सेवाऐं स्वयं खोजने के लिए नियुक्त किया जा सकता है, क्योंकि इस प्रकार नवयुवकों का उचित उपयोग किया जा सकेगा और वे अपने आपको राष्ट्र के योग्य सिद्ध कर रहे होंगे।

(६) एक सूत्र यह भी है कि यथार्थ शिक्षा को भवनों से नहीं बांधना होगा, वरन् जब, जहाँ, जिस समय जैसा भी स्थल मिले, उसी स्थल का उपयोग करने की भावना जाग्रत करनी होगी।

(७) शिक्षा का सम्बन्ध परीक्षा से भी नहीं रहना चाहिए। जिसने निर्धारित पाठ्यक्रम कक्षा में समाप्त कर लिया हो, उसे आगे के पाठ्यक्रम के वर्ष में सम्मिलित हो जाना होगा।

वस्तुतः शिक्षा का लक्ष्य यह होगा कि छात्र में विकास की जितनी भी सम्भावनाएं हैं उन सबको परिपुष्ट किया जाय। इस परिपोषण से उसमें वह क्षमता आ सकेगी कि ज्ञान-विज्ञान एवं व्यवसाय के क्षेत्र में जो कुछ दायित्व उस पर आ पड़ेगा, वह उसमें सफलता प्राप्त कर सकेगा। साथ ही अपनी बुद्धि से नये मार्गों को भी पा सकेगा। लघु पाठ्यक्रम और दीर्घ पाठ्यक्रमों का इनके सर्वाङ्गीण विकास के लिए आयोजन करना होगा।

प्रवेश के समय अध्यापक-परिषद् विविध वर्गों में पाठ्यक्रमों की दृष्टि से छात्र को परख कर उसे उनके अनुकूल वर्गों में दाखिला देगी। समस्त अपेक्षित पाठ्यक्रम में पूरा अध्ययन करने के उपरान्त वह स्नातक हो जायगा।

(८) अध्यापकों का ज्ञान-स्तर ऊँचा होता रहे, इसकी व्यवस्था की जायगी। साथ ही ऐसे आयोजन करने होंगे कि अध्यापक में शिथिलता, चारित्रिक ह्रास, एवं अपने विषय में अरुचि न होने पाए, इसके लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहने होंगे। अध्यापक को संस्था के आदर्शों का प्रतिनिधित्व करना होगा।

(९) विविध वर्गों और क्षेत्रों से आने वाले विद्यार्थियों में उच्च स्तरीय शिक्षा की दृष्टि से कुछ आचार-साम्य लाने और अपने क्षेत्र के विशेष सांस्कृतिक सूत्रों का अभ्यास कराने के लिए, आरंभ का एक वर्ष 'उपनिषद्' कक्षाओं के लिए रखा जायगा। प्रत्येक छात्र से प्रत्येक अध्यापक का घनिष्ठ सारस्वत-सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयत्न इस वर्ष में किये जायेंगे। अध्यापक अपना समस्त व्यक्तित्व मथ कर और ज्ञान-विज्ञान से छान कर ऐसा प्रकाश छात्र को देगा कि देश और विश्व के विराट परिप्रेक्ष्य में छात्र के अपने भावी जीवन के निर्माण की दिशा का दर्शन होने लगे। उसी के अनुसार उसके लिए आगामी वर्षों का पाठ्यक्रम निर्धारित किया जायगा। इस वर्ष में वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक समस्त उपलब्ध तन्त्र की पूरी-पूरी सहायता ली जायगी। इसके भविष्य-निर्माण योजना की प्रक्रिया में ऐसे अत्यन्त मेधावी व्यक्तित्वों से भी परामर्श लिया जायगा जो अपने जीवन में सफलता पा चुके हैं और जिनमें विद्यमान-स्थिति को भेद कर भावी दिशा की अन्तर्दृष्टि है। साथ ही ऐसे ही मेधावी सेवा-निवृत्त व्यक्तियों का सहयोग भी लिया जायगा। प्रवेशार्थी छात्र को इस एक वर्ष के आनुष्ठानिक सत्र में पूरी तरह भाग लेकर अपने लिए निर्माण-योजना का स्वरूप पूर्ण विस्तार से स्वयं तैयार करना होगा। परंपरित पाठ्यक्रम, नये पाठ्यक्रमों के साथ संभावित पाठ्यक्रमों को, तद्विषयक विविध योजनाओं के विविध प्रारूपों को हृदयंगम करते हुए, अन्य संभावित अथवा बिल्कुल नयी कल्पना भी प्रस्तुत की जा सकती है। यह कल्पना भी ठोस विस्तृत पाठ्यक्रम के रूप में अवतरित होगी और इसके लिए भी अध्यापन का प्रबन्ध किया जायगा।

यहाँ एक दृष्टिकोण दिया गया है, जिसकी ओर संकेत तो कई बार किया गया है लेकिन उपयोग नहीं किया गया। भारत में कल्याणकारी क्रान्ति शिक्षा के इन सूत्रों के आयोजन से ही आ सकती है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध शिक्षाविद्
एवं
लोकप्रिय लेखक

डा० एस० एस० माथुर की
छात्रोपयोगी कृतियाँ

शिक्षा-मनोविज्ञान — लेखक की अत्यन्त लोकप्रिय पुस्तक का तेरहवाँ संस्करण : मूल्य १८.००

शिक्षा-सिद्धान्त — बी० ए० एवं बी० एड० परीक्षा के लिए उपयोगी पुस्तक का नवाँ संस्करण : मूल्य १०.००

शिक्षण-कला — शिक्षण-कला एवं नवीन पद्धतियाँ । बी० एड० के पाठ्यक्रमानुसार सातवाँ संस्करण : मूल्य ६.००

सामान्य मनोविज्ञान — बी० ए० मनोविज्ञान के छात्रों के लिए उपयोगी पुस्तक का सातवाँ संस्करण : मूल्य १२.००

समाज मनोविज्ञान — एम० ए० मनोविज्ञान के लिए बहुप्रतीक्षित पुस्तक का परिमार्जित संस्करण : मूल्य १५.००

समाज मनोविज्ञानः प्रारम्भिक अध्ययन — बी० ए० परीक्षार्थियों के लाभार्थ पुस्तक का संशोधित पंचम संस्करण : मूल्य १०.००

Educational Psychology — शिक्षा मनोविज्ञान की लोकप्रिय पुस्तक का पंचम संशोधित अंग्रेजी संस्करण : मूल्य २५.००

A Sociological Approach to Indian Education — अपने विषय की अद्वितीय एवं उपयोगी पुस्तक का तृतीय पूर्णतः संशोधित संस्करण : मूल्य २०.००

विनोद पुस्तक मन्दिर
डा. रांगेय राघव मार्ग, आगरा-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगामी प्रकाशन

विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा द्वारा प्रकाश्य

सांख्यिकी के मूल तत्व
(स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के पाठ्यक्रमानुसार)
डा० एच० के० कपिल

मनोविज्ञान-अनुसंधान विधियाँ
(स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के पाठ्यक्रमानुसार)
प्रो० एम० ए० हकीम, विपिन अस्थाना

हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार
डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना

साहित्यिक-निबन्ध
डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

पाश्चात्य समीक्षाः सिद्धान्त और वाद
प्रो० सत्यदेव मिश्र

विनोद पुस्तक मन्दिर
रांगेय राघव मार्ग आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा और राजनीति
का परस्पर सम्बन्ध
क्या है ?
तथा
क्या होना चाहिए ?
आज के इन ज्वलन्त प्रश्नों के
समाधान हेतु
साहित्य-परिचय
का
एक लघु प्रयास
आपके सम्मुख विचारणीय है।

शिक्षा
व
हिन्दी साहित्य के
प्रचार एवं प्रसार हेतु
हमारी नीति
आपकी इच्छित पुस्तकों का विशाल भंडार
केवल आदेशित पुस्तकें ही भेजने की व्यवस्था
शीघ्र एवं सन्तोषजनक सेवा

हिन्दी व संस्कृत साहित्य
प्रशिक्षण साहित्य एवं मनोविज्ञान
की पुस्तकों के श्रेष्ठ एवं विशाल संकलन
हेतु
आपके स्नेह का आकांक्षी-

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

कार्यालय - डा. रांगेय राघव मार्ग, आगरा - २८२००२ दूरभाष - ७६४८६
बिक्री केन्द्र - अस्पताल मार्ग, आगरा - २८२००३ ७४७३६

प्रकाशक एवं मुद्रक : विनोदकुमार अग्रवाल द्वारा कैलाश प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar